अथैकोनविंशं काण्डम्

प्रथम सूक्त का ऋषि ब्रह्मा है। इस सूक्त का देवता (विषय) यज्ञ है। यज्ञ का सम्यक् सम्पन्न करनेवाला व यज्ञ के द्वारा अपना वर्धन करनेवाला 'ब्रह्मा' (बृहि वृद्धौ)।

अथ प्रथमोऽनुवाकः

१. [प्रथमं सूक्तम्]

ऋषिः—**ब्रह्मा**॥ देवता—**यज्ञः**॥ छन्दः—**पथ्याबृहती**॥

यज्ञकर्त्ता ब्रह्मा

सं सं स्रवन्तु नद्यः सं वाताः सं पतत्रिणः।
यज्ञमिमं वर्धयता गिरः संस्राव्ये ∫ ण हविषा जुहोमि॥ १॥

१. यज्ञों के होने पर सारा आधिदैविक जगत् हमारे अनुकूल होता है। ऋतुओं की अनुकूलता से नदियों के प्रवाह ठीक होते हैं, वायुएँ ठीक बहती हैं, पशु-पक्षियों की भी हमारे लिए अनुकूलता होती है। इसी बात को मन्त्र में इसप्रकार कहते हैं—हे **गिरः**=ज्ञान की वाणियों द्वारा प्रभु-स्तवन करनेवाले लोगो! **इमं यज्ञं वर्धयता**=इस यज्ञ का वर्धन करो। तुम्हारे घरों में यज्ञ बड़े नियम से होते रहें। इस आहुति को तुम 'संस्राव्य' जानो। 'सं स्र' सब वस्तुओं की ठीक गति का यह साधन है। इससे 'नदियाँ, वायु, पक्षी' सभी ठीक गतिवाले होते हैं। तुम प्रतिदिन यही संकल्प करो कि **संस्राव्येण**=सब जगत् की ठीक गति की साधनभूत **हविषा जुहोमि**=हवि से मैं आहुति देता हूँ। २. इस यज्ञ को करनेवाला ही इस प्रार्थना का अधिकारी होता है कि **नद्यः**=सब नदियाँ **सम्**=ठीक और **सं स्रवन्तु**=ठीक ही बहें। **वाताः**=वायुएँ **सं (स्रवन्तु)**=ठीक से बहें। **पतत्रिणः**=पक्षी भी **सम्**=ठीक गतिवाले हों। सारे आधिदैविक व आधिभौतिक जगत् के अनुकूल होने पर हमारा आध्यात्मिक जगत् सुन्दर बनता है। हम उन्नत होते हुए 'ब्रह्मा' (=बढ़े हुए) बन पाते हैं।

भावार्थ—हमारा जीवन यज्ञमय हो। इस यज्ञ से हमें आधिदैविक व आधिभौतिक जगत् की अनुकूलता प्राप्त हो। इस अनुकूलता से अध्यात्म उन्नति करते हुए हम 'ब्रह्मा' बन पाएँ।

ऋषिः—**ब्रह्मा**॥ देवता—**यज्ञः**॥ छन्दः—**पथ्याबृहती**॥

होमाः=संस्रावणाः

इमं होमा यज्ञमवतेमं संस्रावणा उत।
यज्ञमिमं वर्धयता गिरः संस्राव्ये ∫ ण हविषा जुहोमि॥ २॥

१. हे **गिरः**=ज्ञान की वाणियों द्वारा प्रभु-स्तवन करनेवाले स्तोताओ! **इमं यज्ञं वर्धयत**=इस यज्ञ का वर्धन करो। यही निश्चय करो कि **संस्राव्येण**=सम्पूर्ण जगत् की सम्यक् गति की साधनाभूत **हविषा**=हवि से **जुहोमि**=हवन करता हूँ। यज्ञों से ही तो सम्पूर्ण आधिदैविक व आधिभौतिक जगत् हमारे अनुकूल होता है। तभी हम शान्तिपूर्वक अध्यात्म उन्नति कर पाते हैं, २. इसीलिए वेद का आदेश है कि हे **होमाः**=आहुति देनेवाले यज्ञशील पुरुषो! **इमं यज्ञं अवत**=इस यज्ञ का रक्षण करो। तुम्हारे जीवनों में से इस यज्ञ का कभी विलोप न हो जाए।

उत=और हे **संस्रावणाः**=यज्ञों द्वारा सब वस्तुओं की ठीक गति के कारणभूत लोगो! **इमम्**=इस यज्ञ को सदा जागरित रक्खो—यह कभी सुप्त व विनष्ट न हो जाए।

भावार्थ—यज्ञ को न विलुप्त होने देनेवाले ये लोग संस्रावण हैं—सब वस्तुओं की ठीक गति के ये कारण बनते हैं, अतः इस सम्बन्ध में हम हवि को लुप्त न होने दें।

ऋषिः—**ब्रह्मा**॥ देवता—**यज्ञः**॥ छन्दः—**पङ्क्तिः**॥

रूपंरूपं, वयःवयः

रूपंरूपं॑ वयोवयः सं॒रभ्यैनं॒ परि॑ ष्वजे।
य॒ज्ञमि॒मं चत॑स्रः प्र॒दिशो॑ वर्धयन्तु संस्रा॒व्ये॑ ∫ण हु॒विषा॑ जुहोमि॥ ३॥

१. मानव-जीवन में कभी हमारा स्वरूप एक ब्रह्मचारी का, पुनः गृहस्थ का, तदनन्तर एक वानप्रस्थ का होता है। आयु के दृष्टिकोण से भी हमारा 'बाल्यकाल, यौवन व वार्धक्य' होता है। मैं **रूपंरूपम्**=उस-उस रूप को और **वयः वयः**=उस-उस आयुष्य को **संरभ्य**=ग्रहण करके **एनं परिष्वजे**=इस यज्ञ का आलिङ्गन करता हूँ। यज्ञ तो हमें सदा करना ही है, चाहे हम किसी रूप में हों या किसी भी आयुष्य की अवस्था में हों। २. **चतस्रः प्रदिशः**=चारों विस्तृत दिशाएँ—इन दिशाओं में रहनेवाले लोग **इमं यज्ञम्**=इस यज्ञ को **वर्धयन्तु**=बढ़ाएँ—स्वयं भी यज्ञशील हों। **संस्राव्येण हविषा**=सब वस्तुओं की ठीक गति की साधनभूत **हविषा**=हवि के द्वारा **जुहोमि**=मैं आहुति देता हूँ—मैं यज्ञशील बनता हूँ।

भावार्थ—हम जीवन की किसी भी स्थिति में हों, आयु की किसी भी श्रेणी में हो, यज्ञ हमारे लिए आवश्यक है। सब लोग इस यज्ञ का वर्धन करनेवाले हों।

'यज्ञाद् भवति पर्जन्यः' के अनुसार यज्ञों से ठीक वृष्टि होकर हमें उत्तम जलों की प्राप्ति होती है। ये जल नदियों में प्रवाहित होकर 'सिन्धु' कहलाते हैं (स्यन्दन्ते)। स्नान व पान के रूप में दो प्रकार से जलों का यह प्रयोक्ता 'सिन्धुद्वीप' है (द्विर्गताः आपो यस्मिन्)। इस 'सिन्धु-द्वीप' का ही अगला सूक्त है—

२. [द्वितीयं सूक्तम्]

ऋषिः—**सिन्धुद्वीपः**॥ देवता—**आपः**॥ छन्दः—**अनुष्टुप्**॥

'हैमवतीः—वर्ष्याः' आपः

शं त॒ आपो॑ हैमव॒ती शमु॒ ते सन्तूत्स्या ∫॒।
शं ते॑ सनि॒ष्यदा॒ आप॒ः शमु॒ ते सन्तु व॒र्ष्या ∫॒॥ १॥

१. गत सूक्त में वर्णित **ते**=तुझ यज्ञशील पुरुष के लिए **हेमवतीः आपः**=हिमवाले पर्वतों से बहनेवाली जलधाराएँ **शम्**=शान्ति देनेवाली हों। **उ**=और **ते**=तेरे लिए **उत्स्याः**=स्रोतों से बहनेवाली जलधाराएँ भी **शं सन्तु**=शान्ति देनेवाली हों। २. **सनिष्यदाः आपः**=सर्वदा स्यन्दमान—निरन्तर बहनेवाली—जलधाराएँ **ते शम्**=तेरे लिए शान्तिकर हों। **उ**=और **वर्ष्याः**=वृष्टि से प्राप्त होनेवाले ये जल **ते शम्**=तेरे लिए शान्तिकर हों।

भावार्थ—हिमवान् पर्वतों से आनेवाले, स्रोतों से बहनेवाले, निरन्तर प्रवाहित होनेवाले तथा वृष्टि के जल हमारे लिए शान्तिकर हों।

ऋषिः—**सिन्धुद्वीपः**॥ देवता—**आपः**॥ छन्दः—**अनुष्टुप्**॥

'धन्वन्याः—खनित्रिमाः' आपः

शं त आपो धन्वन्या३ः शं ते सन्त्वनूप्या ऽः।
शं ते खनित्रिमा आपः शं याः कुम्भेभिराभृताः॥ २॥

१. **धन्वन्याः**=मरुप्रदेशों में—रेगिस्तानों में होनेवाले **आपः**=जल **ते शम्**=तेरे लिए शान्तिकर हों। **अनूप्याः**=जल-समृद्ध-(कच्छ)-प्रदेशों में होनेवाले जल **ते शं सन्तु**=तेरे लिए शान्तिकर हों। २. **खनित्रिमाः आपः**=खनन से उत्पन्न कुएँ व तालाब आदि के जल **ते शम्**=तेरे लिए शान्तिकर हों और **याः**=जो **कुम्भेभिः आभृताः**=घड़ों से धारण किये गये जल हैं वे **शम्**=शान्ति देनेवाले हों।

भावार्थ—मरुस्थलों व कच्छप्रदेशों के जल हमारे लिए शान्तिकर हों। इसी प्रकार कुएँ व घड़ों के जल हमें शान्ति प्राप्त कराएँ।

ऋषिः—**सिन्धुद्वीपः**॥ देवता—**आपः**॥ छन्दः—**अनुष्टुप्**॥

'भिषग्भ्यो भिषक्तराः' आपः

अनभ्रयः खनमाना विप्रा गम्भीरे अपसः।
भिषग्भ्यो भिषक्तरा आपो अच्छा वदामसि॥ ३॥

१. **अनभ्रयः**=अभ्रि (कुदाल) आदि खनन-साधनों के बिना ही **खनमानाः**=दोनों तटों का विदारण करते हुए ये नदी-जल, **विप्राः**=विशेषरूप से पूरण करनेवाले **गम्भीरे**=अगाध स्थान में **अपसः**=व्याप्ति करने—महान् ह्रदों में विद्यमान **आपः**=जल **भिषग्भ्यो भिषक्तराः**=वैद्यों में सर्वमहान् वैद्य हैं। वैद्य को औषध लानी पड़ती है, जल तो स्वयं ही औषध हैं 'अप्सु मे सोमो अब्रवीदन्तर्विश्वानि भेषजा'। २. इन जलों का **अच्छा**=लक्ष्य करके **वदामसि**=हम परस्पर वार्तालाप करते हैं। इन जलों के गुणों का स्तवन करते हैं।

भावार्थ—नदियों के जल व अगाध ह्रदों के जल सर्वमहान् वैद्य हैं—सब औषध इनके अन्दर विद्यमान हैं।

ऋषिः—**सिन्धुद्वीपः**॥ देवता—**आपः**॥ छन्दः—**अनुष्टुप्**॥

जलों के द्वारा प्रणेजन (रोगशुद्धि व पोषण)

अपामह दिव्या ऽनामपां स्रोतस्या ऽनाम्। अपामह प्रणेजनेऽश्वा भवथ वाजिनः॥ ४॥

१. **अह**=निश्चय से **दिव्यानाम् अपाम्**=अन्तरिक्ष से वृष्ट होनेवाले जलों के, **स्रोतस्यानाम्**=स्रोतों से प्राप्त होनेवाले जलों के, **अह**=और **अपाम्**=अन्य जलों के **प्रणेजने**=शोधन व पोषण के होने पर, अर्थात् इन जलों के द्वारा रोग-निवृत्ति व पुष्टि प्राप्त होने पर तुम **वाजिनः**=शक्तिशाली **अश्वाः**=सदा कर्मों में व्याप्त होनेवाले आलस्यशून्य मनुष्य **भवथ**=बनो।

भावार्थ—जलों द्वारा शरीर-शुद्धि व पोषण होने पर हम शक्तिशाली कर्मों में व्याप्त—आलस्यशून्य जीवनवाले बनते हैं।

ऋषिः—**सिन्धुद्वीपः**॥ देवता—**आपः**॥ छन्दः—**अनुष्टुप्**॥

'भेषजीः' अपः

ता अपः शिवा अपोऽयक्ष्मंकरणीरपः।
यथैव तृप्यते मयस्तास्त आ दत्त भेषजीः॥ ५॥

१. **ताः**=वे **अपः**=जल **शिवाः अपः**=कल्याणकारी जल हैं। ये **अपः**=जल **अयक्ष्मंकरणीः**=यक्ष्मा आदि रोगों को दूर करनेवाले हैं। २. अतः **ते**=वे आप लोग **ताः**=उन **भेषजीः**=औषधभूत जलों को **आदत्त**=स्वीकार करो—इसप्रकार ग्रहण करो **यथा**=जिससे **मयः**=कल्याण, सुख व नीरोगता—**तृप्यते एव**=बढ़ती ही है।

भावार्थ—जल नीरोगता देनेवाले हैं। इनके ठीक प्रयोग से सुख-वृद्धि होती है।

जलों के ठीक प्रयोग से स्वस्थ बना हुआ यह पुरुष—'अथर्वा' बनता है। शरीर के स्वस्थ होने पर स्वस्थ मनवाला बनता है—डाँवाडोल नहीं होता। यह अंग-प्रत्यंग में रसवाला 'अंगिराः' होता है। यही अगले सूक्त का ऋषि है—

३. [तृतीयं सूक्तम्]

ऋषिः—**अथर्वाङ्गिराः**॥ देवता—**अग्निः**॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्**॥

विविध अग्नियों का सदुपयोग

दिवस्पृथिव्याः पर्यन्तरिक्षाद्वनस्पतिभ्यो अध्योषधीभ्यः।
यत्रयत्र विभृतो जातवेदास्तत स्तुतो जुषमाणो न एहि॥ १॥

१. **दिवः**=द्युलोक से **पृथिव्याः**=पृथिवीलोक से **अन्तरिक्षात् परि**=अन्तरिक्षलोक से—वायु से **वनस्पतिभ्यः**=वनस्पतियों से तथा **ओषधीभ्यः अधि**=ओषधियों में से **यत्रयत्र**=जहाँ भी **जातवेदाः**=(जाते जाते विद्यते) यह व्याप्त होकर रहनेवाला अग्नि **विभृतः**=विशेषरूप से धारण किया गया है, **ततः**=वहाँ से **स्तुतः**=स्तवन किया हुआ व **जुषमाणः**=प्रीतिपूर्वक सेवन किया हुआ **नः एहि**=हमें प्राप्त हो।

भावार्थ—द्युलोकस्थ सूर्यरूप अग्नि के, पृथिवीस्थ अग्नि के, अन्तरिक्षस्थ विद्युत् अग्नि के तथा वनस्पतियों व ओषधियों में अम्ल (acid) रूप में रहनेवाले अग्नि के गुणों का स्तवन करते हुए तथा इनका उचित प्रयोग करते हुए हम नीरोगता-जनित प्रीति का अनुभव करें।

ऋषिः—**अथर्वाङ्गिराः**॥ देवता—**अग्निः**॥ छन्दः—**भुरिक्त्रिष्टुप्**॥

'द्रविणोदा'=अग्नि

यस्ते अप्सु महिमा यो वनेषु य ओषधीषु पशुष्वप्स्वन्तः।
अग्ने सर्वास्तन्वः सं रभस्व ताभिर्न एहि द्रविणोदा अजस्रः॥ २॥

१. हे **अग्ने**=अग्निदेव! **यः**=जो **ते**=तेरी **महिमा**=महत्त्वपूर्ण सामर्थ्य **अप्सु**=जलों में है, **यः**=जो तेरी महिमा **वनेषु**=वनों में वनाग्नि के रूप से है, **यः**=और जो तेरी महिमा **ओषधीषु**=ओषधियों में फलपाक का कारण बनती है, जो **पशुषु**=पशुओं में—प्राणियों में वैश्वानर रूप से तेरी महिमा है, जो **अप्सु अन्तः**=अन्तरिक्षस्थ जलों में—मेघों में विद्युत् रूप से तेरी महिमा है। हे अग्ने! तू उन **सर्वाः**=सब **तन्वः**=अपने महिमारूप शरीरों को **संरभस्व**=हममें संकलित कर। **ताभिः**=अपने उन महत्त्वों से **नः**=हमारे लिए **अजस्रः**=निरन्तर **द्रविणोदाः**=उस-उस अंग के लिए आवश्यक द्रविणों को देनेवाला होता हुआ **एहि**=हमें प्राप्त हो।

भावार्थ—विविध स्थानों में रहता हुआ अग्नि हमें अपनी महिमाओं से अंग-प्रत्यंग के लिए आवश्यक द्रविणों का देनेवाला हो।

ऋषिः—**अथर्वाङ्गिराः**॥ देवता—**अग्निः**॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्**॥

देवेषु-पितृषु-मनुष्येषु

यस्ते देवेषु महिमा स्वर्गो या ते तनूः पितृष्वाविवेश।
पुष्टिर्या ते मनुष्ये ष्वा पप्रथेऽग्ने तया रयिमस्मासु धेहि॥ ३॥

१. हे **अग्ने!**=हमें उन्नत करने में सहायक होनेवाले अग्नितत्त्व! (अग्रणी) **यः**=जो **ते**=तेरी **महिमा**=महत्त्व **देवेषु**=देवों में—ज्ञानदीप्तिवाले पुरुषों में **स्वर्गः**=आकाशमयलोक में प्राप्त करानेवाला है और **याः**=जो **ते तनूः**=तेरा शक्ति-विस्तारकस्वरूप (तन् विस्तारे) **पितृषु**=पालनात्मक कर्मों में प्रवृत्त लोगों में **आविवेश**=प्रविष्ट हो रहा है। **या**=जो **ते**=तेरा **पुष्टिः**=पोषक तत्त्व **मनुष्येषु**=विचारशील पुरुषों में **पप्रथे**=विस्तृत हो रहा है **तया**=अपनी उस महिमा से **अस्मासु**=हममें **रयिं धेहि**=उस-उस ऐश्वर्य को धारण कर। २. शरीर में अग्नितत्त्व का सम्यक् पोषण करते हुए हम 'पुष्ट' बनें। हृदय में अग्नितत्त्व के सम्यक् पोषण से हम पालनात्मक कर्मों की वृत्तिवाले 'पितर्' बनें। मस्तिष्क में अग्नितत्व का उचित पोषण हमें प्रकाशमय जीवनवाला 'देव' बनाये।

भावार्थ—अग्नितत्व का उचित पोषण हमें मस्तिष्क में प्रकाशमय, हृदय में पालनात्मक कर्मों की वृत्तिवाला तथा शरीर में पुष्ट अंगोंवाला बनाता है।

ऋषिः—**अथर्वाङ्गिराः**॥ देवता—**अग्निः**॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्**॥

'महान् अग्नि' प्रभु से प्रार्थना

श्रुत्कर्णाय कवये वेद्याय वचोभिर्वाकैरुप यामि रातिम्।
यतो भयमभयं तन्नो अस्त्ववं देवानां यज हेडो अग्ने॥ ४॥

१. हे **अग्ने**=अग्रणी प्रभो! **श्रुत्कर्णाय**=जिसके कान हमारी प्रार्थना को सदा सुनते हैं, अथवा (श्रुत् ज्ञान से कर्ण कृ विक्षेपे) ज्ञान के द्वारा वासनाओं को विकीर्ण करनेवाले, **कवये**=सर्वज्ञ, **वेद्याय**=अन्तिम जानने योग्य **तत्**=उन आप (प्रभु) के लिए **वाकैः**=सम्यक् उच्चरित **वचोभिः**=वचनों से **रातिम् उपयामि**=अभिलक्षित फलदान की याचना करता हूँ। २. यही याचना करता हूँ कि हे अग्ने! **यतः भयम्**=जहाँ से भी भय है, **तत्**=वह सब भय का कारण **नः**=हमारे लिए **अभयम् अस्तु**=भय का कारण न रहे। हे प्रभो! आप सब **देवानाम्**=सूर्य, विद्युत्, अग्नि आदि देवों के तथा विद्वानों के **हेडः**=हमारे प्रति क्रोध को **अवयज**=दूर कीजिए। इनका क्रोध हमें प्राप्त न हो। इनकी अनुकूलता होकर हमें स्वास्थ्य की शक्ति व ज्ञान प्राप्त हो।

भावार्थ—प्रभु से हमारी यही याचना है कि वे सब देवों के क्रोध को हमसे दूर करके हमें निर्भय करें। देवानुग्रह हमें शक्ति व ज्ञान प्राप्त कराए।

४. [चतुर्थं सूक्तम्]

ऋषिः—**अथर्वाङ्गिराः**॥ देवता—**अग्निः**॥ छन्दः—**पञ्चपदाविराडतिजगती**॥

(वेद का प्रादुर्भाव) प्रथमा आहुति

यामाहुतिं प्रथमामथर्वा या जाता या हव्यमकृणोज्जातवेदाः।
तां त एतां प्रथमो जोहवीमि ताभिष्टुप्तो वहतु हव्यमग्निरग्रये स्वाहा॥ १॥

१. **याम्**=जिस **आहुतिम्**=(हु दाने) दान को **प्रथमाम्**=सर्वप्रथम **अथर्वा**=उस न डोलनेवाले 'अच्युत' **जातवेदाः**=सर्वज्ञ प्रभु ने **अकृणोत्**=किया, **या**=जो वेदज्ञान की देन **जाता**=अग्नि आदि ऋषियों के हृदयों में प्रादुर्भूत हुई, **या**=जो वेदज्ञान की देन हमारे लिए **हव्यम् अकृणोत्**=हव्य

पदार्थों को करती है। इस वेदज्ञान से हमें चाहने योग्य 'आयु, प्राण, प्रजा, पशु, द्रविण, कीर्ति व ब्रह्मवर्चस्' आदि सब उत्तम पदार्थ प्राप्त होते हैं। प्रभु ने इस वेदज्ञान को सर्वप्रथम दिया। यह वेदज्ञान 'अग्नि' आदि ऋषियों के हृदयों में प्रादुर्भूत हुआ। यह प्रभु की सर्वप्रथम देन है। २. **ताम्**=उस **एताम्**=इस वेदज्ञान की आहुति को **ते**=आपसे **प्रथमः**=सबसे पहिले **जोहवीमि**=पुकारता हूँ—माँगता हूँ। **ताभिः**=उन वेदवाणियों से **स्तुतः**=(स्तुभ् to praise) स्तुत हुआ-हुआ **अग्निः**=वह अग्रणी प्रभु **हव्यं वहतु**=हमारे लिए सब हव्य पदार्थों को प्राप्त कराए। इस **अग्नये**=अग्रणी प्रभु के लिए **स्वाहा**=हम अपना अर्पण करते हैं। अर्पण करनेवाले हम लोगों का वे प्रभु वेदज्ञान प्राप्त कराने के द्वारा कल्याण क्यों न करेंगे?

भावार्थ—प्रभु की सर्वप्रथम देन वेदज्ञान है। प्रभु सृष्टि के प्रारम्भ में इसका अग्नि आदि के हृदयों में प्रकाश करते हैं। हम भी इस वेदज्ञान की याचना करते हैं। वेदवाणियों द्वारा स्तुत प्रभु हमारे लिए सब हव्य पदार्थों को प्राप्त कराएँ। हम उस प्रभु के प्रति अपना अर्पण करते हैं।

ऋषिः—**अथर्वाङ्गिराः**॥ देवता—**अग्निः**॥ छन्दः—**जगती**॥

आकूति

आकूतिं देवीं सुभगां पुरो दधे चित्तस्य माता सुहवा नो अस्तु।
यामाशामेमि केवली सा मे अस्तु विदेयमेनां मनसि प्रविष्टाम्॥ २॥

१. संसार में सब कार्य संकल्पशक्ति से ही सिद्ध होते हैं। वेदज्ञान भी संकल्पशक्ति से ही प्राप्त होता है 'काम्यो हि वेदाधिगमः' कामना होने पर ही वेदज्ञान होता है, अतः मैं **आकूतिम्**=इस संकल्पशक्ति को **पुरःदधे**=अपने जीवन में प्रथम स्थान में स्थापित करता हूँ—इसे सर्वाधिक महत्त्व देता हूँ। यह **देवीम्**=(व्यवहार) सब व्यवहारों की साधिका है, **सुभगाम्**=उत्तम ऐश्वर्य को प्राप्त करानेवाली है। यह **चित्तस्य माता**=चित्त का निर्माण करनेवाली है। संकल्प होने पर मनुष्य उस-उस कार्य को पूरे मन (चित्त) से करता है। यह आकूति **नः**=हमारे लिए **सुहवा अस्तु**=शोभन तथा पुकारने योग्य हो। हम इसके लिए ही प्रभु से आराधना करें। प्रभु हमें शिवसंकल्पवाला बनाए। २. **याम् आशाम् एमि**=जिस भी अभिलाषा को मैं प्राप्त होऊँ, **सः**=वह **मे**=मेरी **केवली**=अकेली शुद्ध—अन्य इच्छाओं से अमिश्रित **अस्तु**=हो। संकल्प में मन एक ही वस्तु की ओर एकाग्र होता है। वस्तुतः यह संकल्प इस एकाग्रता के कारण ही हमें सफल बनाता है। इस संकल्प के द्वारा **मनसि प्रविष्टाम्**=मन में प्रविष्ट हुई-हुई **एनाम्**=इस आशा को **विदेयम्**=मैं प्राप्त करूँ। यह संकल्प मुझे इस आशा को कार्यान्वित करने में (मूर्त्तरूप देने में) समर्थ करे।

भावार्थ—संकल्पशक्ति हमें अपनी सब आशाओं को सफल करने में समर्थ करती है। यह हमारे सब व्यवहारों को सिद्ध करती है (देवी)। हमें सौभाग्यसम्पन्न बनाती है (सुभगा)।

ऋषिः—**अथर्वाङ्गिराः**॥ देवता—**अग्निः**॥ छन्दः—**अनुष्टुप्**॥

'अभ्युदय व निःश्रेयस' का साधक संकल्प

आकूत्या नो बृहस्पत आकूत्या न उपा गहि।
अथो भगस्य नो धेह्यथा नः सुहवो भव॥ ३॥

१. हे **बृहस्पते**=वेदज्ञान के स्वामिन् प्रभो! (ब्रह्मणस्पते) आप **आकूत्या**=संकल्पशक्ति के साथ **नः**=हमें **उप आगहि**=समीपता से प्राप्त होइए। अवश्य ही इस **आकूत्या नः**=संकल्पशक्ति

के साथ हमें प्राप्त होइए। आप हमें संकल्पशक्ति को अवश्य ही प्राप्त कराइए। २. **अथ**=अब संकल्पशक्ति को प्राप्त कराने के द्वारा अवश्य ही **नः भगस्य धेहि**=हमारे लिए ऐश्वर्य को (सौभाग्य को) धारण कीजिए। हम संकल्प के द्वारा ऐश्वर्यसम्पन्न बनें। **अथ उ**=और निश्चय से आप **नः**=हमारे लिए **सुहवः**=सुगमता से आराधन के योग्य **भव**=होइए। इस संकल्प के द्वारा हम आपको प्राप्त करनेवाले बनें।

भावार्थ—प्रभु हमें संकल्पशक्ति दें। इस संकल्पशक्ति से हम ऐश्वर्य-सिद्ध करते हुए प्रभु को प्राप्त करनेवाले बनें। ऐश्वर्य ही 'अभ्युदय' है, प्रभु-प्राप्ति व निःश्रेयस—इन दोनों को प्राप्त करानेवाला यह संकल्प है।

ऋषिः—**अथर्वाङ्गिराः**॥ देवता—**अग्निः**॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्**॥

संकल्प से ज्ञान व दिव्यशक्तियों की प्राप्ति

बृहस्पतिर्म आकूतिमाङ्गिरसः प्रति जानातु वाचमेताम्।
यस्य देवा देवताः संबभूवुः स सुप्रणीताः कामो अन्वेत्वस्मान्॥ ४॥

१. **आङ्गिरसः**=अंग-प्रत्यंग में रस का संचार करनेवाला **बृहस्पतिः**=ज्ञान का स्वामी प्रभु **मे**=मेरे लिए **आकूतिम्**=इस संकल्पशक्ति को **प्रतिजानातु**=प्रतिज्ञात (Introduce) करे। इस संकल्पशक्ति को हममें प्रविष्ट करे। इस संकल्पशक्ति के द्वारा **एताम् वाचम्**=इस वाणी को—वेदवाणी को मुझमें प्रविष्ट करे। २. **यस्य**=जिस काम (संकल्प) के होने पर **सुप्रणीताः**=उत्तम मार्ग से अपने जीवन का प्रणयन करनेवाले **देवाः**=देववृत्ति के पुरुष **देवताः**=सब दिव्यशक्तियों को **संबभूवुः**=(to meet, be united with) अपने साथ मिलाते हैं। **सः कामः**=यह प्रबल कामना (संकल्प) **अस्मान्**=हमें **अन्वेतु**=अनुकूलता से प्राप्त हो। इस संकल्प से हम अपने जीवनों को दिव्यशक्ति-सम्पन्न बनाएँ।

भावार्थ—शक्तिशालीज्ञान के स्वामी वे प्रभु हमें संकल्पशक्ति प्राप्त कराएँ। इसके द्वारा हमें वेदवाणी को प्राप्त कराएँ और यह संकल्प हमें दिव्यशक्तियों से युक्त करनेवाला हो।

अगले सूक्त में भी ऋषि 'अथर्वाङ्गिराः' ही है—

५. [पञ्चमं सूक्तम्]

ऋषिः—**अथर्वाङ्गिराः**॥ देवता—**इन्द्रः**॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्**॥

राजा के नियन्त्रण में

इन्द्रो राजा जगतश्चर्षणीनामधि क्षमि विषुरूपं यदस्ति।
ततो ददाति दाशुषे वसूनि चोदद्राध उपस्तुतश्चिदर्वाक्॥ १॥

१. **इन्द्रः**=वह सर्वशक्तिमान्, ऐश्वर्यशाली प्रभु **जगतः**=इस ब्रह्माण्ड का, **चर्षणीनाम्**=सब प्रजाओं का और **अधिक्षमि**=इस पृथिवी पर **यत्**=जो कुछ भी **विषुरूपम्**=विविध उत्तम रूपोंवाला पदार्थमात्र **अस्ति**=है, उस सबका **राजा**=नियमित करनेवाला स्वामी है। २. हे प्रभु **ततः**=अपने उस अनन्त ऐश्वर्य में से **दाशुषे**=दाश्वान्—दानशील पुरुष के लिए **वसूनि**=निवास के लिए आवश्यक धनों को **ददाति**=देते हैं। वे प्रभु **चित्**=ही **उपस्तुतः**=उपस्तुत हुए-हुए **राधः**=कार्यसाधक धनों को **अर्वाक्**=हमारे अभिमुख **चोदत्**=प्रेरित करते हैं।

भावार्थ—प्रभु ही सब ब्रह्माण्ड के नियन्ता राजा हैं। प्रभु ही दानशील पुरुष के निवास के लिए आवश्यक धनों को प्राप्त कराते हैं। स्तुत हुए-हुए प्रभु ही कार्यसाधक धनों को देते हैं।

गतमन्त्र का अथर्वा प्रभु-स्तवन करता हुआ प्रभु-जैसा ही बनने के लिए यत्नशील होता है। 'नारायण' ही बन जाता है। यह प्रभु-स्तवन करता हुआ कहता है—

६. [षष्ठं सूक्तम्]

ऋषिः—**नारायणः**॥ देवता—**पुरुषः**॥ छन्दः—**अनुष्टुप्**॥

'सहस्रबाहु' पुरुष

सहस्रबाहुः पुरुषः सहस्राक्षः सहस्रपात्।
स भूमिं विश्वतो वृत्वात्यतिष्ठद्दशाङ्गुलम्॥ १॥

१. **पुरुषः**=इस ब्रह्माण्डरूप पुरी में निवास करनेवाले प्रभु **सहस्रबाहुः**=अनन्त भुजाओंवाले हैं—अपनी अनन्त भुजाओं से हम सबका रक्षण कर रहे हैं। **सहस्राक्षः**=अनन्त आँखोंवाले हैं—अपनी अनन्त आँखों से वे सभी को देख रहे हैं—प्रभु से कुछ छिपा नहीं है। **सहस्रपात्**=वे अनन्त पाँवोंवाले हैं। सर्वत्र गतिवाले हैं। २. **सः**=वे **भूमिम्**=(भवन्ति भूतानि यस्याम्) प्राणियों के निवास-स्थानभूत लोकों को **विश्वतः**=सब ओर से **वृत्वा**=आवृत्त—आच्छादित करके **दशाङ्गुलम्**=इस दश अंगुलमात्र परिमाणवाले—प्रभु के एकदेश में होनेवाले—ब्रह्माण्ड को **अत्यतिष्ठत्**=लांघकर ठहरे हुए हैं। यह सारा ब्रह्माण्ड प्रभु की अनन्तता में दशांगुलमात्र ही है—यह प्रभु के एक देश में है।

भावार्थ—वे प्रभु अनन्त भुजाओं, आँखों व पाँवोंवाले हैं। उनमें सर्वत्र सब इन्द्रियों की शक्ति है। वे इस सारे ब्रह्माण्ड को आवृत्त करके इसे लाँघकर सर्वत्र विद्यमान है।

ऋषिः—**नारायणः**॥ देवता—**पुरुषः**॥ छन्दः—**अनुष्टुप्**॥

प्रभु के एक देश में

त्रिभिः पद्भिर्द्यामरोहत्पादस्येहाभवत्पुनः।
तथा व्य क्रामद्विष्वङ्ङशनानशने अनु॥ २॥

१. वह सहस्रबाहू पुरुष **त्रिभिः पद्भिः**=तीन पादों से (अंशों से) **द्याम् अरोहत्**=अपने प्रकाशमय स्वरूप में प्रकट हुआ है। प्रभु के तीन अंशों में जगत् की उत्पत्ति, स्थिति व प्रलय का चक्र नहीं है। पुनः फिर **अस्य**=इस प्रभु का **पात्**=एक अंश ही **इह अभवत्**=इस ब्रह्माण्ड में व्याप्त हो रहा है। यह सारा ब्रह्माण्ड का खेल प्रभु के एक देश में ही होता है। २. **तथा**=उस प्रकार **विष्वङ्**=(विसु अञ्च) सर्वत्र गति व व्यासिवाला वह प्रभु **अशनानशने**=खानेवाले चेतन जगत् में व न खानेवाले जड़ जगत् में **अनु**=अनुकूलता से **वि अक्रामत्**=विविध गतियाँ कर रहा है। सर्वत्र गति देनेवाला वह प्रभु ही है।

भावार्थ—प्रभु के एक देश में इस सारे जड़-चेतनरूप जगत् का खेल चल रहा है। प्रभु के तीन अंश तो अपने प्रकाशमय रूप में प्रकट हो रहे हैं। प्रभु की अनन्तता में यह ब्रह्माण्ड अत्यन्त तुच्छ-से परिमाणवाला है।

ऋषिः—**नारायणः**॥ देवता—**पुरुषः**॥ छन्दः—**अनुष्टुप्**॥

लोक-लोकान्तर में प्रभु की महिमा की अभिव्यक्ति

तावन्तो अस्य महिमानस्ततो ज्यायाँश्च पूरुषः।
पादोऽस्य विश्वा भूतानि त्रिपादस्यामृतं दिवि॥ ३॥

१. **तावन्तः**=उतने, अर्थात् ये जितने भी लोक-लोकान्तर हैं, वे **अस्य**=इस प्रभु के

महिमानः=महिमामात्र हैं। इन सबमें प्रभु की महिमा प्रकट हो रही है **च**=और वे **पूरुषाः**=इस ब्रह्माण्डरूप पुरी में निवास करनेवाले प्रभु तो **ततः**=उस सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड से **ज्यायान्**=बहुत बड़े हैं। २. **विश्वा भूतानि**=सब प्राणी व सब पृथिव्यादि लोक **अस्य पादः**=इस प्रभु के चतुर्थांशमात्र हैं। **अस्य त्रिपात्**=इसके तीन अंश तो **दिवि अमृतम्**=प्रकाशमयरूप में अ-मृत हैं, अर्थात् उन तीन अंशों में यह उत्पत्ति व विनाश का क्रम नहीं चल रहा। यह सब जन्म-मरण का क्रम प्रभु के एक देश में ही हो रहा है।

भावार्थ—ये सब लोक-लोकान्तर प्रभु की महिमा को प्रकट कर रहे हैं। प्रभु इनसे महान् हैं। ये सब तो प्रभु के एकदेश में ही हैं। प्रभु के तीन अंश तो इस सब जन्म-मरण के स्थल न बनकर प्रकाशमय ही हैं।

ऋषिः—**नारायणः**॥ देवता—**पुरुषः**॥ छन्दः—**अनुष्टुप्**॥

वह महान् शासक

पुरुष एवेदं सर्वं यद्भूतं यच्च भाव्य ँ म्।
उतामृतत्वस्येश्वरो यदन्येनाभवत्सह॥ ४॥

१. **पुरुषः एव**=वह ब्रह्माण्डरूप पुरी में निवास करनेवाला प्रभु ही **यत्**=जो **इदं सर्वम्**=यह सब वर्तमान काल में है, **यत् भूतम्**=जो हो चुका है, **च भाव्यम्**=और भविष्य में होना है, उस सबका **ईश्वरः**=ईश्वर है—शासक है। प्रभु के शासन में ही सदा सम्पूर्ण संसार संसरण किया करता है। २. वे प्रभु इस संसार के ही नहीं, **उत**=अपितु **अमृतत्वस्य**=मोक्षलोक के भी (ईश्वरः) शासक हैं। **यत्**=जो यह मुक्तात्मा भी मुक्ति का काल समाप्त होने पर **अन्येन सह**=प्रभु से भिन्न इस प्रधान (प्रकृति) के साथ **अभवत्**=होता है। मुक्ति काल में तो यह मुक्त पुरुष प्रभु के साथ विचरता था, परन्तु इस काल के समाप्त होने पर प्रभु की व्यवस्था में उसे फिर से शरीर लेना होता है और इसप्रकार फिर प्रकृति के साथ होना पड़ता है, अर्थात् उसे फिर से शरीरलेना पड़ता है।

भावार्थ—वे परमपुरुष प्रभु वर्तमान, भूत व भविष्य में होनेवाले सब ब्रह्माण्डों के स्वामी हैं। मुक्तात्मा भी प्रभु के शासन में होते हैं और मुक्तिकाल की समाप्ति पर पुनः प्रभु की व्यवस्था से शरीर धारण करते हैं।

ऋषिः—**नारायणः**॥ देवता—**पुरुषः**॥ छन्दः—**अनुष्टुप्**॥

प्रभु का धारण

यत्पुरुषं व्यदधुः कतिधा व्य ँ कल्पयन्।
मुखं किमस्य किं बाहू किमूरू पादा उच्येते॥ ५॥

१. **यत्**=जब साधनामय जीवनवाले पुरुष **पुरुषम्**=उस परमपुरुष प्रभु को **व्यदधुः**=अपने में विशेष रूप से धारण करते हैं तब वे **कतिधा**=कितने प्रकार से **व्यकल्पयन्**=अपने को विशिष्ट सामर्थ्यवाला बनाते हैं। प्रभु का धारण करनेवाला प्रभु की शक्ति से शक्तिसम्पन्न होकर असामान्य शक्तिवाला हो जाता है। २. **अस्य**=इस प्रभु के धारण करनेवाले का **मुखं किम्**=मुख क्या बन जाता है? सामान्य व्यक्ति व इस साधक के मुख में क्या अन्तर होता है? **किं बाहू**=इसकी बाहुएँ **किम् उच्येते**=क्या कही जाती हैं? **उरू किम्**=जाँघें क्या कही जाती हैं? और इसीप्रकार **पादाः**=इसके पाँव (किम् उच्येते) क्या कहे जाते हैं, अर्थात् इस साधक के मुख, भुजाओं, जाँघों व पाँवों की क्रियाओं में क्या अन्तर आ जाता है? प्रभु के धारण से इसके अंगों में क्या विशेषता

उत्पन्न होती है?

भावार्थ—जिज्ञासु प्रश्न करता है कि साधक के अंगों में प्रभु के धारण से किस अद्भुत् शक्ति का प्रादुर्भाव होता है? प्रश्न का उत्तर अगले मन्त्र में देते हैं—

ऋषिः—**नारायणः**॥ देवता—**पुरुषः**॥ छन्दः—**अनुष्टुप्**॥

ब्राह्मण से शूद्र तक

ब्राह्मणो ऽस्य मुखमासीद् बाहू राजन्यो ऽभवत्।
मध्यं तदस्य यद्वैश्यः पद्भ्यां शूद्रो अजायत॥ ६॥

१. **अस्य**=इस प्रभु का धारण करनेवाले साधक का **मुखम्**=मुख **ब्राह्मणः आसीत्**=ब्राह्मण हो जाता है। इसका मुख सदा ब्राह्मण का कार्य करनेवाला होता है। यह मुख से ज्ञानोपदेश में प्रवृत्त होता है। **बाहूः**=इसकी भुजाएँ **राजन्यः**=प्रकृति का रञ्जन करनेवाली **अभवत्**=होती हैं। बाहुओं से यह क्षत्रिय बन जाता है—प्रजा का रक्षण करनेवाला होता है। २. **यत्**=जो **अस्य मध्यम्**=इसका मध्यभाग (उदर व जाँघें) है, **तत्**=वह **वैश्यः**=वैश्य होता है। राष्ट्र में वैश्य कृषि आदि के द्वारा सब आवश्यक पदार्थों को उत्पन्न करता है। ये साधक भी निर्माण के कार्यों में प्रवृत्त रहते हैं। **पदभ्याम्**=पाँवों से यह साधक **शूद्रः** (शु द्रवति)=शीघ्र गतिवाले **अजायत**=होते हैं। ये कभी अकर्मण्य नहीं होते '**क्रियावानेष ब्रह्मविदां वरिष्ठः**'=ब्रह्मज्ञानियों में श्रेष्ठ यह सदा प्रशस्त क्रियाओं में व्यापृत जीवनवाला होता है।

भावार्थ—ब्रह्मज्ञानी पुरुष मुख से ज्ञानोपदेश करता है, भुजाओं से रक्षणात्मक कार्य करता है। वैश्य की भाँति सदा निर्माणात्मक कार्यों में प्रवृत्त होता है और पाँवों से शीघ्र गतिवाला होता हुआ लोकहित के कार्यों में प्रवृत्त रहता है।

ऋषिः—**नारायणः**॥ देवता—**पुरुषः**॥ छन्दः—**अनुष्टुप्**॥

चन्द्र-सूर्य-इन्द्र-अग्नि व वायु

चन्द्रमा मनसो जातश्चक्षोः सूर्यो अजायत।
मुखादिन्द्रश्चाग्निश्च प्राणाद्वायुरजायत॥ ७॥

१. ब्रह्मज्ञानी पुरुष **मनसः**=मन से **चन्द्रमाः जातः**=चन्द्र हो जाता है। 'चन्द्रमा' आह्लाद का प्रतीक है। यह सदा प्रसन्न मनवाला होता है। **चक्षोः**=चक्षु से यह **सूर्यः अजायत**=सूर्य हो जाता है। सूर्य जैसे प्रकाश के द्वारा अन्धकार को नष्ट करता है, उसीप्रकार यह व्यक्ति अपनी चक्षु से अज्ञानान्धकार को विनष्ट करनेवाला 'विचक्षण' बनता है—प्रत्येक वस्तु को बारीकी से देखता हुआ यह तत्त्वद्रष्टा होता है। २. यह **मुखात्**=मुख से **इन्द्रः च अग्निः च**=जितेन्द्रिय व आगे और आगे ले-चलनेवाला होता है। मुख से जितेन्द्रिय बनने का भाव यह है कि 'स्वाद के लिए खाता नहीं और निन्दात्मक शब्द बोलता नहीं'। मुख से अग्नि बनने का भाव यह है कि इसके मुख से उच्चारित शब्द लोगों में परस्पर प्रेम के भाव को पैदा करते हैं और वैर-विरोध का छेदन करते हैं। इसप्रकार ही यह प्रेरणा देता हुआ लोगों को आगे ले-चलता है। यह **प्राणात्**=प्राणों से **वायुः अजायत**=वायु हो जाता है—निरन्तर क्रियाशील होता हुआ सब बुराइयों का संहार करता है।

भावार्थ—ब्रह्मज्ञानी पुरुष 'सदा प्रसन्न, विक्षण, जितेन्द्रिय, अग्रगतिक, प्रेरक व क्रियाशील' होता है।

ऋषिः—**नारायणः**॥ देवता—**पुरुषः**॥ छन्दः—**अनुष्टुप्**॥

मध्यमार्ग व लोक-कल्पन

नाभ्या आसीदन्तरिक्षं शीर्ष्णो द्यौः समवर्तत।
पद्भ्यां भूमिर्दिशः श्रोत्रात्तथा लोकाँ अकल्पयन्॥ ८॥

१. ब्रह्मज्ञानी पुरुष **नाभ्याः**=शरीर के केन्द्रभूत नाभि के दृष्टिकोण से—इसे ठीक रखने के लिए **अन्तरिक्षम् आसीत्**=(अन्तरा क्षि) सदा मध्यमार्ग में निवास करनेवाला होता है। युक्ताहार-विहार होता हुआ यह अतियोग व अयोग से बचकर यथायोग के द्वारा शरीर के केन्द्र को ठीक रखता है। **शीर्ष्णाः**=मस्तिष्क से यह **द्यौः समवर्तत**=द्युलोक के समान हो जाता है। इसका मस्तिष्करूप द्युलोक ज्ञान-सूर्य से देदीप्यमान हो उठता है। २. यह ब्रह्मज्ञानी **पद्भ्यां भूमिः**=पाँवों से भूमि होता है। इसकी सब गतियाँ प्राणियों के उत्तम निवास का साधन बनती हैं (भवन्ति भूतानि यस्याम् इति भूमिः)। यह **श्रोत्रात्**=श्रोत्र से **दिशः**=दिशाएँ बन जाता है, कानों से ज्ञानोपदेशों को सुननेवाला होता है। उन उपदेशों के अनुसार ही अपने जीवन की दिशाओं का निश्चय करता है **तथा**=उपर्युक्त प्रकार से ये ब्रह्मज्ञानी **लोकान्**=अपने शरीर के प्रत्येक लोक को—अंग-प्रत्यंग को **अकल्पयन्**=शक्तिशाली बनाते हैं।

भावार्थ—साधक पुरुष मध्यमार्ग से चलता हुआ मस्तिष्क को ज्योतिर्मय बनाता है। उत्तम गतियों के द्वारा प्राणियों के हित को सिद्ध करता है और सदा ज्ञानोपदेशों को ग्रहण करने की वृत्तिवाला बनता है। इसप्रकार यह सब अंगों को शक्तिशाली बनाता है।

ऋषिः—**नारायणः**॥ देवता—**पुरुषः**॥ छन्दः—**अनुष्टुप्**॥

'विराट्' की उत्पत्ति

विराडग्रे समभवद्विराजो अधि पूरुषः।
स जातो अत्यरिच्यत पश्चाद्भूमिमथो पुरः॥ ९॥

१. **अग्रे**=सृष्टि के आरम्भ में प्रभु ने 'सत्त्व, रजस् व तमस्' की साम्यावस्थारूप प्रकृति में जब गति दी तब सर्वप्रथम **विराट्**=एक विशिष्ट दीप्तिवाला महान् पिण्ड **समभवत्**=हुआ। यही सांख्य में 'महत्' कहा गया है। मनु ने इसे ही 'हेमपिण्ड' कहा है। **विराजः**=इस विराट् पिण्ड का **अधिपूरुषः**=अधिष्ठातृरूपेण वह परमपुरुष 'प्रभु' था। उसकी अध्यक्षता में ही तो यह प्रकृति चराचर को जन्म देती है। 'मयाध्यक्षेण प्रकृतिः सूयते सचराचरम्'। २. **जातः**=प्रादुर्भूत हुआ-हुआ **सः**=वह विराट् पिण्ड **अत्यरिच्यत**=सर्वाधिक देदीप्यमान हुआ 'तदण्डमभवद्धेमं सहस्त्रांशुसमप्रभम्'। **पश्चात्**=इस विराट् की उत्पत्ति के बाद प्रभु ने इस विराट् से **भूमिम्**=प्राणियों के निवासस्थानभूत लोकों को उत्पन्न किया। **अथ उ**=और अब **पुरः**=प्राणियों की शरीररूप पुरियों का निर्माण किया।

भावार्थ—प्रभु की अध्यक्षता में प्रकृति से एक विराट् पिण्ड उत्पन्न हुआ। इस देदीप्यमान पिण्ड से ही पीछे भिन्न-भिन्न लोक व प्राणियों के शरीरों की उत्पत्ति हुई।

ऋषिः—**नारायणः**॥ देवता—**पुरुषः**॥ छन्दः—**अनुष्टुप्**॥

वसन्त-ग्रीष्म-शरत्

यत्पुरुषेण हविषा देवा यज्ञमतन्वत।
वसन्तो अस्यासीदाज्यं ग्रीष्म इध्मः शरद्धविः॥ १०॥

१. इन मानव-शरीरों में निवास करते हुए **देवाः**=देववृत्ति के पुरुष **यत्**=जब उस **हविषा**=(हु

दाने) त्याग के पुञ्ज हविरूप **पुरुषेण**=परमपुरुष प्रभु से **यज्ञम् अतन्वत**=सम्बन्ध को विस्तृत करते हैं, अर्थात् उस प्रभु से अपना सम्बन्ध बढ़ाते हैं तब **वसन्तः**=वसन्त ऋतु **अस्य**=इस पुरुष की **आज्यम् आसीत्**=(अञ्जू व्यक्ति) महिमा को व्याप्त करनेवाली होती है। वे देव वसन्त ऋतु में विकसित वनस्पतियों में प्रभु की महिमा को देखते हैं। २. **ग्रीष्मः**=ग्रीष्म ऋतु **इध्मः**=दीप्ति का साधनभूत ईंधन हो जाती है। ग्रीष्म ऋतु के सूर्य की दीप्ति में वे प्रभु की ज्ञानदीप्ति का दर्शन करते हैं और **शरत्**=सब पत्तों को शीर्ण करती हुई शरत् ऋतु **हविः**=हवि बन जाती है। शरद् ऋतु में वृक्ष सब पत्तों को त्याग-सा देते हैं। इसी प्रकार प्रभु भी जीव के लिए सब-कुछ दे डालते हैं।

भावार्थ—प्रभु से अपना सम्पर्क बढ़ानेवाले देव वसन्त ऋतु में चारों ओर प्रभु की महिमा को देखते हैं। ग्रीष्म के दीप्त सूर्य में प्रभु की ज्ञानदीप्ति को देखते हैं और सब पत्तों को शीर्ण करती हुई शरद् में प्रभु के त्याग को देखते हैं।

ऋषिः—**नारायणः**॥ देवता—**पुरुषः**॥ छन्दः—**अनुष्टुप्**॥

'देव-साध्य-वसु'

तं यज्ञं प्रावृषा प्रौक्षन्पुरुषं जातमग्रशः।
तेन देवा अयजन्त साध्या वसवश्च ये॥ ११॥

१. **तं यज्ञम्**=उस पूज्य—संगतिकरणीय—समर्पणीय **पुरुषम्**=ब्रह्माण्डरूपी पुरी में निवास करनेवाले **अग्रशः जातम्**=सृष्टि से पहले विद्यमान प्रभु को **प्रावृषा**=(प्र वृष्) शरीर में शक्ति के सेचन के द्वारा—शरीर में उत्पन्न सोम को शरीर में ही सिक्त करने के द्वारा **प्रौक्षन्**=अपने हृदयक्षेत्र में सिक्त करते हैं। सोम के रक्षण के द्वारा हृदयों में प्रभु के प्रकाश को देखते हैं। २. **तेन**=उस परमपुरुष प्रभु से **देवः**=देववृत्ति के पुरुष **अयजन्त**=अपना सम्पर्क बनाते हैं। **साध्याः**=साधनामय जीवनवाले पुरुष **च**=और **ये**=जो **वसवः**=अपने निवास को उत्तम बनानेवाले व्यक्ति हैं, वे उस प्रभु से अपना मेल कर पाते हैं।

भावार्थ—प्रभु-दर्शन के लिए शरीर में सोम का रक्षण आवश्यक है। इस रक्षण को करते हुए हम देव बनें, साधनामय जीवनवाले हों तथा अपने निवास को उत्तम बनाएँ। यही प्रभु-प्राप्ति का मार्ग है।

ऋषिः—**नारायणः**॥ देवता—**पुरुषः**॥ छन्दः—**अनुष्टुप्**॥

मानव-जीवन के साथ सम्बद्ध पशु

तस्मादश्वा अजायन्त ये च के चोभयादतः।
गावो ह जज्ञिरे तस्मात्तस्माज्जाता अजावयः॥ १२॥

१. **तस्मात्**=उस प्रभु के द्वारा **अश्वा अजायन्त**=घोड़ों को जन्म दिया गया **च**=तथा **ये के**=जो कोई **उभयादतः**=दोनों ओर दाँतोंवाले खच्चर आदि पशु हैं, उनका प्रभु द्वारा प्रादुर्भाव किया गया। २. **गावः ह**=गौवें निश्चय से **तस्मात् जज्ञिरे**=उसी प्रभु से उत्पन्न की गईं और **तस्मात्**=उससे **अजा अवयः**=बकरियाँ व भेड़ें **जाताः**=उत्पन्न हुईं। ३. गौ हमारे जीवनों में सात्त्विक दुग्धरूप भोजन को देती हुई ज्ञानवृद्धि का कारण बनती है। घोड़ा व्यायामादि का साधन बनता हुआ 'क्षत्र' वृद्धि का साधन होता है। बकरी का दूध 'सब रोगों को दूर करनेवाला' (सर्वरोगापह) बनता है और भेड़ ऊन के वस्त्रों को प्राप्त कराके हमें शीत से बचाती है। संक्षेप में 'गौ व घोड़ा' मनुष्य के दायें हाथ हैं तो 'अजा और अवि' उसके बायें हाथ हैं।

भावार्थ—प्रभु ने हमारे जीवनों में सहायक होनेवाले 'गौ, घोड़ा, बकरी व भेड़' आदि पशुओं को उत्पन्न किया है।

ऋषिः—**नारायणः**॥ देवता—**पुरुषः**॥ छन्दः—**अनुष्टुप्**॥

वेदों का प्रादुर्भाव

तस्माद्यज्ञात्सर्वहुत ऋचः सामानि जज्ञिरे।
छन्दाँसि ह जज्ञिरे तस्माद्यजुस्तस्मादजायत॥ १३॥

१. **तस्मात्**=उस **यज्ञात्**=पूजनीय **सर्वहुतः**=सब आवश्यक पदार्थों को देनेवाले प्रभु से **ऋचः**=ऋचाएँ व **सामानि**=साममन्त्र **जज्ञिरे**=प्रादुर्भूत हुए। **तस्मात्**=उसी से **ह**=निश्चय से **छन्दः**=रोगों व युद्धों से हमारा छादन (बचाव) करनेवाले, अथर्वमन्त्र उत्पन्न हुए। **तस्मात्**=उसी से **यजुः**=यजुर्मन्त्रों का **अजायत**=प्रादुर्भाव हुआ।

भावार्थ—प्रभु ने ऋग्वेद द्वारा हमें प्रकृति के सब पदार्थों के गुणधर्मों का ज्ञान दिया। यजुर्मन्त्रों द्वारा हमारे पारस्परिक कर्त्तव्यों का उपदेश दिया। साममन्त्रों द्वारा हमें प्रभु की उपासना के योग्य बनाया और अथर्वमन्त्रों द्वारा रोगों व युद्धों से सुरक्षा का मार्ग दर्शाया।

ऋषिः—**नारायणः**॥ देवता—**पुरुषः**॥ छन्दः—**अनुष्टुप्**॥

पृषदाज्य-संभरण

तस्माद्यज्ञात्सर्वहुतः संभृतं पृषदाज्य ँम्।
पशूँस्तांश्चक्रे वायव्या ँ नारण्या ग्राम्याश्च ये॥ १४॥

१. **तस्मात्**=उस **यज्ञात्**=पूजनीय **सर्वहुतः**=सब आवश्यक पदार्थों के देनेवाले प्रभु से **पृषदाज्यम्**=('अन्नं वै पृषदाज्यम्, पयः पृषदाज्यम्, पशवो वै पृषदाज्यम्' श०) अन्न, पशु व दूध का **संभृतम्**=हमारे लिए संभरण किया गया है। २. प्रभु ने **तान्**=उन सब **पशून्**=(पश्यन्ति एव) 'जो केवल देखते हैं, समझते नहीं' उन पशु-पक्षियों का **चक्रे**=निर्माण किया। **वायव्यान्**=वायु में गति करनेवाले—उड़नेवाले—पक्षियों को बनाया तथा **ये**=जो **आरण्याः**=वन के शेर आदि पशु हैं **च**=तथा **ग्राम्याः**=ग्राम के गौ-घोड़ा आदि पशु हैं उन सबका निर्माण किया। कोई भी पशु अनुपयोगी नहीं। शेरों के अभाव में मृगों की ही इतनी अधिकता हो जाती कि सब खेतियाँ नष्ट हो जातीं। मक्खी का मल भी वमन-निरोध की अचूक ओषधि है, एवं सब पशु-पक्षियों की उपयोगिता द्रष्टव्य है।

भावार्थ—प्रभु ने हमारे जीवन के लिए उपयोगी अन्न व दूध को प्राप्त कराने के लिए वायव्य, ग्राम्य व आरण्य पशु-पक्षियों को जन्म दिया है।

ऋषिः—**नारायणः**॥ देवता—**पुरुषः**॥ छन्दः—**अनुष्टुप्**॥

सात परिधियाँ, इक्कीस समिधाएँ

सप्तास्यासन्परिधयस्त्रिः सप्त समिधः कृताः।
देवा यद्यज्ञं तन्वाना अबध्नन्पुरुषं पशुम्॥ १५॥

१. **देवाः**=देववृत्ति के पुरुष **यत्**=जब **यज्ञं तन्वानाः**=प्रभु से सम्बन्ध को विस्तृत करते हुए **पुरुषम्**=अतिशयित पौरुषवाले **पशुम्**=(कामः पशुः क्रोध पशुः) काम-क्रोधरूप पशु को **अबध्नन्**=बाँध लेते हैं—अपने वशीभूत कर लेते हैं तब **अस्य**=इस काम-क्रोधरूप पशु का बन्धन करनेवाले साधक की **सप्त**=सात **परिधयः**=परिधियाँ **आसन्**=होती हैं। इस साधक के 'दो

कान, दो नासिका-छिद्र, दो आँखें व मुख' ये सब मर्यादा में चलनेवाले होते हैं। इसकी सब क्रियाएँ मर्यादा का रेखामात्र भी उल्लँघन नहीं करती। २. इसी का यह परिणाम होता है कि **त्रिःसप्त**=इक्कीस **समिधः**=शक्तियों की दीप्तियाँ **कृताः**=की जाती हैं। काम-क्रोध आदि के नियमन से शक्तियों का दीपन स्वभावतः होता ही है। काम-क्रोध ही तो शक्तियों को क्षीण करते हैं। इनके नियमन से शक्तियों का दीपन होता है।

भावार्थ—प्रभु के सम्पर्क से हम काम-क्रोध का नियमन कर पाते हैं। उस समय मर्यादित जीवनवाले बनकर हम दीप्तशक्तियोंवाले होते हैं।

ऋषिः—**नारायणः**॥ देवता—**पुरुषः**॥ छन्दः—**अनुष्टुप्**॥

देवस्य, बृहतः, राज्ञः, सोमस्य

मूर्ध्नो देवस्य बृहतो अंशवः सप्त सप्तीः।
राज्ञः सोमस्याजायन्त जातस्य पुरुषादधि॥ १६॥

१. गतमन्त्र में 'पुरुषपशु' के बन्धन का उल्लेख है। उस **पुरुषात्**=पौरुषयुक्त 'काम' से **अधिजातस्य**=ऊपर उठे हुए इस साधक के **मूर्ध्नः**=मस्तिष्क से **सप्तीः**=(सप् समवाये)=सब विद्याओं को अपने में समवेत करनेवाली **सप्त**=सात गायत्र्यादि छन्दों में बद्ध होने से सात संख्यावाली **अंशवः**=ज्ञान की किरणें **अजायन्त**=प्रादुर्भूत होती हैं। इसके मस्तिष्क में इन सात छन्दों में बद्ध इन वेदवाणियों का प्रकाश होता है। यह उन वेदवाणियों के रहस्य को समझ पाता है। २. उस साधक के मस्तिष्क में इन वेदवाणियों का प्रादुर्भाव होता है जो **देवस्य**=दिव्य गुणयुक्त होता है, **बृहतः**=सब शक्तियों का वर्धन करनेवाला होता है तथा **राज्ञः**=अपनी इन्द्रियों का राजा होता है, अथवा बड़ी व्यवस्थित (regulated) क्रियाओंवाला होता है तथा **सोमस्य**=सौम्य स्वभाव का—शान्त प्रवृत्ति का होता है।

भावार्थ—हम अत्यन्त प्रबल 'काम' के नियमन के द्वारा ऊपर उठें। देव, बृहन्, राजा व सोम बनें—'दिव्यगुणोंवाले, प्रवृद्ध शक्तियोंवाले, व्यवस्थित जीवनवाले व सौम्य'। ऐसा बनने पर हमारे मस्तिष्क में सात छन्दों में बद्ध इन वेदवाणियों का प्रकाश होगा।

गतमन्त्र के अनुसार वेदवाणियों का प्रकाश होने पर यह प्रभु-स्तोत्रों का उच्चारण करता है और अज्ञानान्धकार को निगल जाता है—सो 'गर्ग' कहलाता है (गिरति)। इसी पर बल देने के लिए कहते हैं कि यह गर्ग का पुत्र 'गार्ग्य' बन गया है। यह गार्ग्य ही अगले शूक्त का ऋषि है। इस ज्ञानी गार्ग्य का सब नक्षत्र (लोक-लोकान्तर) कल्याण ही करनेवाले होते हैं—

७. [सप्तमं सूक्तम्]

ऋषिः—**गार्ग्यः**॥ देवता—**नक्षत्राणि**॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्**॥

नक्षत्रों में प्रभु-महिमा का दर्शन

चित्राणि साकं दिवि रोचनानि सरीसृपाणि भुवने जवानि।
तुर्मिशं सुमतिमिच्छमानो अहानि गीर्भिः सपर्यामि नाकम्॥ १॥

१. **दिवि**=आकाश में **साकम्**=साथ-साथ **रोचनानि**=चमकनेवाले ये नक्षत्र **चित्राणि**=अद्भुत ही हैं। ये सब नक्षत्र उस प्रभु की महिमा को प्रकट कर रहे हैं। ये सब नक्षत्र **सरीसृपाणि**=अपने अण्डाकृति—वक्र से प्रतीत होनेवाले मार्गों पर चल रहे हैं। **भुवने जवानि**=इस ब्रह्माण्ड में ये सब नक्षत्र अतिशयेन वेगवान् हैं। २. मैं इन नक्षत्रों में उस आनन्दमय प्रभु की महिमा को देखता हुआ, **तुर्मिशम्** (तुर त्वरणे मिश् समाधौ) त्वरा से समाधि को (एकाग्रता को) तथा **सुमतिम्**=

कल्याणी मति को **इच्छमानः**=चाहता हुआ **अहानि**=सब दिनों में **गीर्भिः**=इन वेदवाणियों के द्वारा **नाकं सपर्यामि**=क्लेशों से असम्भिन्न आनन्दमय प्रभु का उपासन करता हूँ।

भावार्थ—हम द्युलोक में दीप्त नक्षत्रों में प्रभु की महिमा को देखें। एकाग्रता व सुमति की कामना करते हुए प्रभु का उपासन करें।

ऋषिः—**गार्ग्यः**॥ देवता—**नक्षत्राणि**॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्**॥

'कृतिका से मघा' तक

सुहवमग्ने कृत्तिका रोहिणी चास्तु भद्रं मृगशिरः शमार्द्रा।
पुनर्वसू सूनृता चारु पुष्यो भानुराश्लेषा अयनं मघा मे॥ २॥

१. हे **अग्ने**=अग्रणी प्रभो! **कृतिका रोहिणी च**=कृतिका और रोहिणी नक्षत्र **सुहवम् अस्तु**=उत्तमता से प्रार्थनीय हों। 'कृतिका' से मैं शत्रुओं के—काम-क्रोध के छेदन की प्रेरणा लूँ और शत्रुओं का छेदन करता हुआ 'रोहिणी' से उन्नतिपथ पर आरोहण का पाठ पढ़ूँ। **मृगशिरः भद्रम्**=मृगशिरस् नक्षत्र मेरे लिए कल्याणकर हो। उन्नत होने के लिए मैं आत्मान्वेषण करनेवालों का मूर्धन्य बनूँ (मृग अन्वेषणे)। अब 'आर्द्रा' नक्षत्र **शम्**=मुझे शान्ति देनेवाला हो। मैं सबके प्रति स्नेहार्द्रहृदय बनकर शान्त जीवनवाला होऊँ। २. **पुनर्वसू**='पुनर्वसू' नामक नक्षत्र **सूनृता**=मुझे प्रिय सत्यवाणी को प्राप्त कराएँ। 'पुनर्वसू' द्विवचन में है। ये मुझे 'भौतिक व अध्यात्म' दोनों जीवनों को नये सिरे से प्रारम्भ करने की प्रेरणा देते हैं। इस प्रेरणा को प्राप्त करके मैं प्रिय सत्य बोलनेवाला बनता हूँ। **पुष्यः**=पुष्यनक्षत्र **चारु**=मेरे जीवन का सुन्दर पोषण करे। वस्तुतः प्रिय, सत्यवाणी को अपनाता हुआ ही मैं अपना उत्तम पोषण कर पाता हूँ। अब **आश्लेषा**='आश्लेषा' नक्षत्र **भानुः**=मेरे जीवन को दीप्त करता है। जीवन का ठीक पोषण करनेवाला व्यक्ति प्रभु से आश्लेषण (आलिंगन) करनेवाला होता है। इस आश्लेषण से इसका जीवन दीप्त हो उठता है और अब **मघा मे अयनम्**=मघा-नक्षत्र मेरा अन्तिम लक्ष्य स्थान हो। (मघ=ऐश्वर्य) में वास्तविक ऐश्वर्य को ही अपना लक्ष्य बनाऊँ। इन प्राकृतिक ऐश्वर्यों के आकर्षण से ऊपर उठ जाऊँ।

भावार्थ—शत्रुओं का छेदन करता हुआ (कृत्तिका) मैं उन्नति-पथ पर आरोहण करूँ (रोहिणी)। आत्मान्वेषण करनेवालों का मूर्धन्य बनकर (मृगशिरस्) सबके प्रति आर्द्रहृदय (आर्द्रा) बनूँ। भौतिक व अध्यात्म दोनों जीवनों को उत्तम बनाकर (पुनर्वसू) अपना सम्यक् पोषण करूँ (पुष्य)। अब प्रभु से आलिंगन करता हुआ (आश्लेषा) वास्तविक ऐश्वर्य को प्राप्त करूँ (मघा)।

ऋषिः—**गार्ग्यः**॥ देवता—**नक्षत्राणि**॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्**॥

'पूर्वाफल्गुनी से मूल' तक

पुण्यं पूर्वा फल्गुन्यौ चात्र हस्तश्चित्रा शिवा स्वाति सुखो मे अस्तु।
राधे विशाखे सुहवानुराधा ज्येष्ठा सुनक्षत्रमरिष्ट मूलम्॥ ३॥

१. अब **अत्र**=यहाँ—इस जीवन में **पूर्वाफल्गुन्यौ**=पूर्वाफल्गुनी के दो नक्षत्र **पुण्यम्**=मुझे शुभ कर्मों में प्रवृत्त करनेवाले हों। इस जीवन में 'धन व यश' की असारता को समझता हुआ (फल्गु=Unsubstantial) इनके कारण पुण्यमार्ग से विचिलत न होऊँ। **हस्तः चित्रा**=हस्त और चित्रा नक्षत्र मुझे हाथों से यज्ञ आदि कर्मों के करने तथा ज्ञानेन्द्रियों से ज्ञानप्राप्ति में (चित्-र) लगे रहने की प्रेरणा देते हुए **शिवा**=मेरे लिए कल्याणकर हों। अब **स्वाति**='स्वाति' नक्षत्र

(स्वनैव अतति) मुझे किसी पर आश्रित न होते हुए गतिशील बनने की प्रेरणा देता हुआ **मे सुखः अस्तु**= मेरे लिए सुखकर हो। २. इस गतिशीलता (पुरुषार्थ) के होने पर **राधे विशाखे**=हे राधा और विशाखा नक्षत्र! तुम दोनों मुझे कार्यसिद्धि (राधा) व संसार-वृक्ष की विशिष्ट शाखा (उत्तम सात्त्विक ज्ञानप्रधान संन्यासी) बनने की प्रेरणा देते हुए **सुहवा**=उत्तम प्रार्थना करने योग्य होओ। मैं प्रभु से 'राधा व विशाखा' बन सकने की ही प्रार्थना करूँ। **अनुराधा ज्येष्ठा**='अनुराधा' नक्षत्र मुझे (लक्ष्य) के अनुकूल सफलता की प्रेरणा दे। 'ज्येष्ठा' नक्षत्र से मैं ज्येष्ठ (प्रशस्यतम जीवनवाला) बनने की प्रेरणा लूँ और तब **सुनक्षत्रम् मूलम्**=यह 'मूल' नामक उत्तम नक्षत्र मुझे उस ब्रह्माण्ड के मूल (सर्वाधार) प्रभु को स्मरण कराता हुआ **अ-रिष्ट**=अहिंसित करनेवाला हो।

भावार्थ—मैं इस संसार में धन व यश की एषणा में फँसकर मार्ग-विचलित न हो जाऊँ। यज्ञादि कर्मों व ज्ञानप्राप्ति में लगा रहूँ। अपराधीन होते हुए गतिशील बना रहूँ। 'सफलता व संसार में सर्वोत्तम स्थिति में पहुँचना' मेरा लक्ष्य हो। धर्मानुकूल सफलता मेरे जीवन को प्रकाशमय बनाए। मैं ब्रह्माण्ड के मूल प्रभु को कभी न भूलूँ।

ऋषिः—**गार्ग्यः**॥ देवता—**नक्षत्राणि**॥ छन्दः—**भुरिक्त्रिष्टुप्**॥

'पूर्वा अषाढा से श्रविष्ठा' तक

अन्नं॑ पू॒र्वा रास॑तां मे अषा॒ढा ऊर्जं॑ दे॒व्युत्त॑रा॒ आ व॑हन्तु।
अ॒भि॒जिन्मे॑ रासतां पुण्यमे॒व श्रव॑ण॒ः श्रवि॑ष्ठाः कुर्वतां सुपु॒ष्टिम्॥ ४॥

१. **पूर्वा अषाढा**='पूर्वा अषाढा' नक्षत्र **मे**=मुझे **अन्नं रासताम्**=अन्न प्रदान करे तथा **देवी**=प्रकाशमय **उत्तराः**=उत्तरा अषाढाएँ **ऊर्जम्**=बल व प्राणशक्ति को **आवहन्तु**=प्राप्त कराएँ। 'अ-षाढा' (अ षह् मर्षण) नक्षत्र से काम-क्रोध आदि से अपराभूत होने की प्रेरणा लेता हुआ मैं अन्न का सेवन करूँ। यह अन्न 'बल व प्राणशक्ति' के दृष्टिकोण से ही सेवित हो—स्वाद के दृष्टिकोण से नहीं। २. अब **अभिजित्**='अभिजित्' नक्षत्र मुझे 'अभ्युदय व निःश्रेयस के विजय' की प्रेरणा देता हुआ **मे पुण्यं रासताम्**=मुझे पुण्य प्राप्त कराए। '**श्रवणः श्रविष्ठाः**'= श्रवण व श्रविष्ठा नक्षत्र मेरे लिए सदा ज्ञान की बातों के श्रवण की प्रेरणा देते हुए **सुपुष्टिं कुर्वताम्**=उत्तम पुष्टि करें।

भावार्थ—मैं उसी अन्न का सेवन करूँ जो मुझे काम-क्रोध की ओर न प्रवण करे (न झुकाये) और मेरे लिए बल व प्राणशक्ति को देनेवाला हो। मैं अभ्युदय व निःश्रेयस का विजय करता हुआ सदा ज्ञान की चर्चाओं का ही श्रवण करूँ।

ऋषिः—**गार्ग्यः**॥ देवता—**नक्षत्राणि**॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्**॥

'शतभिषक् से भरणी' तक

आ मे॑ म॒हच्छ॒तभि॑षग्वरी॒य॒ आ मे॑ द्व॒या प्रो॑ष्ठप॒दा सु॒शर्म॑।
आ रे॒वती॑ चाश्व॒युजौ॒ भगं॑ म॒ आ मे॑ र॒यिं भर॑ण्य॒ आ व॑हन्तु॥ ५॥

१. यह महत् **शतभिषक्**=महान् 'शतभिषक्' नामक नक्षत्र शतवर्षपर्यन्त नीरोग रहने की प्रेरणा देता हुआ **मे**=मेरे लिए **वरीयः**=(उरुतर) दीर्घजीवन को **आ** (वहतु)=प्राप्त कराए। इस नीरोग दीर्घजीवन में **द्वया प्रोष्ठपदा**=दोनों प्रोष्ठपदा नक्षत्र—पूर्वाभाद्रपदा और उत्तरा भाद्रपदा—मुझे कल्याण के मार्ग पर चलने की प्रेरणा देते हुए **मे**=मेरे लिए **सुशर्म**=उत्तम सुख को **आ** (वहताम्)=प्राप्त कराएँ। २. अब **रेवती आश्वयुजौ च**=रेवती और आश्वयुज् नक्षत्र मुझे ज्ञानैश्वर्य

प्राप्त करने की तथा कर्मेन्द्रियों को यज्ञ आदि कर्मों में लगाये रखने की प्रेरणा देते हुए **मे**=मेरे लिए **भगम्**=ऐश्वर्य को **आ** (वहन्तु)=प्राप्त कराएँ और अन्ततः **भरण्यः**=भरणी नक्षत्र मुझे आत्मम्भरि न बनकर सबके भरण की प्रेरणा देते हुए **रयिम्**=धन को **आहवन्तु**=प्राप्त कराएँ। जब मैं सबके भरण के कार्यों में प्रवृत्त होता हूँ तब उसके लिए आवश्यक साधनभूत धन को प्रभु प्राप्त कराते ही हैं।

भावार्थ—मैं शतवर्षपर्यन्त नीरोग जीवन बिताने का ध्यान करूँ। उसके लिए सदा कल्याण के मार्ग का आक्रमण करूँ। ज्ञानैश्वर्य को प्राप्त करनेवाला व कर्मेन्द्रियों को यज्ञों में व्याप्त रखनेवाला बनूँ। अन्ततः आत्मम्भरि न बनकर सबका भरण करनेवाला बनूँ।

अगले सूक्त के ऋषि देवता भी 'गार्ग्य' और 'नक्षत्राणि' ही हैं—

८. [अष्टमं सूक्तम्]

ऋषिः—**गार्ग्यः**॥ देवता—**नक्षत्राणि**॥ छन्दः—**विराड्जगती**॥

सर्वलोकानुकूलता

यानि नक्षत्राणि दिव्यन्तरिक्षे अप्सु भूमौ यानि नगेषु दिक्षु।
प्रकल्पयंश्चन्द्रमा यान्येति सर्वाणि ममैतानि शिवानि सन्तु॥ १॥

१. **यानि**=जो **नक्षत्राणि**=(नक्ष् गतौ) गतिमय लोक **दिवि**=द्युलोक में, **अन्तरिक्षे**=अन्तरिक्ष में **अप्सु**=जलों में या **भूमौ**=इस पृथिवी पर हैं, **यानि**=जो **नगेषु**=पर्वतों पर या **दिक्षु**=दिशाओं में हैं, **यानि**=जिन लोकों को **चन्द्रमाः**=चाँद **प्रकल्पयन्**=ओषधियों में रस-सञ्चार के द्वारा शक्तिशाली बनाता हुआ **एति**=गति करता है, **एतानि सर्वाणि**=ये सब लोक **मम**=मेरे लिए **शिवानि सन्तु**=कल्याणकर हों।

भावार्थ—सब लोक हमारे लिए सुखकर हों। द्युलोक में, अन्तरिक्ष में, भूमि पर, जलों, पर्वतों वा दिशाओं में जो भी लोक-लोकान्तर है, इन सबमें चन्द्रमा ओषधियों में रस-सञ्चार करता हुआ इन्हें शक्तिशाली बनाता है। ये लोक मेरे लिए शिव हों।

ऋषिः—**गार्ग्यः**॥ देवता—**नक्षत्राणि**॥ छन्दः—**महाबृहतीत्रिष्टुप्**॥

शिव+शग्म

अष्टाविंशानि शिवानि शग्मानि सह योगं भजन्तु मे।
योगं प्र पद्ये क्षेमं च क्षेमं प्र पद्ये योगं च नमोऽहोरात्राभ्यामस्तु॥ २॥

१. **अष्टाविंशानि**=गत सूक्त में वर्णित अठाईस नक्षत्र **शिवानि**=हमारे लिए कल्याणकर हों। **शग्मानि**=हमारे लिए सुख देनेवाले हों। इनकी अनुकूलता हमें मानस व शारीर-शान्ति देनेवाली हो। ये नक्षत्र **मे सह योगं भजन्तु**=मेरे साथ मेल को प्राप्त हों। मैं इनसे उचित प्रेरणाओं को लेनेवाला बनूँ। २. इन नक्षत्रों से उचित प्रेरणाओं को लेता हुआ मैं **योगं प्रपद्ये क्षेमं च**=योग और क्षेम को प्राप्त करूँ। **क्षेमं प्रपद्ये योगं च**=क्षेम और योग को प्राप्त करूँ। अप्राप्त की प्राप्ति ही 'योग' है, प्राप्त का रक्षण 'क्षेम' है। मैं जीवन के लिए आवश्यक वस्तुओं को जुटा पाऊँ और उनका रक्षण कर पाऊँ। 'योग व क्षेम' दोनों को मैं समानरूप से महत्त्व दूँ। इसप्रकार जीवन बिताता हुआ मैं यह ध्यान रखूँ कि **अहोरात्राभ्याम्**=दिन व रात से **नमः अस्तु**=मेरा उस प्रभु के प्रति नमन हो। मैं दिन व रात को प्रभु-नमन से ही प्रारम्भ करूँ।

भावार्थ—मुझे सब नक्षत्रों की अनुकूलता प्राप्त हो। मैं उनसे उचित प्रेरणाओं को ग्रहण

करूँ। योगक्षेम को सिद्ध करता हुआ प्रातः-सायं प्रभु के प्रति नमन की वृत्तिवाला बनूँ।

ऋषिः—**गार्ग्यः**॥ देवता—**नक्षत्राणि**॥ छन्दः—**विराट्स्थानात्रिष्टुप्**॥

सुमृगं-सुशकुनम्

स्वस्तितं मे सुप्रातः सुसायं सुदिवं सुमृगं सुशकुनं मे अस्तु।
सुहवमग्ने स्वस्त्यमर्त्यं गत्वा पुनरायाभिनन्दन्॥ ३॥

१. हे **अग्ने**=प्रभो! **मे**=मेरे लिए **सु-अस्तितम्**=सूर्य का अस्तकाल कल्याणप्रद हो। **सु-प्रातः**=प्रभातवेला सुखमय हो। **सुसायम्**=सायंकाल सुखकारी हो। **सुदिनम्**=दिन सुखकर हो। **सुमृगं सुशकुनम् मे अस्तु**=मेरे लिए पशुओं व पक्षियों का व्यवहार उत्तम हो, अर्थात् किसी प्रकार का आधिभौतिक कष्ट हमें न प्राप्त हो। २. **सुहवम् स्वस्ति**=उत्तम प्रार्थना हमारा कल्याण करनेवाली हो। **अमर्त्यं गत्वा**=अमरता को—मोक्ष को प्राप्त करके **पुनः**=फिर **अभिनन्दन्**=लोगों को आनन्दित व समृद्ध करता हुआ तू **आ अय**=लोगों में समन्तात् गतिवाला हो। लोकहित के लिए यह मुक्तात्मा पुनः जन्म लेनेवाला हो।

भावार्थ—हम इसप्रकार का उत्तम जीवन बनाएँ कि हम आधिदैविक व आधिभौतिक कष्टों से ऊपर उठें। मुक्त होकर लोकहित के लिए पुनः जन्म लें।

ऋषिः—**गार्ग्यः**॥ देवता—**नक्षत्राणि**॥ छन्दः—**अनुष्टुप्**॥

रिक्तकुम्भान् परासुव

अनुहवं परिहवं परिवादं परिक्षवम्।
सर्वैर्मे रिक्तकुम्भान्परा तान्सवितः सुव॥ ४॥

१. हे **सवितः**=सर्वप्रेरक प्रभो! आप **अनुहवम्**=स्पर्धा को, **परिहवम्**=वर्जनीय संघर्ष को, **परिवादम्**=निन्दा को **परिक्षवम्**=क्रोधजनित नासिका की फुरफुराहट को, इन **सर्वैः**=सब दोषों के साथ **मे**=मेरी **तान् रिक्तकुम्भान्**=उन खाली घड़ों के समान निःसार बातों को **परासुव**=दूर कीजिए।

भावार्थ—मैं स्पर्धा आदि से बचूँ और व्यर्थ की बातों से सदा दूर रहूँ।

ऋषिः—**गार्ग्यः**॥ देवता—**नक्षत्राणि**॥ छन्दः—**अनुष्टुप्**॥

पुण्य क्षव भक्षण

अपपापं परिक्षवं पुण्यं भक्षीमहि क्षवम्।
शिवा ते पाप नासिकां पुण्यगश्चाभि मेहताम्॥ ५॥

१. **पापम्**=पाप से कमाये गये **परिक्षवम्**=वर्जनीय अन्न को (क्षु अन्ननाम नि०) हे प्रभो! **अप**=हमसे दूर कीजिए। २. हे **पाप**=पाप की ओर झुकाववाले पुरुष! **ते नासिकाम्**=तेरी नासिका को **शिवा**=कल्याणकारिणी प्राणायाम की क्रिया **अभिमेहताम्**=सब ओर से सिक्त करे। यह प्राणायाम की क्रिया तेरी पापवृत्ति को दूर करनेवाली हो। **च**=और **पुण्य-गः**=पुण्य की ओर ले-जानेवाला वह प्रभु तुझे सब ओर से सिक्त करे। प्रभु की भावना से सिक्त हुआ-हुआ तू पवित्र जीवनवाला बन जाए।

भावार्थ—'हम पवित्र अन्न का सेवन करें', प्राणसाधना को अपनाएँ तथा प्रभु का स्मरण करें', यही मार्ग है जिससे हमारा जीवन निष्पाप बन सकेगा।

ऋषिः—**गार्ग्यः**॥ देवता—**नक्षत्राणि**॥ छन्दः—**अनुष्टुप्**॥

विपरीत वात में न बह जाना

इमा या ब्रह्मणस्पते विषूचीर्वात ईरते।
सध्रीचीरिन्द्र ताः कृत्वा मह्यं शिवतमास्कृधि॥ ६॥

१. हे **ब्रह्मणस्पते**=ज्ञान के स्वामिन् प्रभो! **इमाः याः**=इन जिन **विषूचीः**=विविध विपरीत दिशाओं को **वातः**=वायु **ईरते**=चलता है, ये जो उल्टी-उल्टी आवञ्छनीय हवाएँ चल पड़ती हैं हे **इन्द्रः**=सर्वशक्तिमन् प्रभो! **ताः**=उन सबको **सध्रीचीः कृत्वा**=(सह अञ्चन्ति) यथायोग्य मिलकर चलनेवाला करके **मह्यम्**=मेरे लिए **शिवतमाः**=कल्याणकर **कृधि**=कीजिए।

भावार्थ—'ब्रह्मणस्पति व इन्द्र' नाम से प्रभु का स्मरण करते हुए हम भी ज्ञान के स्वामी व जितेन्द्रिय बनें। इसप्रकार हम उल्टी हवाओं में न बहकर सत्क्रियाओं में ही प्रवृत्त रहेंगे। ज्ञान व जितेन्द्रियता हमारे रक्षक हैं।

ऋषिः—**गार्ग्यः**॥ देवता—**नक्षत्राणि**॥ छन्दः—**द्विपदानिचृत्त्रिष्टुप्**॥

स्वस्ति+अभय

स्वस्ति नो अस्त्वभयं नो अस्तु नमोऽहोरात्राभ्यामस्तु॥ ७॥

१. गतमन्त्र के अनुसार उल्टी हवाओं में न बह जाने पर **नः स्वस्ति अस्तु**=हमारा कल्याण हो तथा **नः अभयम् अस्तु**=हमें निर्भयता प्राप्त हो। २. **अहोरात्राभ्याम्**=दिन व रात्रि से **नमः अस्तु**=हमारा प्रभु के प्रति नमन हो। हम प्रातः-सायं प्रभु-चरणों में नमस्कार करनेवाले बनें। यह नमन ही हमें उल्टी हवाओं में बह जाने से बचाएगा। अन्यथा संसार का आकर्षण अति प्रबल है, इससे बचना सरल नहीं।

भावार्थ—हम प्रातः-सायं प्रभु-चरणों में नतमस्तक होते हुए कल्याण व निर्भयता प्राप्त करें।

प्रभु के प्रति नमन के द्वारा प्रभु के गुणों का धारण करनेवाला यह 'वसिष्ठ व ब्रह्मा' ही ९ से १२ तक सूक्तों का ऋषि है। यह शान्ति की कामना करता हुआ प्रार्थना करता है कि—

९. [नवमं सूक्तम्]

ऋषिः—**शन्तातिः**॥ देवता—**मन्त्रोक्ताः**॥ छन्दः—**विराडुरोबृहती**॥

शान्ता द्यौः शान्ता पृथिवी शान्तमिदमुर्वन्तरिक्षम्।
शान्ता उदन्वतीरापः शान्ता नः सन्त्वोषधीः॥ १॥

१. **द्यौः शान्ता**=द्युलोक हमारे लिए शान्ति देनेवाला हो। **पृथिवी शान्ता**=यह पृथिवीलोक भी शान्तिकर हो। **इदम् उरु अन्तरिक्षम्**=यह विशाल अन्तरिक्षलोक **शान्तम्**=शान्ति देनेवाला हो। २. **उदन्वतीः आपः**=समुद्रों के जल (समुद्र से वाष्पीभूत होकर आकाश में पर्जन्यरूप होकर बरसनेवाले जल) **शान्ता**=हमें शान्ति देनेवाले हों तथा **ओषधीः**=ओषधियाँ **नः शान्ता सन्तु**=हमारे लिए शान्तिकर हों।

भावार्थ—द्युलोक, पृथिवीलोक, अन्तरिक्षलोक, समुद्र, जल व ओषधियाँ हमारे लिए शान्ति देनेवाली हों।

ऋषिः—**शन्तातिः**॥ देवता—**मन्त्रोक्ताः**॥ छन्दः—**अनुष्टुप्**॥

'भूत व भव्य' की अनुकूलता

शान्तानि पूर्वरूपाणि शान्तं नो अस्तु कृताकृतम्।
शान्तं भूतं च भव्यं च सर्वमेव शमस्तु नः॥ २॥

१. **पूर्वरूपाणि**=पहले-पहले प्रादुर्भूत हुए रोगों के पूर्वरूप हमारे लिए **शान्तानि**=शान्त हों—कष्टजनक न हों। रोग प्रारम्भ में ही समाप्त हो जाए, वह बढ़कर हमारे कष्ट का कारण न बने। **कृताकृतम्**=(कृतं च अकृतं च) कुछ किया गया और कुछ न किया गया, अर्थात् अधूरा काम **नः**=हमारे लिए **शान्तम् अस्तु**=शान्त हो जाए, अर्थात् हम कार्यों को अधूरेपन से न करें। २. इसप्रकार **भूतं च भव्यम् च**=विगत काल व आनेवाला काल—दोनों ही हमारे लिए **शान्तम्**=शान्ति देनेवाले हों। वस्तुतः **सर्वम् एव**=सब-कुछ ही **नः शम् अस्तु**=हमारे लिए शान्तिकर हो।

भावार्थ—हम रोगों को प्रारम्भ में ही शान्त करनेवाले बनें। सब-कुछ—सारा वातावरण और पदार्थ हमें शान्ति देनेवाले हों।

ऋषिः—**शन्तातिः**॥ देवता—**मन्त्रोक्ताः**॥ छन्दः—**अनुष्टुप्**॥

शान्ति, न कि घोर

इयं या परमेष्ठिनी वाग्देवी ब्रह्मसंशिता।
ययैव ससृजे घोरं तयैव शान्तिरस्तु नः॥ ३॥

१. **इयम्**=यह **या**=जो **परमेष्ठिनी**=प्रभु में स्थित अथवा प्रभु से दी गई **देवी**=दिव्यशक्तिसम्पन्न **वाक्**=वाणी है, यह **ब्रह्मसंशिता**=ज्ञान के द्वारा तीव्र की गई है। ज्ञानवृद्धि से वाणी की शक्ति बढ़ती चलती है। अन्ततः इससे जो कुछ उच्चारित होता है, वैसा ही हो जाता है 'ऋषीणां पुनराद्यानां वाचमर्थोऽनुवर्तते'=सज्जन पुरुषों की वाणी अर्थ का अनुवर्तन करती है—यथार्थ होती है, परन्तु ऋषियों की वाणी का तो अर्थ अनुवर्तन करता है। वह जैसा कहते हैं, वैसा हो जाता है। इसी को 'वर व शाप देने का सामर्थ्य' कहते हैं। २. इसप्रकार ब्रह्मसंशित **यया**=जिस वाणी से **एव**=ही **घोरं ससृजे**=अति भयंकर कार्य किये जा सकते हैं, **तया**=उससे **नः**=हमारे लिए **शान्तिः एव अस्तु**=शान्ति ही हो। हम वाणी से कभी शाप देनेवाले न बनें।

भावार्थ—हम प्रभु-प्रदत्त वाणी को ज्ञानप्राप्ति द्वारा अति तीव्रशक्तिवाली बनाएँ, परन्तु इससे कभी शाप न देकर, वर ही देनेवाले बनें।

ऋषिः—**शन्तातिः**॥ देवता—**मन्त्रोक्ताः**॥ छन्दः—**अनुष्टुप्**॥

शुभकामना व ब्रह्म-प्राप्ति

इदं यत्परमेष्ठिनं मनो वां ब्रह्मसंशितम्।
येनैव ससृजे घोरं तेनैव शान्तिरस्तु नः॥ ४॥

१. **इदम्**=यह **यत्**=जो **परमेष्ठिनम्**=परम स्थानों में स्थित होनेवाला अथवा प्रभु का—प्रभु से दिया गया **मनः**=मन है, **वाम्**=हे स्त्री-पुरुषो! आप दोनों का यह मन **ब्रह्मसंशितम्**=ज्ञान के द्वारा तीव्र किया गया है। ज्ञानी पुरुष का मन अत्यन्त प्रबल शक्तिवाला हो जाता है—वह चाहता है और वैसा हो जाता है। २. **येन**=जिस ब्रह्मसंशित मन के द्वारा **एव**=निश्चय से **घोरं ससृजे**=बड़ा भयंकर कार्य भी किया जा सकता है, **तेन**=उस मन से **नः**=हमारे लिए तो **शान्तिः एव**

अस्तु=शान्ति ही हो। हम मन में किसी के लिए अशुभ कामना करें ही न। हमारा मन सदा सबके लिए शुभ कामनावाला हो।

भावार्थ—हम ब्रह्मसंशित मन के द्वारा सदा सबके लिए शुभ कामना करते हुए प्रभु को प्राप्त करनेवाले बनें।

ऋषिः—**शन्तातिः** ॥ देवता—**मन्त्रोक्ताः** ॥ छन्दः—**पञ्चपदापथ्यापङ्क्तिः** ॥

शान्तिकर इन्द्रियाँ

इमानि यानि पञ्चेन्द्रियाणि मनःषष्ठानि मे हृदि ब्रह्मणा संशितानि।
यैरेव ससृजे घोरं तैरेव शान्तिरस्तु नः ॥ ५ ॥

१. **इमानि**=ये **यानि**=जो **पञ्च इन्द्रियाणि**=पाँच इन्द्रियाँ हैं, **मनःषष्ठानि**=मन इनके साथ छठा है। ये सब **मे**=मेरे **हृदि**=हृदय में प्रादुर्भूत **ब्रह्मणा**=ज्ञान से **संशितानि**=तीव्र की जाती हैं। जितना-जितना ज्ञान का प्रादुर्भाव होता है, उतना-उतना ही ये इन्द्रियाँ व मन तीव्र शक्तिवाले होते जाते हैं। २. उस समय **यैः एव**=जिन ब्रह्मसंशित इन्द्रियों के द्वारा निश्चय से **घोरं ससृजे**=बड़ा भयंकर कार्य भी किया जा सकता है, **तैः**=उन इन्द्रियों से **नः**=हमारे लिए तो **शान्तिः एव अस्तु**=शान्ति ही हो।

भावार्थ—हम ज्ञान से तीव्र शक्तिवाली इन ज्ञानेन्द्रियों से संसार में सुख व शान्ति को ही बढ़ानेवाले हों। युद्धों व संहारों को बढ़ावा न दें।

ऋषिः—**शन्तातिः** ॥ देवता—**मन्त्रोक्ताः** ॥ छन्दः—**अनुष्टुप्** ॥

शान्ति-प्राप्ति के उपाय

शं नो मित्रः शं वरुणः शं विष्णुः शं प्रजापतिः।
शं न इन्द्रो बृहस्पतिः शं नो भवत्वर्यमा ॥ ६ ॥

१. **मित्रः**=सबके प्रति स्नेहवाला प्रभु—जो मित्र-ही-मित्र है, **नः शम्**=हमारे लिए शान्ति प्राप्त करानेवाला हो। **वरुणः**=सब पापों का निवारण करनेवाला—श्रेष्ठ प्रभु **शम्**=हमें शान्ति देनेवाला हो। **अर्यमा**=सब शत्रुओं का—काम-क्रोध-लोभ आदि का नियमन करनेवाला प्रभु **नः**=हमारे लिए **शं भवतु**=शान्ति देनेवाला हो। २. **विष्णुः**=(विष् व्याप्तौ) सर्वव्यापक प्रभु **शम्**=हमें शान्ति दें और **प्रजापतिः**=सब प्रजाओं के रक्षक प्रभु **शम्**=हमें शान्ति देनेवाले हों। **इन्द्रः**=परमैश्वर्यवान् व सर्वशक्तिमान् प्रभु **नः**=हमारे लिए **शम्**=शान्ति दें और **बृहस्पतिः**=ब्रह्मणस्पति—ज्ञान के स्वामी प्रभु हमें शान्ति प्राप्त कराएँ।

भावार्थ—हम प्रभु को 'मित्र-वरुण-विष्णु-प्रजापति-इन्द्र-बृहस्पति व अर्यमा' नामों से स्मरण करते हुए स्वयं 'स्नेह, निष्पापता, उदारता, प्रजारक्षण, जितेन्द्रियता (शक्तिमत्ता) ज्ञान व काम-क्रोध आदि शत्रुओं के नियमन' को धारण करते हुए शान्त जीवनवाले बनें।

ऋषिः—**शन्तातिः** ॥ देवता—**मन्त्रोक्ताः** ॥ छन्दः—**अनुष्टुप्** ॥

'मित्र व अन्तक' हमें शान्ति दें

शं नो मित्रः शं वरुणः शं विवस्वाञ्छमन्तकः।
उत्पाताः पार्थिवान्तरिक्षाः शं नो दिविचरा ग्रहाः ॥ ७ ॥

१. **मित्रः**=सबके प्रति स्नेहवाले प्रभु **नः शम्**=हमें शान्ति प्राप्त कराएँ। **वरुणः**=पापों का निवारण करनेवाले प्रभु **शम्**=हमें शान्ति दें। **विवस्वान्**=सब अन्धकारों का विवासन करनेवाले

सूर्यसम ब्रह्म हमें **शम्**=शान्ति दें। ज्ञान के द्वारा **अन्तकः**=सब बुराइयों का अन्त करनेवाले प्रभु हमें **शम्**=शान्ति दें। २. **पार्थिवा अन्तरिक्षा उत्पाताः**='पृथिवी व अन्तरिक्ष' में उत्पन्न होनेवाले उत्पात (भूकम्प व उल्कापात आदि) **शम्**=हमारे लिए शान्त हों। ये **दिविचराः ग्रहाः**=द्युलोक में गतिवाले ग्रह **नः शम्**=हमारे लिए शान्ति दें।

भावार्थ—हम 'सबके प्रति स्नेहवाले—पाप को दूर करनेवाले—अज्ञानान्धकार को स्वाध्याय द्वारा मिटानेवाले तथा काम-क्रोध आदि का अन्त करनेवाले' बनकर शान्ति प्राप्त करें। हमारे लिए पार्थिव व आन्तरिक्ष उत्पात शान्त हों। सब ग्रह शान्तिकर हों।

ऋषिः—**शन्तातिः**॥ देवता—**मन्त्रोक्ताः**॥ छन्दः—**अनुष्टुप्**॥

भूकम्प आदि से बचाव

शं नो॒ भूमि॑र्वेप्यमा॒ना शमु॒ल्का निर्ह॑तं च॒ यत्।
शं गावो॒ लोहि॑तक्षीरा॒ः शं भूमि॒रव॑ तीर्य॒तीः॥ ८॥

१. **वेप्यमाना**=किन्हीं भी प्राकृतिक उद्वेगों से कँपायी गई **भूमिः नः शम्**=भूमि हमारे लिए शान्तिकर हो। हमें भूकम्प कष्टमग्न न करे **च**=और **उल्का निर्हतम्**=आकाश से भूमि पर गिरनेवाले पिण्डों का **यत्**=जो आघात है, वह भी **शम्**=शान्त हो। २. रोग के कारण **लोहितक्षीराः**=रुधिर के समान दूध देनेवाली **गावः**=गौएँ **शम्**=शान्ति दें। **अवतीर्यतीः**=नीचे समुद्र में धँसती हुई **भूमिः**=भूमि **शम्**=हमारे लिए कष्टकर न हो।

भावार्थ—'भूकम्प, उल्का निर्घात, भूमि का समुद्र में धंस जाना' आदि आधिदैविक कष्ट हमें पीड़ित न करें। हमारी गौओं के दूध में किसी प्रकार का विकार न आ जाए।

ऋषिः—**शन्तातिः**॥ देवता—**मन्त्रोक्ताः**॥ छन्दः—**पञ्चपदाककुम्मतीत्रिष्टुप्**॥

अभिचार व कृत्या आदि की शान्ति

नक्ष॑त्रमु॒ल्काभि॑ह॒तं॒ शम॑स्तु॒ नः॒ शं नो॑ऽभिचा॒राः शमु॑ सन्तु कृ॒त्याः।
शं नो॒ नि॑खा॒ता व॒ल्गाः शमु॒ल्का दे॑शोप॒स॒र्गाः शमु॑ नो भवन्तु॥ ९॥

१. **उल्का अभिहतं नक्षत्रम्**=उल्काओं से अभिहत नक्षत्र **नः शम् अस्तु**=हमारे लिए शान्तिकर हो। **अभिचाराः**=शत्रुकृत गुप्त आक्रमण **नः शम्**=हमारे लिए शान्त हों **उ**=और **कृत्याः**=हिंसा की क्रियाएँ **शं सन्तु**=शान्त हों। हमारे प्रति शत्रुकृत अभिचार व कृत्या हो ही न। २. **निखाताः**=विस्फोटक द्रव्य भरकर उड़ा देने के लिए खोदी गई सुरंगें **नः शम्**=हमारे लिए शान्त हों, **वल्गाः**=(बल संवरणे) अन्य कपटपूर्वक हिंसन के कार्य (संवृत गर्त आदि) शान्त हों। **उल्काः**=आकाशस्थ लघु पिण्डों के पतन **शम्**=शान्त हों **उ**=और **नः**=हमारे लिए देश में उत्पन्न होनेवाले संहारक उपद्रव **शं भवन्तु**=शान्त हों।

भावार्थ—'उल्कापात, अभिचार, कृत्या, निखात, वल्गा व देशोपसर्ग' ये सब शान्त हों।

ऋषिः—**शन्तातिः**॥ देवता—**मन्त्रोक्ताः**॥ छन्दः—**अनुष्टुप्**॥

चान्द्रमस ग्रह शान्तिकर हों

शं नो॒ ग्रहा॑श्चान्द्रम॒साः शमा॑दि॒त्यश्च॑ राहु॒णा।
शं नो॑ मृ॒त्युर्धू॒मके॑तु॒ः शं रु॒द्रास्ति॒ग्मते॑जसः॥ १०॥

१. **चान्द्रमसाः**=चन्द्रमा से सम्बद्ध **ग्रहाः**=सब ग्रह **नः शम्**=हमारे लिए शान्त हों **च**=और **राहुणा**=प्रकाश को आवृत करनेवाले (विच्छिन्न करनेवाले) 'राहु' के साथ **आदित्यः**=सूर्य **शम्**=हमारे लिए शान्तिकर हो। २. **मृत्युः**=लोगों की मृत्यु का कारण बननेवाला **धूमकेतुः**=धूमकेतु

ग्रह **नः शम्**=हमारे लिए शान्तिकर हो तथा **तिग्मतेजसः**=तीव्र तेज-(ताप व प्रकाश)-वाले **रुद्राः**='मृग-व्याध' आदि नक्षत्र **शम्**=हमारे लिए शान्तिकर हों।

भावार्थ—सब चान्द्रमस ग्रहों की, राहु के साथ सूर्य की, धूमकेतु तथा मृग-व्याध आदि नक्षत्रों की हमारे लिए अनुकूलता हो। (मृगव्याधश्च सर्पश्च निर्ऋतिश्च महायशाः। अजैकपादहिर्बुध्नः पिनाकी च परन्तप॥ दहनोऽथेश्वरश्चैव कपली च महाद्युतिः। स्थणुर्भगश्च भगवान् रुद्रा एकादश स्मृताः)॥

ऋषिः—**शन्तातिः**॥ देवता—**मन्त्रोक्ताः**॥ छन्दः—**अनुष्टुप्**॥

वसु-रुद्र-आदित्यों से शान्ति लाभ

शं रुद्राः शं वसवः शमादित्याः शमग्नयः।
शं नो महर्षयो देवाः शं देवाः शं बृहस्पतिः॥ ११॥

१. **रुद्रा शम्**=चवालीस वर्ष तक ब्रह्मचर्य का धारण करनेवाले रुद्र ब्रह्मचारी हमारे लिए शान्ति प्राप्त कराएँ। **वसवः शम्**=२४ वर्ष तक ब्रह्मचर्य के धारक वसु ब्रह्मचारी हमें शान्ति दें। **आदित्याः**=४८ वर्ष तक ब्रह्मचर्य का धारण करनेवाले विद्वान् आदित्य हमें शान्ति प्राप्त कराएँ। **अग्नयः**=माता-पिता व आचार्यरूप अग्नियाँ हमें **शम्**=शान्ति दें। ('पिता वै गार्हपत्योऽग्निः माताग्निर्दक्षिणः स्मृतः। गुरुराहवनीयस्तु साग्नित्रेता गरीयसी॥')। २. **नः**=हमारे लिए **महर्षयः देवाः**=तत्त्वद्रष्टा ज्ञानी **शम्**=शान्ति दें तथा **देवाः**=सब दिव्यवृत्ति के पुरुष **शम्**=शान्ति प्राप्त कराएँ और **बृहस्पतिः**=ज्ञानियों का ज्ञानी बृहस्पति **शम्**=हमें शान्ति दे।

भावार्थ—सब विद्वान्, ऋषि व देव हमें शान्ति प्राप्त कराएँ।

ऋषिः—**शन्तातिः**॥ देवता—**मन्त्रोक्ताः**॥ छन्दः—**सप्तपदाऽष्टिः**॥

स्वस्त्ययन+शर्म

ब्रह्म प्रजापतिर्धाता लोका वेदाः सप्तऋषयोऽग्नयः।
तैर्मे कृतं स्वस्त्ययनमिन्द्रो मे शर्म यच्छतु ब्रह्मा मे शर्म यच्छतु।
विश्वे मे देवाः शर्म यच्छन्तु सर्वे मे देवाः शर्म यच्छन्तु॥ १२॥

१. **ब्रह्म**=ज्ञान, **प्रजापतिः**=राजा, **धाता**=सब लोकों का धारक प्रभु, **लोकाः**=सब लोक, **वेदाः**=प्रभु से दिये गये 'ऋग्वेद-यजुर्वेद-सामवेद-अथर्ववेद', **सप्त ऋषयः**=दो कान, दो नासिका-छिद्र, दो आँखें व मुख, **अग्नयः**='मातृरूप दक्षिणाग्नि, पितृरूप गार्हपत्य अग्नि तथा आचार्यरूप आहवनीयाग्नि' **तैः**=उन सबके द्वारा **मे स्वस्त्ययनं कृतम्**=मेरे कल्याण का मार्ग किया गया है। इन सबकी प्रेरणा, अनुग्रह व व्यवस्था से मैं कल्याण के मार्ग पर चला हूँ। २. **इन्द्रः**=वे सर्वशक्तिमान् प्रभु **मे शर्म यच्छतु**=मेरे लिए सुख दें। **ब्रह्मा**=वे सर्वज्ञ प्रभु **मे शर्म यच्छतु**=मुझे सुख दें। शक्ति व ज्ञान का (क्षत्र व ब्रह्म का) सम्पादन करता हुआ मैं कल्याण प्राप्त करूँ। **विश्वेदेवाः**=सभी प्राकृतिक शक्तियाँ—सूर्य, चन्द्र, नक्षत्र, वायु आदि देव **मे शर्म यच्छन्तु**=मुझे सुख दें। ये मुझे शारीरिक आरोग्य प्राप्त कराके सुखी करें। **सर्वे देवाः**=सब विद्वान् व माता-पिता-आचार्य व अतिथिरूप देव **मे शर्म यच्छन्तु**=मुझे सुखी करें। ये मुझे मानस स्वास्थ्य प्राप्त कराके आनन्दयुक्त जीवनवाला बनाएँ।

भावार्थ—ज्ञान, राजा, प्रभु, सब लोक, वेद, ऋषि व अग्नियाँ मुझे कल्याण के मार्ग पर ले-चलें। मैं शक्ति व ज्ञान का सम्पादन करता हुआ सुख प्राप्त करूँ। प्राकृतिक देव मुझे नीरोग बनाएँ, विद्वान् मुझे स्वस्थ मनवाला करें और इसप्रकार मुझे सुख प्राप्त कराएँ।

ऋषिः—**शन्तातिः**॥ देवता—**मन्त्रोक्ताः**॥ छन्दः—**अनुष्टुप्**॥

शम्+अभय

यानि कानि चिच्छान्तानि लोके सप्तऋषयो विदुः।
सर्वाणि शं भवन्तु मे शं मे अस्त्वभयं मे अस्तु॥ १३॥

१. **लोके**=लोक में **यानि कानिचित्**=जो कोई भी **शान्तानि**=शान्तिदायक कर्म हैं, **सप्तऋषयः**=मेरे सप्त ऋषि—'दो कान, दो नासिका-छिद्र, दो आँखें व मुख'—उनको **विदुः**=जानते हैं। मेरे ये सात ऋषि उन्हीं को अपनाने का प्रयत्न करते हैं। २. इस प्रकार ये **सर्वाणि**=सब **मे शं भवन्तु**=मेरे लिए शान्ति देनेवाले हों। **मे शम् अस्तु**=मेरे लिए शान्ति हो। **मे अभयम् अस्तु**=मेरे लिए निर्भयता हो।

भावार्थ—मैं इन कान आदि सप्त ऋषियों से शान्त कर्मों को करता हुआ शान्ति व निर्भयता प्राप्त करूँ।

ऋषिः—**शन्तातिः**॥ देवता—**मन्त्रोक्ताः**॥ छन्दः—**चतुष्पदासंकृतिः**॥

'मोहं, घोर, क्रूर व पाप' का दूरीकरण

पृथिवी शान्तिरन्तरिक्षं शान्तिर्द्यौः शान्तिरापः शान्तिरोषधयः शान्तिर्वनस्पतयः शान्तिर्विश्वे मे देवाः शान्तिः सर्वे मे देवाः शान्तिः शान्तिः शान्तिः शान्तिभिः। ताभिः शान्तिभिः सर्वशान्तिभिः शमयामोऽहं यदिह घोरं यदिह क्रूरं यदिह पापं तच्छान्तं तच्छिवं सर्वमेव शमस्तु नः॥ १४॥

१. **पृथिवी शान्तिः**=यह पृथिवीलोक हमारे लिए शान्ति देनेवाला हो। **अन्तरिक्षं शान्तिः**=अन्तरिक्षलोक शान्ति देनेवाला हो। **द्यौः शान्तिः**=द्युलोक शान्ति देनेवाला हो। **आपः शान्तिः**=जल शान्तिकर हों। **ओषधयः शान्तिः**=ओषधियाँ शान्तिकर हों। **वनस्पतयः**=वनस्पतियाँ **शान्तिः**=शान्तिकर हों। **विश्वेदेवाः**=सब प्राकृतिक देव **मे शान्तिः**=मुझे नीरोगता के द्वारा शान्ति देनेवाले हों। **सर्वे देवाः**=सब विद्वान् **मे शान्तिः**=मुझे मानस स्वास्थ्य प्राप्त कराके शान्ति देनेवाले हों। **शान्तिभिः शान्तिः शान्तिः**=इन सब शान्तियों के द्वारा मुझे शारीर शान्ति व मानस शान्ति प्राप्त हो। २. **ताभिः शान्तिभिः**=उन शान्तियों के द्वारा **सर्वशान्तिभिः**=सब शान्तियों के द्वारा **मोहं शमया**=हमारे वैचित्य को शान्त कीजिए। हम **शम् अयामः**=शान्ति को प्राप्त होते हैं। २. हम स्वस्थचित्त बन पाएँ। **यत् इह पापम्**=जो भी यहाँ पाप है, **तत् शान्तम्**=वह शान्त हो, **तत् शिवम्**=वह शिव हो जाए। असत् के स्थान में सब-कुछ सत् हो जाए। इसप्रकार **सर्वम् एव**=सब-कुछ ही **नः**=हमारे लिए **शम् अस्तु**=शान्त हो जाए।

भावार्थ—तीनों लोकों, जलों, ओषधि, वनस्पतियों, सब प्राकृतिक शक्तियों व विद्वानों की अनुकूलता से हमें शान्ति प्राप्त हो। हमारे जीवनों में से मोह, घोर, क्रूर व पाप का निराकरण होकर शान्ति-ही-शान्ति प्राप्त हो।

१०. [दशमं सूक्तम्]

ऋषिः—**वसिष्ठः**॥ देवता—**मन्त्रोक्ताः**॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्**॥

'अग्नि, वरुण, सोम व पूषा'

शं न इन्द्राग्नी भवतामवोभिः शं न इन्द्रावरुणा रातहव्या।
शमिन्द्रासोमा सुविताय शं योः शं न इन्द्रापूषणा वाजसातौ॥ १॥

१. **नः**=हमारे लिए **इन्द्राग्नी**=शत्रुओं का विद्रावण करनेवाला राजा और ज्ञान देकर आगे ले-चलनेवाला ब्राह्मण ये दोनों **अवोभिः**=रक्षणों के द्वारा **शम्**=शान्ति प्राप्त कराएँ। **नः**=हमारे लिए **इन्द्रावरुणा**=शत्रुविद्रायक राजा तथा अव्यवस्थाओं का निवारण करनेवाला क्षत्रियवर्ग **रातहव्या**=(रातं हव्यं याभ्याम्) जिनके लिए उचित कर (Tax) दिया गया है, ऐसे होते हुए **शम्**=शान्ति प्राप्त कराएँ। २. **इन्द्रासोमा**=शत्रुविद्रावक राजा तथा सौम्य स्वभाव का श्रमिक वर्ग (Labour) **शम्**=शान्ति प्राप्त कराए तथा **सुविताय**=सब कार्यों के सम्यक् प्रचलन के लिए—ये इन्द्र और सोम **शं योः**=रोगों का शमन व भयों का यावन (पृथक्करण) करनेवाले हों। **इन्द्राषूषणा**=शत्रुविद्रावक राजा तथा 'कृषि, गोरक्षा व वाणिज्य' के द्वारा सबका पोषण करनेवाले वैश्य **वाजसातौ**=अन्न की प्राप्ति कराके **नः शम्**=हमारे लिए शान्ति देनेवाले हों।

भावार्थ—राजा तथा राजशक्ति से सहायता-प्राप्त 'ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य व शूद्र' सब अपने कार्यों को समुचित रूप से करते हुए हमारे लिए शान्ति देनेवाले हों।

ऋषिः—**वसिष्ठः**॥ देवता—**मन्त्रोक्ताः**॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्**॥

भगः-अर्यमा

शं नो॒ भग॒: शमु॑ न॒: शंसो॑ अस्तु॒ शं न॒: पुर॑न्धि॒: शमु॑ सन्तु रा॒यः।
शं नः॑ स॒त्यस्य॑ सु॒यम॑स्य॒ शंस॒: शं नो॑ अ॒र्यमा॑ पु॒रुजा॒तो अ॑स्तु॥ २॥

१. **नः**=हमारे लिए **भगः**=ऐश्वर्य **शम्**=शान्ति देनेवाला हो। **उ**=और **नः**=हमारे लिए **शंसः**=विज्ञान (Science) **शम् अस्तु**=शान्तिकर हो। **नः**=हमारे लिए **पुरन्धिः**=पालक व पूरक बुद्धि **शम्**=शान्ति प्राप्त कराए **उ**=और **रायः**=सब धन **शं सन्तु**=शान्ति करनेवाले हों। २. **नः**=हमारे लिए **सत्यस्य**=सत्य का तथा **सुयमस्य**=उत्तम नियम का **शंसः**=उपदेश **शम्**=शान्ति देनेवाला हो। **नः**=हमारे लिए **पुरुजातः**=महान् विकासवाला **अर्यमा**=सब-कुछ देनेवाला (अर्यर्मेति तमाहुर्यो ददाति) अथवा न्यायकारी प्रभु **शं अस्तु**=शान्ति प्राप्त करानेवाला हो।

भावार्थ—भौतिक ऐश्वर्य, ज्ञान, बुद्धि व धन हमारे लिए शान्ति देनेवाले हों। सत्य व संयम का उपदेश हमें शान्ति दे। सब-कुछ देनेवाले वे प्रभु आवश्यक वस्तुओं को प्राप्त कराके हमें शान्ति दें।

ऋषिः—**वसिष्ठः**॥ देवता—**मन्त्रोक्ताः**॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्**॥

धाता-धर्ता

शं नो॑ धा॒ता शमु॑ ध॒र्ता नो॑ अस्तु॒ शं न॑ उरू॒ची भ॑वतु स्व॒धाभि॑:।
शं रोद॑सी बृह॒ती शं नो॒ अद्रि॒: शं नो॑ दे॒वानां॑ सुहवा॑नि सन्तु॥ ३॥

१. **नः**=हमारे लिए **धाता**=सब लोक-लोकान्तरों का धारण करनेवाला प्रभु **शम्**=शान्ति दे **उ**=और **धर्ता**=सब प्राणियों का धारण करनेवाला (आश्रयदाता) प्रभु **शं अस्तु**=शान्ति देनेवाला हो। **नः**=हमारे लिए यह **उरूची**=(उरु अञ्चति) सुदूर प्रदेश तक फैली हुई पृथिवी **स्वधाभिः**=अन्नों के द्वारा **शम्**=शान्ति करनेवाली **भवतु**=हो। २. **बृहती**=विशाल **रोदसी**=द्यावापृथिवी **शम्**=शान्तिकर हों। **नः**=हमारे लिए **अद्रिः**=पर्वत व मेघ **शम्**=शान्ति दें। **नः**=हमारे लिए **देवानाम्**=दिव्यवृत्तिवाले ज्ञानी पुरुषों के **सुहवानि**=उत्तम आह्वान **शं सन्तु**=शान्तिकर हों। हम घरों में समय-समय पर ज्ञानी विद्वानों को आमन्त्रित करें और उनसे ज्ञानोपदेश सुनकर उत्तम मार्ग पर चलनेवाले बनें।

भावार्थ—ब्रह्माण्ड व सब प्राणियों का धारण करनेवाले प्रभु हमें शान्ति प्राप्त कराएँ। यह पृथिवी उत्तम अन्नों को देकर हमें सुखी व शान्त करे। द्युलोक व पृथिवीलोक हमें शान्ति देनेवाले

हों, पर्वत व मेघ हमारे लिए सुखकर हों। हम सदा ज्ञानियों के सम्पर्क में ज्ञानोपदेश प्राप्त करके जीवन में उत्तम मार्ग पर चलते हुए शान्त जीवनवाले हों।

ऋषिः—**वसिष्ठः**॥ देवता—**मन्त्रोक्ताः**॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्**॥

'ज्योतिरनीक' अग्नि

शं नो॑ अ॒ग्निर्ज्योति॑रनीको अस्तु॒ शं नो॑ मि॒त्रावरु॑णाव॒श्विना॒ शम्।
शं नः॑ सुकृ॒तां सुकृ॑तानि॑ सन्तु॒ शं न॑ इषि॒रो अ॒भि वा॑तु॒ वातः॑॥ ४॥

१. **ज्योतिरनीकः**=(अनीकम् face)=ज्योतिर्मय मुखवाला—जिसके मुख से ज्ञान की ही वाणियों का उच्चारण होता है—यह ब्राह्मण **नः शं अस्तु**=हमारे लिए शान्ति करनेवाला हो। **मित्रावरुणौ**=स्नेह व द्वेष-निवारण (निर्द्वेषता) की भावनाएँ **नः शम्**=हमारे लिए शान्तिकर हों। **अश्विना**=प्राणापान शक्ति **शम्**=हमें शान्ति दे। २. **सुकृताम्**=पुण्यशालियों के **सुकृतानि**=पुण्यकर्म **नः**=हमारे लिए **शम्**=शान्तिकर **सन्तु**=हों और यह **इषिरः**=गतिशील **वातः**=वायु **नः**=हमारे लिए भी गति की प्रेरणा देता हुआ **शम् अभिवातु**=शान्तिकर होकर चारों ओर बहे।

भावार्थ—ज्ञानी ब्राह्मण ज्ञान देते हुए हमें शान्ति प्राप्त कराएँ। स्नेह व निर्द्वेषता का भाव तथा प्राणापानशक्ति हमें शान्ति दे। पुण्यकर्मा लोगों के पुण्यकर्म हमें शान्ति प्राप्त कराएँ और यह निरन्तर गतिशील वायु गति की प्रेरणा देता हुआ हमें शान्ति प्राप्त कराए।

ऋषिः—**वसिष्ठः**॥ देवता—**मन्त्रोक्ताः**॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्**॥

द्यावापृथिवी

शं नो॒ द्यावा॑पृथि॒वी पूर्व॑हू॒तौ॒ शम॒न्तरि॑क्षं दृ॒शये॑ नो अस्तु।
शं न॒ ओष॑धीर्व॒निनो॑ भवन्तु॒ शं नो॒ रज॑स॒स्पति॑रस्तु॒ जि॒ष्णुः॥ ५॥

१. **पूर्वहूतौ**=सबसे प्रथम पुकार में **द्यावापृथिवी**=द्युलोक व पृथिवीलोक **नः शम्**=हमारे लिए शान्तिकर हों। हम प्रातः प्रभु से सर्वप्रथम यही आराधना करते हैं कि ये द्युलोक और पृथिवीलोक हमें शान्ति प्राप्त कराएँ। **अन्तरिक्षम्**=यह अन्तरिक्ष भी **दृशये**=विशाल दृष्टि के लिए **नः शम् अस्तु**=हमारे लिए शान्तिकर हो। हम अन्तरिक्ष से मध्यमार्ग में चलने की प्रेरणा लेते हुए विशाल दृष्टिकोणवाले बनें। २. ये **वनिनः**=वन में उत्पन्न होनेवाली **ओषधीः**=ओषधियाँ **नः शम्**=हमारे लिए शान्तिकर **भवन्तु**=हों। वह **रजसस्पतिः**=सब लोकों का स्वामी **जिष्णुः**=विजयशील प्रभु **नः शम् अस्तु**=हमारे लिए शान्तिकर हो। हम भी शरीरस्थ अंगों के स्वामी बनते हुए विजयशील बनें। यही सच्ची शान्ति की प्राप्ति का मार्ग है।

भावार्थ—द्यावापृथिवी, अन्तरिक्ष व ओषधियाँ—ये सब हमें शान्ति प्राप्त कराएँ। 'रजसस्पति जिष्णु' प्रभु से हम भी शरीरस्थ अंगों के स्वामी बनने तथा विजयशील बनने की प्रेरणा लें।

ऋषिः—**वसिष्ठः**॥ देवता—**मन्त्रोक्ताः**॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्**॥

वसु, आदित्य, रुद्र

शं न॒ इन्द्रो॒ वसु॑भिर्दे॒वो अ॑स्तु॒ शमा॑दि॒त्येभि॒र्वरु॑णः सु॒शंसः॑।
शं नो॑ रु॒द्रो रु॒द्रेभि॒र्जला॑षः॒ शं न॒स्त्वष्टा॒ ग्नाभि॑रि॒ह शृ॑णोतु॥ ६॥

१. **इन्द्रः देवः**=वह परमैश्वर्यशाली दिव्यगुणों का पुञ्ज प्रभु **वसुभिः**=हमारे निवासों को उत्तम बनानेवाले वसु विद्वानों के द्वारा **नः**=हमारे लिए **शम् अस्तु**=शान्ति प्राप्त करानेवाले हों। **सुशंसः**=उत्तम ज्ञान देनेवाले **वरुणः**=पापों के निवारक प्रभु **आदित्येभिः**=सूर्यसम ज्ञानज्योतिर्मय विद्वानों के द्वारा **शम्**=शान्ति प्राप्त कराएँ। २. (जलाषम्=Happiness) **जलाषः**=आनन्दमय

रुद्रः=सब रोगों का विद्रावण करनेवाले प्रभु **रुद्रेभिः**=ज्ञानोपदेश द्वारा हमें नीरोगता के मार्ग पर ले-चलनेवाले विद्वानों के द्वारा **नः शम्**=हमें शान्ति दें। **त्वष्टा**=(त्विषेर्वा स्याद् दीप्तिकर्मणः। नि०) ज्ञानदीप्त प्रभु **ग्नाभिः**=ज्ञान की वाणियों के द्वारा **नः शम्**=हमें शान्ति प्राप्त कराएँ, ये प्रभु **इह**=यहाँ **शृणोतु**=हमारी इस प्रार्थना को सुनें।

भावार्थ—प्रभु वसु, रुद्र व आदित्य विद्वानों के द्वारा ज्ञान प्राप्त कराके हमें 'जितेन्द्रिय, निर्दोष, आनन्दमय य ज्ञानदीप्त' बनाकर शान्त जीवनवाला बनाएँ।

ऋषिः—**वसिष्ठः**॥ देवता—**मन्त्रोक्ताः**॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्**॥

सोम-रक्षण+ज्ञान+यज्ञ

शं नः सोमो भवतु ब्रह्म शं नः शं नो ग्रावाणः शमु सन्तु यज्ञाः।
शं नः स्वरूणां मितयो भवन्तु शं नः प्रस्वः शम्वस्तु वेदिः॥ ७॥

१. **सोमः**=शरीर में सुरक्षित सोम (वीर्य) **नः शम्**=हमारे लिए शान्तिकर हो। **ब्रह्म**=ज्ञान **नः**=हमारे लिए **शम् भवतु**=शान्तिकर हो। सोम-रक्षण से ही तो ज्ञानाग्नि दीप्त होगी। **नः**=हमारे लिए **ग्रावाणः**=(विद्वांसो हि ग्रावाणः श० ३.४.३.९) विद्वान् लोग ज्ञानोपदेश के द्वारा **नः शम्**=हमें शान्ति दें। **उ**=और ज्ञान प्राप्त करके **यज्ञाः**=हमसे किये जाते हुए यज्ञ **शं सन्तु**=शान्तिकर हों। २. **नः**=हमारे लिए **स्वरूणां मितयः**=यज्ञ-स्तम्भों के निर्माण **शम्**=कल्याणकर हों। **प्रस्वः नः शम्**=यज्ञभूमि में होनेवाली घास हमारे लिए शान्तिकर हो **उ**=और **वेदिः**=यज्ञवेदि **शम् अस्तु**=शान्तिकर हो।

भावार्थ—सोम का रक्षण करके हम ज्ञानाग्नि को दीप्त करें। ज्ञानियों से ज्ञान प्राप्त करके यज्ञशील हों। हम यज्ञों के लिए यज्ञवेदि को तैयार करें। इसप्रकार हमारे जीवन शान्तिमय हों।

ऋषिः—**वसिष्ठः**॥ देवता—**मन्त्रोक्ताः**॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्**॥

सूर्य से आपः तक

शं नः सूर्य उरुचक्षा उदेतु शं नो भवन्तु प्रदिशश्चतस्रः।
शं नः पर्वता ध्रुवयो भवन्तु शं नः सिन्धवः शमु सन्त्वापः॥ ८॥

१. **उरुचक्षाः**=विशाल दृष्टि-(प्रकाश)-वाला **सूर्यः नः शम् उदेतु**=सूर्य हमारे लिए शान्तिकर होकर उदित हो। **चतस्रः प्रदिशः**=चारों विशाल दिशाएँ **नः शं भवन्तु**=हमारे लिए शान्तिकर हों। २. ये **ध्रुवयः**=अपने स्थानों से न डिगनेवाले **पर्वताः नः शं भवन्तु**=पर्वत हमारे लिए शान्तिकर हों। **नः**=हमारे लिए इन पर्वतों से बहनेवाली **सिन्धवः**=नदियाँ **शम्**=शान्ति दें, **उ**=और उन नदियों के **आपः**=जल **शं सन्तु**=शान्तिकर हों।

भावार्थ—सूर्य से हम विशाल दृष्टि का पाठ पढ़ें, दिशाओं से विशालहृदयता को सीखें। पर्वतों से ध्रुवता का पाठ पढ़ें। नदियों से निरन्तर गति की शिक्षा लें और जलों से शान्ति का पाठ पढ़ें। इसीप्रकार जीवन शान्त बनेगा।

ऋषिः—**वसिष्ठः**॥ देवता—**मन्त्रोक्ताः**॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्**॥

अदिति व्रतों के साथ

शं नो अदितिर्भवतु व्रतेभिः शं नो भवन्तु मरुतः स्वर्काः।
शं नो विष्णुः शमु पूषा नो अस्तु शं नो भवित्रं शम्वस्तु वायुः॥ ९॥

१. **व्रतेभिः**=व्रतों के साथ **अदितिः**=(दिति दो अवखण्डने) अखण्डन—स्वास्थ्य की देवता

नः=हमारे लिए **शं भवतु**=शान्ति देनेवाली हो। हम स्वस्थ व व्रतमय जीवनवाले बनकर शान्ति प्राप्त करें। **स्वर्काः**=(सु अर्काः) उत्तमता से प्रभु-पूजन करनेवाले **मरुतः**=प्राण **नः शं भवन्तु**=हमारे लिए शान्तिकर हों। हम प्राणसाधना करते हुए प्रभु-पूजन में प्रवृत्त हों। २. **नः**=हमारे लिए **विष्णुः** (यज्ञो वै विष्णुः) यज्ञ **शम्**=शान्ति दें, **उ**=और **पूषा**=पोषण की देवता **नः**=हमारे लिए **शम् अस्तु**=शान्तिकर हो। हम यज्ञों को करते हुए उचित पोषण प्राप्त करें। **नः**=हमारे लिए **भवित्रम्**=(भवन्ति भूतानि अत्र) यह अन्तरिक्षलोक अथवा गृह **शम्**=शान्ति दे, **उ**=और **वायुः**=वायु **शम् अस्तु**=शान्तिकर हो। हमारे घरों में वायु का सम्यक् प्रवेश हो और इसप्रकार वे घर हमारे लिए सुखद हों।

भावार्थ—हम व्रतमय स्वस्थ जीवनवाले हों। प्राणसाधना करते हुए प्रभु-पूजन करें। यज्ञों को करते हुए उचित पोषण प्राप्त करें। हमारे घरों में वायु का सम्यक् प्रवेश हो।

ऋषिः—**वसिष्ठः**॥ देवता—**मन्त्रोक्ताः**॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्**॥

त्रायमाणः सविता

शं नो देवः सविता त्रायमाणः शं नो भवन्तूषसो विभातीः।
शं नः पर्जन्यो भवतु प्रजाभ्यः शं नः क्षेत्रस्य पतिरस्तु शंभुः॥ १०॥

१. यह **त्रायमाणः**=हम सबका रक्षण करता हुआ **देवः**=प्रकाशमय **सविता**=सूर्य **नः शम्**=हमारे लिए शान्तिकर हो। ये **विभातीः**=विशेषरूप से दीप्त होती हुई **उषसः**=उषाएँ **नः शं भवन्तु**=हमारे लिए शान्तिकर हों। २. **नः प्रजाभ्यः**=हमारी सन्तानों के लिए **पर्जन्यः शं भवतु**=मेघ शान्ति देनेवाला हो। **नः**=हमारे लिए **क्षेत्रस्य पतिः**=इस ब्रह्माण्डरूप क्षेत्र का स्वामी प्रभु **शम् अस्तु**=शान्तिकर हो।

भावार्थ—सूर्य, उषा, पर्जन्य व ब्रह्माण्डरूप क्षेत्र का स्वामी प्रभु हमें शान्ति प्राप्त कराए।

११. [एकादशं सूक्तम्]

ऋषिः—**वसिष्ठः**॥ देवता—**मन्त्रोक्ताः**॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्**॥

सत्यस्य पतयः

शं नः सत्यस्य पतयो भवन्तु शं नो अर्वन्तः शमु सन्तु गावः।
शं न ऋभवः सुकृतः सुहस्ताः शं नो भवन्तु पितरो हवेषु॥ १॥

१. **सत्यस्य पतयः**=अपने में सत्य वेदज्ञान का रक्षण करनेवाले ब्राह्मण **नः शं भवन्तु**=हमारे लिए शान्तिकर हों। **नः**=हमारे लिए **अर्वन्तः**=घोड़े **शम्**=शान्ति दें, **उ**=और **गावः**=गौएँ **शं सन्तु**=शान्तिकर हों। २. ये **ऋभवः**=(उरुभान्ति) उस-उस कला से दीप्त होनेवाली **सुकृतः**=उत्तमता से वस्तुओं का निर्माण करनेवाले **सुहस्ताः**=उत्तम हस्तकौशलवाले शिल्पी **नः शम्**=हमें शान्ति प्राप्त कराएँ, **पितरः**=सब रक्षक लोग **हुवेषु**=संग्रामों में **नः शं भवन्तु**=हमारे लिए शान्ति देनेवाले हों।

भावार्थ—ब्राह्मण, घोड़े, गौएँ, शिल्पी व रक्षक लोग हमें शान्ति प्राप्त कराएँ।

ऋषिः—**वसिष्ठः**॥ देवता—**मन्त्रोक्ताः**॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्**॥

दिव्य, पार्थिव, अप्य

शं नो देवा विश्वदेवा भवन्तु शं सरस्वती सह धीभिरस्तु।
शमभिषाचः शमु रातिषाचः शं नो दिव्याः पार्थिवाः शं नो अप्याः॥ २॥

१. **नः**=हमारे लिए **विश्वदेवाः**=सब दिव्यगुणों से युक्त **देवाः**=विद्वान् पुरुष **शं भवन्तु**=शान्ति

प्राप्त कराएँ। **सरस्वती**=ज्ञान की अधिष्ठात्री देवता **धीभिः**=बुद्धियों के साथ **शम् अस्तु**=हमारे लिए शान्तिकर हो। २. **अभिषाचः**=उस प्रभु की ओर (अभि) अपना मेल करनेवाले **शम्**=शान्ति दें, **उ**=और **रातिषाचः**=दान के साथ मेलवाले त्यागी पुरुष **शम्**=शान्ति प्राप्त कराएँ। २. **नः**=हमारे लिए **दिव्याः**=द्युलोक के पदार्थ **शम्**=शान्तिकर हों। **पार्थिवाः**=पृथिवी के पदार्थ शान्तिकर हों तथा **नः**=हमारे लिए **अप्याः**=अन्तरिक्षलोक में होनेवाले पदार्थ **शम्**=शान्ति दें।

भावार्थ—हमारे लिए दिव्यवृत्तिवाले ज्ञानी पुरुष शान्ति दें। हमें विद्या व बुद्धि शान्ति दे, प्रभु के साथ मेलवाले त्यागी पुरुष शान्ति दें। दिव्य, पार्थिव व अन्तरिक्ष के पदार्थ हमारे लिए शान्तिकर हों।

ऋषिः—**वसिष्ठः**॥ देवता—**मन्त्रोक्ताः**॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्**॥

अजः एकपाद् देवः

शं नो॑ अ॒ज एक॑पाद्देवो अ॑स्तु॒ शमहि॑र्बु॒ध्न्य॑१॒॑: शं स॑मु॒द्रः।
शं नो॑ अ॒पां नपा॑त्पे॒रु॑रस्तु॒ शं नः॒ पृश्नि॑र्भवतु दे॒वगो॑पा॥ ३॥

१. **नः**=हमारे लिए **अजः**=गति के द्वारा सब बुराइयों को दूर करनेवाला **एकपात्**=अद्वितीय गतिवाला **देवः**=प्रकाशमय सूर्य **शम्**=शान्ति दे। **अहिर्बुध्न्यः**=अहीन बुध्नवाला—जिसका मूल नष्ट नहीं होता—ऐसा यह वायु **शम् अस्तु**=शान्तिकर हो। **समुद्रः शम्**=यह अन्तरिक्ष का समुद्र 'मेघ' शान्ति दे। २. **अपां नपात्**=प्रजाओं को न नष्ट होने देनेवाला यह **पेरुः**=पालक अग्नि (fire) **नः शम् अस्तु**=हमारे लिए शान्तिकर हो। **देवगोपा**=देवों का रक्षण करनेवाली **पृश्निः**=सब रसों का स्पर्श करनेवाली यह पृथिवी **नः शं भवतु**=हमारे लिए शान्तिकर हो। इस पृथ्वी पर जो भी व्यक्ति देववृत्ति के बनकर चलते हैं, यह पृथिवी उनका रक्षण करती ही है।

भावार्थ—'सूर्य, वायु, मेघ, अग्नि व पृथिवी' ये सब हमारे लिए शान्तिकर हों।

ऋषिः—**वसिष्ठः**॥ देवता—**मन्त्रोक्ताः**॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्**॥

वेदज्ञान का श्रवण व सेवन

आ॒दि॒त्या रु॒द्रा वस॑वो जुषन्ता॒मिदं ब्रह्म॑ क्रि॒यमा॑णं॒ नवी॑यः।
शृ॒ण्वन्तु॑ नो दि॒व्याः पार्थि॑वासो॒ गोजा॑ता उ॒त ये य॒ज्ञिया॑सः॥ ४॥

१. **आदित्याः**=४८ वर्ष तक ब्रह्मचर्यपूर्वक अध्ययन करनेवाले 'आदित्य' विद्वान्, **रुद्राः**=४४ वर्ष तक अध्ययन करनेवाले ये 'रुद्र' तथा **वसवः**=२४ वर्ष तक ब्रह्मचर्य का धारण करनेवाले ये 'वसु' **इदम्**=इस **क्रियमाणम्**=प्रत्येक सृष्टि के प्रारम्भ में दिये जानेवाले **नवीयः**=स्तुत्य **ब्रह्म**=वेदज्ञान को **जुषन्ताम्**=प्रीतिपूर्वक सेवन करें। २. **नः**=हममें से **दिव्याः**=ज्योतिर्मय मस्तिष्कवाले, **पार्थिवासः**=शरीररूप पृथिवी के स्वामी, **गोजाताः**=ज्ञान की वाणियों के अनुभव के लिए ही मानो जिनका जन्म हुआ है **उत**=और **ये**=जो **यज्ञियासः**=यज्ञियवृत्ति के हैं, वे सब इस वेदज्ञान को **शृण्वन्तु**=सुनें। वेदज्ञान ही पवित्रता व शान्ति देनेवाला है।

भावार्थ—हम सब वेदज्ञान को प्राप्त करने का प्रयत्न करें—इसी का प्रीतिपूर्वक सेवन करें। इसी को सुनने के लिए यत्नशील हों।

ऋषिः—**वसिष्ठः**॥ देवता—**मन्त्रोक्ताः**॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्**॥

उरुगायम्

ये दे॒वाना॑मृ॒त्विजो॑ य॒ज्ञिया॑सो॒ मनो॒र्यज॑त्रा अ॒मृता॑ ऋ॒तज्ञाः।
ते नो॑ रासन्तामुरुगा॒यम॒द्य यू॒यं पा॑त स्व॒स्तिभि॒: सदा॑ नः॥ ५॥

१. **ये**=जो **देवानाम्**=देववृत्ति के व्यक्तियों में **ऋत्विजः**=समय-समय पर प्रभु का पूजन करनेवाले हैं, **यज्ञियासः**=यज्ञशील हैं, **मनोः**=उस ज्ञानस्वरूप प्रभु का **यज्ञत्राः**=संगतिकरण करनेवाले हैं, **अमृताः**=विषय-वासनाओं के पीछे न मरनेवाले हैं, **ऋतज्ञाः**=सत्यवेदज्ञान को प्राप्त करनेवाले हैं, **ते**=वे **नः**=हमारे लिए **अद्य**=आज **उरुगायम्**=इस विशाल गाने योग्य वेदज्ञान को **रासन्ताम्**=दें। इस ज्ञान के द्वारा वे हमें भी 'ऋत्विज्, यज्ञिय, मनोर्यजत्र, अमृत व ऋतज्ञ' बनाएँ। २. हे विद्वानो! **यूयम्**=आप **स्वस्तिभिः**=उत्तम कल्याण के मार्गों के द्वारा **नः**=हमें **सदा**=सदा **पात**=रक्षित करो।

भावार्थ—हमें 'देववृत्तिवाले, प्रभु के पूजक, यज्ञशील, नीरोग' ज्ञानी पुरुषों का संग प्राप्त हो। वे हमें भी ज्ञान देते हुए कल्याण के मार्ग से ले-चलें। इसप्रकार हमारा सदा कल्याण व रक्षण हो।

ऋषिः—**वसिष्ठः**॥ देवता—**मन्त्रोक्ताः**॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्**॥

गाधम्, प्रतिष्ठाम्

तदस्तु मित्रावरुणा तदग्ने शं योरस्मभ्यमिदमस्तु शस्तम्।
अशीमहि गाधमुत प्रतिष्ठां नमो दिवे बृहते सादनाय॥ ६॥

१. हे **मित्रावरुणा**=स्नेह व निर्द्वेषता के भावो! **तत्**=गतमन्त्र में वर्णित वह 'उरुगाय' (विशाल वेदज्ञान) **अस्तु**=हमें प्राप्त हो। **अग्ने**=हे अग्रणी—आगे बढ़ने की भावने! **तत्** (अस्तु)=हमें वेदज्ञान प्राप्त हो। इस वेदज्ञान ने ही वस्तुतः हमें 'मित्र-वरुण-व अग्नि' बनाना है। **अस्मभ्यम्**=हमारे लिए **इदम्**=यह ज्ञान **शम्**=शान्ति देनेवाला व **योः**=भयों को दूर करनेवाला **अस्तु**=हो। यह हमारे लिए **शस्तम्**=प्रशस्त हो—यह हमारे जीवनों को उत्तम बनाए। २. इस वेदज्ञान से ही हम **गाधम्**=इष्ट ऐश्वर्य को (गाध्=लिप्सा) **उत्**=और **प्रतिष्ठाम्**=प्रतिष्ठा को **अशीमहि**=प्राप्त करें। हम उस-उस **दिवे**=प्रकाशमय **बृहते**=विशाल **सादनाय**=सबके आश्रयभूत प्रभु के लिए **नमः**=नमस्कार करें।

भावार्थ—स्नेह, निर्द्वेषता व प्रगति की भावना को अपनाकर हम अपने ज्ञान को बढ़ाएँ। यह ज्ञान हमें इष्ट ऐश्वर्य व प्रतिष्ठा प्राप्त कराए। हम प्रातः-सायं उस महान् आश्रय प्रभु के प्रति नतमस्तक हों।

१२. [द्वादशं सूक्तम्]

ऋषिः—**वसिष्ठः**॥ देवता—**उषा**॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्**॥

मार्गदर्शिका उषा

उषा अप स्वसुस्तमः सं वर्तयति वर्तनिं सुजाताता।
अया वाजं देवहितं सनेम मदेम शतहिमा सुवीराः॥ १॥

१. **उषाः**=उषा **स्वसुः**=अपनी बहिन के समान इस रात्रि के **तमः**=अन्धकार को **अप** (वर्तयति)=दूर कर देती है और **सुजातता**=अपने उत्तम प्रादुर्भाव से **वर्तनिम्**=मार्ग को **संवर्तयति**=सम्यक् प्रवृत्त करती है—यह मार्ग दिखलाती है। २. मार्गों को दिखलाती हुई **अया**=(अनया) इस उषा से **देवहितम्**=देवों के अन्दर स्थापित किये गये **वाजम्**=बल को **सनेम**=प्राप्त करें। हमें शक्ति प्राप्त हो और यह देवों की शक्ति हो, न कि असुरों की (शक्तिः परेषां परिरक्षणाय, न तु परिपीडनाय)। इसप्रकार शक्ति को प्राप्त करके **सुवीराः**=उत्तम वीर सन्तानोंवाले होते हुए **शतहिमाः**=शतवर्षपर्यन्त **मदेम**=आनन्द का अनुभव करें।

भावार्थ—उषा से मार्ग का ज्ञान प्राप्त करते हुए हम उस मार्ग का आक्रमण करें। इसप्रकार शान्ति प्राप्त करके, उत्तम वीर सन्तानोंवाले हम शतवर्षपर्यन्त आनन्दयुक्त जीवनवाले हों।

यह शक्तिशाली व्यक्ति युद्ध में पराजित न होनेवाला 'अप्रतिरथ' (a match-less warrior) बनता है। यही अगले सूक्त का ऋषि है।

१३. [त्रयोदशं सूक्तम्]

ऋषिः—**अप्रतिरथः**॥ देवता—**इन्द्रः**॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्**॥

इन्द्र की भुजाएँ

इन्द्रस्य बाहू स्थविरौ वृषाणौ चित्रा इमा वृषभौ पारयिष्णू।
तौ योक्षे प्रथमो योग आगते याभ्यां जितमसुराणां स्वर्यत्॥ १॥

१. **इन्द्रस्य**=शत्रुओं का विद्रावण करनेवाले इस सेनापति की **बाहू**=भुजाएँ **स्थविरौ**=स्थिर बलवाली हैं, **वृषाणौ**=शक्तिशाली हैं, **चित्रा**=अद्भुत हैं, **इमा वृषभौ**=ये प्रजाओं पर सुखों का वर्षण करनेवाली हैं, **पारयिष्णू**=शत्रुओं से पार प्राप्त करानेवाली हैं। २. **प्रथमः**=अपनी शक्तियों का विस्तार करनेवाला मैं **योगे आगते**=अवसर के आने पर **तौ योक्षे**=जन भुजाओं का प्रयोग करता हूँ, **याभ्याम्**=जिन भुजाओं से **असुराणां यत् स्वः**=असुरों का जो सुख है, वह **जितम्**=जीत लिया जाता है। मेरी इन भुजाओं के व्यापृत होने पर असुर सुख से नहीं रह पाते।

भावार्थ—हमारा सेनापति शक्तिशाली हो। अवसर आने पर उसकी भुजाएँ शत्रु-सैन्य के सुख को समाप्त करनेवाली हों।

ऋषिः—**अप्रतिरथः**॥ देवता—**इन्द्रः**॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्**॥

एकवीरः

आशुः शिशानो वृषभो न भीमो घनाघनः क्षोभणश्चर्षणीनाम्।
संक्रन्दनोऽनिमिष एकवीरः शतं सेना अजयत्साकमिन्द्रः॥ २॥

१. अद्वितीय वीर वह है जोकि शत्रुओं का पराजय करता है। यह **आशुः**=शीघ्रता से कार्यों में व्याप्त होनेवाला—स्फूर्तिमय जीवनवाला होता है। **शिशानः**=अपनी बुद्धि को बड़ा तीव्र बनाता है। **वृषभः**=वृषभ के समान शक्तिशाली होता है, परन्तु **न भीमः**=भयंकर नहीं होता। इसमें शक्ति होती है, परन्तु उसके साथ सौम्यता भी होती है। **घनाघनः**=यह काम आदि शत्रुओं का अच्छी प्रकार संहार करनेवाला होता है। **चर्षणीनां क्षोभणः**=यह मनुष्यों के जीवन में भी प्रेरणा देकर हलचल मचा देता है। २. **संक्रन्दनः**=सदा प्रभु के नाम का सम्यक् आह्वान करनेवाला होता है, **अनिमिषः**=सदा सावधान होता है—प्रमाद में नहीं चला जाता। यह **एकवीरः**=अद्वितीयवीर **इन्द्रः**=अपनी इन्द्रियों का अधिष्ठाता बनता है। यह **शतं सेनाः साकम् अजयत्**=वासनाओं की शतशः सेनाओं को साथ-साथ जीत लेता है।

भावार्थ—हम सदा कर्मों में व्याप्त रहकर प्रभु का स्मरण करते हुए, कभी प्रमाद न करते हुए काम-क्रोध आदि शतशः शत्रु-सैन्यों का पराजय करनेवाले बनें।

ऋषिः—**अप्रतिरथः**॥ देवता—**इन्द्रः**॥ छन्दः—**भुरिक्त्रिष्टुप्**॥

अनिमिष

संक्रन्दनेनानिमिषेण जिष्णुनाऽयोध्येन दुश्च्यवनेन धृष्णुना।
तदिन्द्रेण जयत तत्सहध्वं युधो नर इषुहस्तेन वृष्णा॥ ३॥

१. हे **युधः**=काम-क्रोध आदि से युद्ध करनेवाले **नरः**=अपने को उन्नति-पथ पर ले-चलनेवाले मनुष्यो! **इन्द्रेण**=शत्रुओं का विद्रावण करनेवाली आत्मा से **तत्**=इस शत्रु-सैन्य को **जयत**=जीतनेवाले बनो। **तत्**=उस शत्रुसैन्य को **सहध्वम्**=कुचल डालो। २. कैसे इन्द्र से? **संक्रन्दनेन**=प्रभु का आह्वान करनेवाले, **अनिमिषेण**=कभी पलक न मारनेवाले—सदा जागरित, अप्रमत्त आत्मा से, **जिष्णुना**=सदा विजयशील से, **अयोध्येन**=जिससे युद्ध करना कठिन है—उस आत्मा से **दुश्च्यवनेन**=युद्ध से पराङ्मुख न किये जानेवाले से, **धृष्णुना**=शत्रुओं का धर्षण करनेवाले से, **इषुहस्तेन**=(इष् प्रेरणे) प्रभु-प्रेरणा को जिसने हाथों में लिया हुआ है—प्रभु-प्रेरणा के अनुसार जो कार्य कर रहा है, उससे, **वृष्णा**=शक्तिशाली से, ऐसी आत्मा के द्वारा तुम शत्रु-सैन्य का विजय करो।

भावार्थ—हम प्रभु का आह्वान करते हुए प्रभु-प्रेरणा के अनुसार कार्य करते हुए शक्तिशाली बनें और वासना-संग्राम में विजयी बनें।

ऋषिः—**अप्रतिरथः**॥ देवता—**इन्द्रः**॥ छन्दः—**भुरिक्त्रिष्टुप्**॥

असंग शस्त्रेण दृढेन छित्वा

स इषुहस्तैः स निषङ्गिभिर्वशी संस्रष्टा स युध इन्द्रो गणेन।
संसृष्टजित्सोमपा बाहुशर्ध्युग्रधन्वा प्रतिहिताभिरस्ता॥ ४॥

१. **सः**=वह उपासक **इषुहस्तैः**=प्रेरणारूप हाथों से (इष् प्रेरणे) **निषङ्गिभिः**=(निश्चय संग=आसक्ति) अनासक्ति के भावों से युक्त हुआ-हुआ **वशी**=इन्द्रियों को वश में करनेवाला, **गणेन संस्रष्टा**=समाज के साथ मेल करनेवाला—अपना अकेला जीवन न बितानेवाला **सः**=वह **युधः**=वासनाओं के साथ युद्ध करनेवाला **इन्द्रः**=इन्द्रियों का अधिष्ठाता **संस्रष्टजित्**=सब संसर्गों को—विषयसम्पर्कों को जीतनेवाला होता है। २. विषयसम्पर्कों को जीतकर यह **सोमपाः**=अपने अन्दर सोम (वीर्य) का रक्षण करनेवाल होता है। **बाहुशर्धी**=यह सोमपा बनकर प्रजाओं के साथ पराक्रम करनेवाला होता है। **उग्रधन्वा**=यह 'प्रणव' रूप उग्र धनुष्वाला होता है। प्रणव का जप करता है और **प्रतिहिताभिः** (प्रत्याहृताभिः) इन्द्रियों को विषयों से वापस लाने की क्रियाओं के द्वारा यह **अस्ता**=शत्रुओं को परे फेंकनेवाला होता है।

भावार्थ—हम अनासक्ति के द्वारा विषय-संगों को जीतने का प्रयत्न करें। इन्द्रियों को विषय-व्यावृत्त करते हुए काम-क्रोध आदि शत्रुओं को दूर भगानेवाले हों।

ऋषिः—**अप्रतिरथः**॥ देवता—**इन्द्रः**॥ छन्दः—**भुरिक्त्रिष्टुप्**॥

जैत्ररथ का आरोहण

बलविज्ञायः स्थविरः प्रवीरः सहस्वान्वाजी सहमान उग्रः।
अभिवीरो अभिषत्वा सहोजिज्जैत्रमिन्द्र रथमा तिष्ठ गोविदन्॥ ५॥

१. गतमन्त्र का उपासक **बलविज्ञायः**=बल के कारण प्रसिद्ध होता है (Known for his vigour) **गोविदन्**=वेदवाणियों का ज्ञाता बनकर **जैत्रं रथम् आतिष्ठ**=विजयशील शरीर-रथ पर आसीन हो। तुझमें बल व ज्ञान का समन्वय हो—यह समन्वय तुझे विजयी बनाए। **अभिवीरः अभिषत्वा (सत्वा)**=तू वीरता की ओर चलनेवाला हो और सत्त्वगुण की ओर चलनेवाला हो—ज्ञान की ओर। तूने वीरता व ज्ञान दोनों को अपनाना है। २. **स्थविरः**=स्थिरमति का बनना है और **प्रवीरः**=खूब वीर बनना है। **सहस्वान्**=ज्ञानी बनकर सहनशक्तिवाला (Toleration) बनना है और **वाजी**=शक्तिशाली होना है। **सहमानः**=ज्ञान के द्वारा सहनशक्तिवाला व **उग्रः**=तेजस्वी

बनना है। संक्षेप में **सहोजित्**=तूने सहस् के द्वारा शत्रुओं का विजेता होना है।

भावार्थ—हम अपने जीवनों में बल व ज्ञान का समन्वय करते हुए सदा विजयी बनें।

ऋषिः—**अप्रतिरथः**॥ देवता—**इन्द्रः**॥ छन्दः—**भुरिक्त्रिष्टुप्**॥

'इन्द्रम्' अनु हर्षध्वम्, अनुसंरभध्वम्

इ॒मं वी॒रमनु॑ हर्षध्वमु॒ग्रमिन्द्रं॒ सखायो॒ अनु॒ सं र॑भध्वम्।
ग्रा॒म॒जितं॑ गो॒जित॒ं वज्र॑बाहुं॒ जय॑न्त॒मज्म॑ प्रमृ॒ण॒न्त॒मोज॑सा॥ ६॥

१. हे **सखायः**=मित्रो! **इमं वीरम्**=इस वीर **इन्द्रम्**=शत्रु-विद्रावक प्रभु की **अनुहर्षध्वम्**=अनुकूलता में हर्ष का अनुभव करो और **अनुसंरभध्वम्**=इस प्रभु की अनुकूलता में ही सम्यक् उद्योगवाले बनो। २. ये प्रभु ही तुम्हारे लिए **ग्रामजितम्**=इन्द्रिय-समूह का विजय करनेवाले हैं। ये ही **गोजितम्**=ज्ञान की वाणियों का विजय करनेवाले हैं और **वज्रबाहुम्**=शत्रुओं के पराभव के लिए हाथों में वज्र लिये हुए हैं। ये तुम्हारे लिए **अज्म जयन्तम्**=संग्राम को जीतनेवाले व **ओजसा प्रमृणन्तम्**=ओजस्विता से शत्रुओं को कुचल देनेवाले हैं।

भावार्थ—प्रभु की अनुकूलता में हम हर्ष का अनुभव करें—वीरतापूर्ण कर्मों को करें। प्रभु हमारे लिए इन्द्रियों का विजय करेंगे, हमें ज्ञान की वाणियों को प्राप्त कराएँगे। प्रभु ही हमें संग्रामों में विजयी बनाएँगे।

ऋषिः—**अप्रतिरथः**॥ देवता—**इन्द्रः**॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्**॥

गाहमानः अदायः

अ॒भि गो॒त्राणि॒ सह॑सा॒ गाह॑मानोदा॒य उ॒ग्रः श॒तम॑न्यु॒रिन्द्रः॑।
दु॒श्च्य॒व॒नः पृ॑तना॒षाड॑यो॒ध्यो३॑स्माक॒ं सेना॑ अवतु॒ प्र यु॑त्सु॥ ७॥

१. **इन्द्रः**=इन्द्रियों का अधिष्ठाता जीव **गोत्राणि**=धनों को **सहसा**=अपने बल से—पुरुषार्थ से **अभिगाहमानः**=सर्वतः अवगाहन करता हुआ, उन्हें सब सुपथों से प्राप्त करता हुआ **अदायः** (देङ् रक्षणे)=अपने पास उन धनों को सुरक्षित नहीं किये रहता। यह इन्द्र धनों को कमाता है, उनमें अवगाहन करता है (rolls in wealth), परन्तु उन्हें जोड़कर अपने पास नहीं रक्खे रहता। इसी से यह **उग्रः**=तेजस्वी बनता है और **शतमन्युः**=सैकड़ों प्रज्ञानोंवाला होता है। धन के प्रति आसक्ति शक्ति व प्रज्ञान को विनष्ट करती है। २. **दुश्च्यवनः**=धर्म-मार्ग से आसानी से न हटाया जा सकनेवाला यह इन्द्र **पृतनाषाट्**=शत्रुसैन्यों का पराभव करता है। **अयोध्यः**=काम-क्रोध आदि इसे कभी युद्ध में जीत नहीं पाते। प्रभु कहते हैं कि यह इन्द्र (जितेन्द्रिय पुरुष) **प्रयुत्सु**=इन अध्यात्म-संग्रामों में **अस्माकं सेनाः अवतु**=हमारी दिव्यगुणों की सेनाओं को सुरक्षित करे। धनासक्ति के अभाव में ही दिव्यगुणों का रक्षण सम्भव है।

भावार्थ—हम कमाएँ, परन्तु उन धनों को जोड़े नहीं। इनका यज्ञादि उत्तम कर्मों में विनियोग करते हुए अपने में दिव्यगुणों का वर्धन करें।

ऋषिः—**अप्रतिरथः**॥ देवता—**इन्द्रः**॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्**॥

ऊपर और ऊपर

बृ॒ह॒स्पते॒ परि॑ दीया॒ रथे॑न रक्षो॒हामित्रा॑ँ अप॒बाध॑मानः।
प्र॒भ॒ञ्जन्त्सेन्त्रू॑न्प्रमृ॒ण॒न्नमित्रा॑न॒स्माक॑मेध्यवि॒ता त॒नूना॑म्॥ ८॥

१. प्रभु जीव को प्रेरणा देते हैं कि **बृहस्पते**=हे ज्ञान के स्वामिन्! तू **रथेन**=इस शरीररूप

रथ के द्वारा **परिदीया** (दी=to shine)=चमकनेवाला बन और आकाश में उड़नेवाला (दी=to sour) बन—उन्नतिपथ पर आगे बढ़। तूने उन्नत होते-होते ऊर्ध्वादिक् का अधिपति बनना है। **रक्षोहा**=राक्षसी वृत्तियों का संहार करनेवाला बन। **अमित्रान् अपबाधमानः**=न स्नेह—विद्वेष की भावनाओं को दूर करता हुआ तू चल। २. **शत्रून्**=काम-क्रोध आदि शत्रुओं को **प्रभञ्जन्**=दूर भगाता हुआ **अमित्रान् प्रमृणन्**=विद्वेष की भावनाओं को कुचलता हुआ **अस्माकम्**=हमसे दिये गये इन **तनूनाम्**=शरीर-रथों का **अविता एधि**=रक्षक बन। द्वेष आदि की भावनाएँ इस शरीर-रथ को असमय में ही जीर्ण-शीर्ण न कर दें।

भावार्थ—हम द्वेष आदि से दूर रहते हुए शरीर-रथ का रक्षण करें। इसके द्वारा उन्नति-पथ पर आगे बढ़ते हुए उन्नति के शिखर पर पहुँचें। ऊर्ध्वादिक् के अधिपति बृहस्पति बनें।

ऋषिः—**अप्रतिरथः**॥ देवता—**इन्द्रः**॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्**॥

देवसेनाएँ

इन्द्र एषां नेता बृहस्पतिर्दक्षिणा यज्ञः पुर एतु सोमः।
देवसेनानामभिभञ्जतीनां जयन्तीनां मरुतो यन्तु मध्ये॥ ९॥

१. **देवसेनानाम्**=दैवी सम्पत्ति में गिने जानेवाले दिव्यगुणों की सेनाओं के, **अभिभञ्जतीनाम्**=जो चारों ओर आसुरभावनाओं का भंग कर रही हैं और **जयन्तीनाम्**=आसुरवृत्तियों पर विजय पा रही हैं, उनके **मध्ये**=मध्य में **मरुतः**=प्राणों की साधना करनेवाले मनुष्य चलें। ये देवसेनाएँ सदा प्राणसाधना करनेवाले मनुष्यों के पीछे चला करती हैं। प्राणायामैर्दहेद् दोषान्—प्राणायाम से इन्द्रियों के दोष क्षीण हो ही जाते हैं। मानसमलों के नष्ट होने से आसुरप्रवृत्तियाँ समाप्त हो जाती हैं। क्रोध का स्थान करुणा ले-लेती है, काम प्रेम में परिवर्तित हो जाता है। लोभ का स्थान सन्तोष व त्याग को मिल जाता है। यही देवसेनाओं की आसुरसेनाओं पर विजय है। २. **इन्द्रः एषां नेता**=इन दिव्यगुणों का सेनापति (नेता) इन्द्र है। यह इन्द्रियों का अधिष्ठाता, इन्द्रियों को वश में करके आसुरप्रवृत्तियों को दूर भाग देता है। सब इन्द्रियों से भोगों को भोगनेवाला दशानन तो राक्षससेनाओं का मुखिया है। ३. इन देवसेनाओं के **पुरः**=आगे ये **एतु**=चलें ३. **बृहस्पतिः**=ज्ञान का स्वामी। ज्ञानाग्नि ही तो कामादि को भस्म करती है। ४. **दक्षिणा**=दान की वृत्ति। यह लोभ को समाप्त करके पापों को ही नष्ट कर देती है, इसीलिए देव सदा दानशील हैं 'देवो दानात्'। ५. **यज्ञः**=यज्ञ की मौलिक भावना निःस्वार्थ कर्म हैं, इसीलिए यज्ञ में अपवित्रता का स्थान नहीं। ६. **सोमः**=सौम्यता। यह सौम्यता—नातिमनिता—देवी सम्पत्ति का चरमोत्कर्ष है। सोम का अर्थ वीर्य भी है। दिव्यगुणों के वर्धन के लिए सोम-रक्षण आवश्यक ही है।

भावार्थ—प्राणसाधना सब दिव्यगुणों का केन्द्र है। दिव्यगुणों के वर्धन के लिए इन्द्र=जितेन्द्रिय बनना आवश्यक है। इसके साथ 'ज्ञान-दान-यज्ञ-सौम्यता व सोम (वीर्य) रक्षण' दिव्यगुणों के वर्धन के लिए आवश्यक हैं।

ऋषिः—**अप्रतिरथः**॥ देवता—**इन्द्रः**॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्**॥

देवों के तीन महारथी

इन्द्रस्य वृष्णो वरुणस्य राज्ञ आदित्यानां मरुतां शर्ध उग्रम्।
महामनसां भुवनच्यवानां घोषो देवानां जयतामुदस्थात्॥ १०॥

१. **वृष्णः इन्द्रस्य**=शक्तिशाली जितेन्द्रिय पुरुष का, **राज्ञः वरुणस्य**=अति नियमित जीवनवाले वरुण का, जिसने सब बुराइयों का वारण किया है, उस वरुण का **आदित्यानां मरुताम्**=(आदानात्

आदित्यः, मरुतः प्राणम्) अपने अन्दर उत्तमता का निरन्तर ग्रहण करनेवाले प्राणसाधक मरुतों का **शर्धः**=बल **उग्रम्**=बड़ा उदात्त व तीव्र होता है। २. ये 'इन्द्र व मरुत्' देवसेनाओं के मुखिया हैं। इस **महामनसाम्**=विशाल मनवाले, **भुवनच्यवानाम्**=भुवनों का भी त्याग करनेवाले, लोकहित के लिए अधिक-से-अधिक त्याग करने के लिए उद्यत **जयताम्**=आसुरभावनाओं को पराजित करनेवाले **देवानाम्**=देवों का **घोषा**=विजयघोष **उदस्थात्**=मेरे जीवन में सदा उठे। मेरे जीवन में सदा देवों का विजय हो और असुरों का पराजय।

भावार्थ—मैं 'इन्द्र बनूँ, वरुण बनूँ, मरुत् बनूँ'। हृदय को विशाल बनाऊँ, सदा त्याग के लिए उद्यत रहूँ।

ऋषिः—**अप्रतिरथः**॥ देवता—**इन्द्रः**॥ छन्दः—**भुरिक्त्रिष्टुप्**॥

चार बातें

अस्माकमिन्द्रः समृतेषु ध्वजेष्वस्माकं या इषवस्ता जयन्तु।
अस्माकं वीरा उत्तरे भवन्त्वस्मान्देवासोऽवता हवेषु॥ ११॥

१. **ध्वजेषु समृतेषु**=ध्वजाओं को ठीक प्रकार से प्राप्त कर लेने पर **अस्माकम्**=हम आस्तिक बुद्धिवालों का **इन्द्रः**=परमात्मा हो। हम उस प्रभु को ही अपना आश्रय मानकर चलें। 'ध्वजा' एक लक्ष्य का प्रतीक है और जब हम इस लक्ष्य को बना लें तब उस समय प्रभु को अपना आश्रय बनाकर अपने लक्ष्य की प्राप्ति में जुट जाएँ। यह प्रभु का आश्रय हमें निरुत्साहित न होने देगा। २. **अस्माकम्**=हम आस्तिक वृत्तिवालों की **याः**=जो **इषवः**=प्रेरणाएँ हैं, **ताः**=वे प्रभु की प्रेरणाएँ—अन्तःस्थित प्रभु से दिये जा रहे निर्देश **जयन्तु**=सदा विजयी हों। हम सदा इनके अनुसार ही काम करें। ३. **अस्माकम्**=हम आस्तिकवृत्तिवालों की **वीराः**=वीरत्व की भावनाएँ—न कि कायरता की प्रवृत्तियाँ **उत्तरे भवन्तु**=उत्कृष्ट हों—प्रबल हों। हमारे सब कार्य वीरता का परिचय दें। ४. हे **देवासः**=देवो! **अस्माकम्**=हम आस्तिकों को **हवेषु**=संग्रामों में **अवता**=रक्षित करो।

भावार्थ—जीवन में लक्ष्य को ओझल न होने देते हुए हम प्रभु को अपना आश्रय समझें। प्रभु-प्रेरणाओं के अनुसार हमारा जीवन चले। हम वीरत्व की भावनावाले हों। अध्यात्मसंग्रामों में देवों की रक्षा के पात्र हों।

प्रभु-प्रेरणा के अनुसार जीवन को चलाता हुआ—लक्ष्य की ओर बढ़ता हुआ यह व्यक्ति 'अथर्वा' है—न डाँवाडोल होनेवाला। यह अथर्वा १४ से २० सूक्त तक के मन्त्रों का ऋषि है—

१४. [चतुर्दशं सूक्तम्]

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**द्यावापृथिव्यौ**॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्**॥

अद्वेष व अभय

इदमुच्छ्रयोऽवसानमागां शिवे मे द्यावापृथिवी अभूताम्।
असपत्ना प्रदिशो मे भवन्तु न वै त्वा द्विष्मो अभयं नो अस्तु॥ १॥

१. गतमन्त्र के अनुसार प्रभु-स्मरणपूर्वक निरन्तर आगे बढ़ने पर मैं **इदम्**=इस **उत् श्रेयः अवसानम्**=उत्कृष्ट कल्याण की अन्तिम स्थिति—मोक्षलोक को **आगाम्**=प्राप्त हुआ हूँ। जीवन्मुक्त की स्थिति को प्राप्त हो गया हूँ। **मे**=मेरे लिए **द्यावापृथिवी**=द्युलोक व पृथिवीलोक **शिवे अभूताम्**=कल्याणकर हुए हैं। २. **मे**=मेरे लिए **प्रदिशः**=ये प्रकृष्ट विशाल दिशाएँ **असपत्नाः**=शत्रुरहित **भवन्तु**=हों। हे प्रभो! हम **त्वा**=आपका **वै**=निश्चय से **न द्विष्मः**=द्वेष नहीं करते। किसी

भी व्यक्ति से द्वेष वस्तुतः अन्तःस्थित आपसे ही द्वेष होता है। हम किसी भी प्राणी से द्वेष नहीं करते। हे प्रभो! इसप्रकार 'अद्वेष' की भावना को अपनाने पर **नः**=हमारे लिए **अभयम् अस्तु**=निर्भयता हो। द्वेष में ही भय है। अद्वेष के होने पर अभय होता ही है।

भावार्थ—हम जीवन्मुक्त की स्थिति को प्राप्त करें। द्यावापृथिवी हमारे लिए कल्याणकर हों। हम निर्द्वेष बनें और परिणामतः निर्भय हों।

१५. [पञ्चदशं सूक्तम्]

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**इन्द्रः**॥ छन्दः—**पथ्याबृहती**॥

द्वेषी व शत्रुओं का विनाश

यत इन्द्र भयामहे ततो नो अभयं कृधि।
मघवञ्छग्धि तव त्वं न ऊतिभिर्वि द्विषो वि मृधो जहि॥ १॥

१. हे **इन्द्र**=सब शत्रुओं का विद्रावण करनेवाले प्रभो! हम **यतः भयामहे**=जहाँ से भी भय का अनुभव करते हैं, **ततः**=वहाँ से **नः**=हमें **अभयं कृधि**=निर्भय कीजिए। २. हे **मघवन्**=ऐश्वर्यशालिन् प्रभो! **शग्धि**=आप ही शक्तिशाली हैं, आप ही हमें अभय कर सकते हैं। **त्वम्**=आप **तव ऊतिभिः**=आपके रक्षणों के द्वारा **नः**=हमारे **विद्विषः**=विद्वेष करनेवालों को तथा **मृधः**=(murder) हत्या करनेवाले शत्रुओं को **विजहि**=सुदूर विनष्ट कीजिए।

भावार्थ—प्रभु हमें अभय करें। हमारे द्वेषी शत्रुओं को सुदूर विनष्ट करें।

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**इन्द्रः**॥ छन्दः—**जगती**॥

अनूराध इन्द्र का आह्वान

इन्द्रं वयमनूराधं हवामहेऽनु राध्यास्म द्विपदा चतुष्पदा।
मा नः सेना अररुषीरुप गुर्विषूचीरिन्द्र द्रुहो वि नाशय॥ २॥

१. **वयम्**=हम **अनूराधम्**=अनुकूलता से सिद्धियों को प्राप्त करानेवाले **इन्द्रम्**=शत्रु-विद्रावक प्रभु को **हवामहे**=पुकारते हैं। हम इस जीवन में **द्विपदा**=दो पाँववाली अपनी वीरसन्तानों से तथा **चतुष्पदा**=चार पाँववाले गवादि पशुओं से **अनुराध्यास्म**=एक के बाद दूसरी—निरन्तर सिद्धियों को प्राप्त करें। हमारे सब कार्य अनुकूलता से सिद्ध होनेवाले हों। २. **नः**=हमें **अररुषीः**=अदान की वृत्तिवाली लोभ आदि आसुरभावों की **सेनाः**=सेनाएँ **मा उपगुः**=मत समीपता से प्राप्त हों। हे **इन्द्र**=शत्रुविद्रावक प्रभो! **विषूचीः**=विविध दिशाओं में गतिवाली—नानारूपों में प्रकट होनेवाली **द्रुहः**=द्रोह की भावनाओं को **विनाशय**=आप नष्ट कर दीजिए।

भावार्थ—हम द्वेष से—द्रोह की भावना से दूर रहते हुए, अदान की वृत्ति से ऊपर उठकर 'अनूराध' इन्द्र का आराधन करते हैं।

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**इन्द्रः**॥ छन्दः—**विराट्पथ्यापङ्क्तिः**॥

त्राता-वृत्रहा

इन्द्रस्त्रातोत वृत्रहा परस्फानो वरेण्यः।
स रक्षिता चरमतः स मध्यतः स पश्चात्स पुरस्तान्नो अस्तु॥ ३॥

१. **इन्द्रः**=वह शत्रुविद्रावक, सर्वशक्तिमान् प्रभु **त्राता**=हम सबका रक्षक है—प्रभु ही हमें रोगों के आक्रमण से बचाते हैं **उत**=और प्रभु ही **वृत्रहा**=ज्ञान पर आवरण के रूप में आ जानेवाली वासनाओं को नष्ट करते हैं। इसप्रकार वे प्रभु **परस्फानः**=अत्यन्त उत्कृष्ट (पर) वृद्धि को

करनेवाले हैं (स्फायी वृद्धौ), **वरेण्यः**=अतएव वरण के योग्य हैं। २. **सः**=वे प्रभु **चरमतः**=अन्त से **रक्षिता**=हमारा रक्षण करनेवाले हैं। **सः**=वे प्रभु ही **मध्यतः**=मध्य से रक्षण करनेवाले हैं और **सः**=वे प्रभु **पश्चात्**=पीछे से व **सः**=वे प्रभु ही **पुरस्तात्**=आगे से **नः**=हमारे (रक्षिता) **अस्तु**=रक्षक हों।

भावार्थ—प्रभु अपने आराधकों को रोगों से बचाते हैं, उनकी वासनाओं का विनाश करते हैं। इसप्रकार उनका वर्धन करते हैं, अतएव वे प्रभु 'वरेण्य' हैं। वे प्रभु हमारे सर्वतः रक्षक हों।

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**इन्द्रः**॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्**॥

'सुख, प्रकाश, निर्भयता व कल्याण' वाला लोक

उरुं नो लोकमनु नेषि विद्वान्त्स्वर्ज्योतिरभयं स्वस्ति।
उग्रा त इन्द्र स्थविरस्य बाहु उप क्षयेम शरणा बृहन्ता॥ ४॥

१. **विद्वान्**=ज्ञानमय प्रभु! **नः**=हमें **उरुं लोकम् अनुनेषि**=क्रमशः विशाललोक में ले-चलते हैं। हमें उत्तम प्रेरणा देते हुए विशाललोक को प्राप्त कराते हैं। **यत्**=जो लोक **स्वः**= सुखवाला है, **ज्योतिः**=प्रकाशमय है, **अभयम्**=भयरहित है तथा **स्वस्तिः**=उत्तम कल्याणमयी स्थितिवाला है। २. हे **इन्द्र**=शत्रुविद्रावक प्रभो! **स्थविरस्य**=सनातन पुरुष **ते**=तेरी **बाहु**=भुजाएँ **उग्रा**=अतिशयेन तेजस्विनी हैं। हम इन **बृहन्ता**=विशाल व हमारी वृद्धि की कारणभूत **शरणा**= हमारा आश्रय बननेवाली भुजाओं की छत्रछाया में ही **उपक्षयेम**=निवास करें।

भावार्थ—प्रभु हमें सतत प्रेरणा देते हुए 'विशाल सुख, प्रकाश, निर्भयता व कल्याण' वाले लोक में ले-चलते हैं। हम प्रभु की भुजाओं की छाया में ही निवास करें। ये भुआएँ ही हमारी सर्वमहान् शरण हैं।

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**मन्त्रोक्ताः**॥ छन्दः—**जगती**॥

'त्रिलोकी व चारों दिशाओं' से अभय

अभयं नः करत्यन्तरिक्षमभयं द्यावापृथिवी उभे इमे।
अभयं पश्चादभयं पुरस्तादुत्तरादधरादभयं नो अस्तु॥ ५॥

१. **नः**=हमारे लिए **अन्तरिक्षम्**=अन्तरिक्ष **अभयं करति**=निर्भयता करता है। **इमे**=ये **उभे**=दोनों **द्यावापृथिवी**=द्युलोक व पृथिवीलोक **अभयम्**=निर्भयता करते हैं। २. **नः**=हमारे लिए **पश्चात्**=पीछे से **अभयम्**=निर्भयता हो। **पुरस्तात्**=आगे से **अभयम्**=अभय हो तथा **उत्तरात्**=ऊपर से व **अधरात्**=नीचे से **अभयम् अस्तु**=निभर्यता हो। पश्चिम व पूर्व तथा उत्तर व दक्षिण सर्व दिशाओं से हमें अभय हो।

भावार्थ—हमें त्रिलोकी व दिक्चतुष्टय सभी निर्भयता प्राप्त कराएँ।

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**मन्त्रोक्ताः**॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्**॥

'मित्र व अमित्र' सभी से अभय

अभयं मित्रादभयममित्रादभयं ज्ञातादभयं नो परोक्षात्।
अभयं नक्तमभयं दिवा नः सर्वा आशा मम मित्रं भवन्तु॥ ६॥

१. **मित्रात् अभयम्**=मित्र से हमें अभय हो। **अमित्रात् अभयम्**=शत्रु से अभय प्राप्त हो। **ज्ञातात्**=ज्ञात—परिचित से **अभयम्**=अभय हो और **परोक्षात्**=जो परोक्ष है, उससे भी **नः**=हमें

अभयम्=अभय हो। २. **नक्तम् अभयम्**=रात्रि में अभय हो। **नः**=हमारे लिए **दिवा**=दिन में **अभयम्**=अभय हो। **सर्वः आशाः**=सब दिशाएँ **मम**=मेरी **मित्रं भवन्तु**=मित्र हों।

भावार्थ—मित्र-अमित्र, परिचित व अपरिचित सभी से हमें अभय हो। रात व दिन में हमें सदा अभय हो। सब दिशाओं में सर्वत्र हमें स्नेह प्राप्त हो।

१६. [षोडशं सूक्तम्]

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**मन्त्रोक्ताः**॥ छन्दः—**अनुष्टुप्**॥

असपत्नम्—अभयम्

असपत्नं पुरस्तात्पश्चान्नो अभयं कृतम्।
सविता मा दक्षिणत उत्तरान्मा शचीपतिः॥ १॥

१. **नः**=हमारे लिए **पुरस्तात्**=सामने से **असपत्नम्**=शत्रुराहित्य **कृतम्**=किया जाए और **पश्चात्**=पीछे से (नः) हमारे लिए **अभयं कृतम्**=निर्भयता प्राप्त कराई जाए। २. **सविता**= वह सर्वप्रेरक प्रभु **मा**=मुझे **दक्षिणतः**=दक्षिण से रक्षित करे तथा **शचीपतिः**=सब शक्तियों व प्रज्ञानों का स्वामी प्रभु मुझे **उत्तरात्**=उत्तर से बचाये।

भावार्थ—हमें पूर्व से शत्रुराहित्य प्राप्त हो तो पश्चिम से निर्भयता मिले। दक्षिण से सविता मेरा रक्षक हो तो उत्तर से शचीपति मेरा रक्षण करे।

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**मन्त्रोक्ताः**॥ छन्दः—**सप्तपदाबृहतीगर्भातिशक्वरी**॥

स्वाध्याय द्वारा सरल जीवन

दिवो मादित्या रक्षन्तु भूम्या रक्षन्त्वग्नयः।
इन्द्राग्नी रक्षतां मा पुरस्तादश्विनावभितः शर्म यच्छताम्।
तिरश्चीनघ्न्या रक्षतु जातवेदा भूतकृतो मे सर्वतः सन्तु वर्म॥ २॥

१. **दिवः**=इस द्युलोक के **आदित्याः**=रश्मिभेद से उदय होने से बारह नामोंवाले ये आदित्य **मा रक्षन्तु**=मुझे रक्षित करे तथा **भूम्याः**=इस पृथिवी की **अग्नयः**='गार्हपत्य, दक्षिनाग्नि, आहवनीय' आदि अग्नियाँ **रक्षन्तु**=रक्षित करें। २. **इन्द्राग्नी**=शक्ति व प्रकाश के देव **मा**=मुझे **पुरस्तात्**=आगे से **रक्षताम्**=रक्षित करें। **अश्विनौ**=प्राणापान **अभितः**=दोनों ओर से—शरीर व मन दोनों के दृष्टिकोण से **शर्म**=कल्याण **यच्छताम्**=दें। शरीर को ये नीरोग बनाएँ और मन को पवित्र। ३. **जातवेदाः**=जिससे ज्ञान की उत्पत्ति होती है वह **अघ्न्या**=अहन्तव्य—सदा स्वाध्याय के योग्य वेदवाणी **तिरश्चीन् रक्षतु**=(तिरः अञ्च्) टेढ़ी चालों को हमसे दूर रक्खे। हम स्वाध्याय के द्वारा कुटिलता से दूर होकर आर्जव के मार्ग को अपनाएँ। **भूतकृतः**=यथार्थ कर्मों के करनेवाले माता-पिता, आचार्य **सर्वतः**=सब ओर से **मे**=मेरे **वर्म सन्तु**=कवच हों। इनकी शरण में सुरक्षित हुआ-हुआ मैं बाल्य, यौवन में अपना ठीक परिपाक कर पाऊँ।

भावार्थ—द्युलोक के आदित्य व पृथिवी की अग्नियाँ मेरा रक्षण करें। बल व प्रकाश हमारे रक्षक हों। प्राणसाधना हमें स्वस्थ शरीर व निर्मल मनवाला बनाए। स्वाध्याय हमें सरलवृत्ति प्राप्त कराए तथा उत्तम माता-पिता व आचार्य कवच के समान हमारे रक्षक हों।

१७. [सप्तदशं सूक्तम्]

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**मन्त्रोक्ताः**॥ छन्दः—**जगती**॥

'अग्नि' वसुओं के साथ पूर्व में

अग्निर्मा पातु वसुभिः पुरस्तात्तस्मिन्क्रमे तस्मिञ्छ्रये तां पुरं प्रैमि।
स मा रक्षतु स मा गोपायतु तस्मा आत्मानं परि ददे स्वाहा॥ १॥

१. **अग्निः**=वह अग्रणी प्रभु—हमें निरन्तर आगे और आगे ले-चलनेवाले प्रभु **मा**=मुझे **वसुभिः**=निवास के लिए सब आवश्यक तत्त्वों के साथ **पुरस्तात्**=पूर्व दिशा की ओर से **पातु**=रक्षित करें। मैं उस प्रभु को सामने स्थित अनुभव करूँ जोकि मुझे प्रेरणा देते हुए आगे ले-चले रहे हैं और निवास के लिए आवश्यक सब तत्त्वों को प्राप्त करा रहे हैं। २. **तस्मिन् क्रमे**=उस प्रभु में स्थित होता हुआ मैं गतिशील होता हूँ। **तस्मिन् श्रये**=उसी में आश्रय करता हूँ और इसप्रकार **तां पुरं प्रैमि**=उस ब्रह्मनगरी की ओर (प्र) निरन्तर बढ़ता हूँ। **सः**=वह प्रभु **मा रक्षतु**=मुझे रोगों से बचाए। **सः**=वे प्रभु **मा**=मुझे **गोपायतु**=मन में वासनाओं के आक्रमण से सुरक्षित करे। **तस्मा**=उस प्रभु के लिए **आत्मानं परिददे**=अपने को दे डालता हूँ। **स्वाहा**=(स्व आ हा) अपने को सर्वथा उस प्रभु में त्याग देता हूँ। प्रभु में अपने को समर्पित कर देता हूँ।

भावार्थ—मैं पूर्व दिशा में उस अग्रणी प्रभु को स्थित अनुभव करूँ, जोकि मुझे निवास के लिए सब आवश्यक तत्त्वों को प्राप्त करा रहे हैं। इस प्रभु की ओर ही, कर्त्तव्यकर्मों के करने के द्वारा बढ़ चलूँ। ब्रह्मपुरी में पहुँचने को अपना लक्ष्य बनाऊँ। प्रभु के प्रति अपने को दे डालूँ। प्रभु में प्रवेश कर जाऊँ, उनकी गोद में पहुँच जाऊँ।

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**मन्त्रोक्ताः**॥ छन्दः—**जगती**॥

'वायु' अन्तरिक्ष के साथ पूर्व-दक्षिण के बीच की दिशा में

वायुर्मान्तरिक्षेणैतस्या दिशः पातु तस्मिन्क्रमे तस्मिञ्छ्रये तां पुरं प्रैमि।
स मा रक्षतु स मा गोपायतु तस्मा आत्मानं परि ददे स्वाहा॥ २॥

१. **वायुः**=(वा गतिगन्धनयोः) निरन्तर गति के द्वारा बुराइयों का संहार करनेवाले वे प्रभु **अन्तरिक्षेण**=हृदयान्तरिक्ष के साथ तथा (अन्तरा क्षि) सदा मध्यमार्ग में चलने की प्रेरणा के साथ **मा**=मुझे **एतस्याः**=इस पूर्व-दक्षिण के बीच की दिशा से **पातु**=रक्षित करें। २. **तस्मिन् क्रमे**=उस प्रभु में ही मैं गति करूँ। शेष पूर्ववत्०

भावार्थ—मैं पूर्व-दक्षिण के बीच की दिशा में गति के द्वारा बुराइयों का निरन्तर संहार करते हुए 'वायु' नामक प्रभु को अनुभव करूँ। उन्हीं में स्थित हुआ-हुआ गति करूँ।

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**मन्त्रोक्ताः**॥ छन्दः—**जगती**॥

'सोम' रुद्र के साथ दक्षिण में

सोमो मा रुद्रैर्दक्षिणाया दिशः पातु तस्मिन्क्रमे तस्मिञ्छ्रये तां पुरं प्रैमि।
स मा रक्षतु स मा गोपायतु तस्मा आत्मानं परि ददे स्वाहा॥ ३॥

१. **सोमः**=ये सौम्य, शान्त प्रभु **रुद्रैः**=रोगों को दूर भगानेवाले (रुत् द्र) सब आवश्यक तत्त्वों के साथ **मा**=मुझे **दक्षिणायाः दिशः**=दक्षिण दिशा से **पातु**=रक्षित करें। २. **तस्मिन् क्रमे**=उस परमात्मा में स्थित होता हुआ मैं गतिवाला होता हूँ। शेष पूर्ववत्०।

भावार्थ—मैं दक्षिण दिशा में 'सोम' (शान्त) प्रभु की उपस्थिति को देखूँ। ये प्रभु सब

रोगनाशक तत्त्वों को प्राप्त कराके मुझे भी शान्त बनाते हैं। इन्हीं में स्थित हुआ-हुआ मैं गति करूँ।

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**मन्त्रोक्ताः**॥ छन्दः—**जगती**॥

आदित्यों के साथ 'वरुण' दक्षिण-पश्चिम के मध्य में

वरुणो मादित्यैरेतस्या दिशः पातु तस्मिन्क्रमे तस्मिञ्छ्रये तां पुरं प्रैमि।
स मा रक्षतु स मा गोपायतु तस्मा आत्मानं परि ददे स्वाहा॥ ४॥

१. **वरुणः**=सब बुराइयों का निवारण करनेवाले श्रेष्ठ प्रभु **आदित्यैः** (आदानात्)=अच्छाइयों को ग्रहण करने की वृत्तियों के साथ **मा**=मुझे **एतस्याः दिशा**=इस दक्षिण-पश्चिम के बीच की दिशा से **पातु**=रक्षित करें। २. **तस्मिन् क्रमे**=आदित्यों के साथ होनेवाले वरुण का मैं दक्षिण-पश्चिम के मध्य में ध्यान करूँ और उसमें स्थित हुआ-हुआ कर्त्तव्यकर्मों को करूँ। शेष पूर्ववत्०

भावार्थ—मैं दक्षिण-पश्चिम के मध्य में बुराइयों का निवारण करनेवाले श्रेष्ठ प्रभु का ध्यान करूँ। वे मुझे सब अच्छाइयाँ को प्राप्त करानेवाले हैं। उन्हीं में स्थित होकर मैं गति करूँ।

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**मन्त्रोक्ताः**॥ छन्दः—**अतिजगती**॥

द्यावापृथिवी के साथ 'सूर्य' पश्चिम में

सूर्यो मा द्यावापृथिवीभ्यां प्रतीच्या दिशः पातु तस्मिन्क्रमे तस्मिञ्छ्रये तां पुरं प्रैमि।
स मा रक्षतु स मा गोपायतु तस्मा आत्मानं परि ददे स्वाहा॥ ५॥

१. (सरति इति) **सूर्यः**=निरन्तर गतिवाले दीप्त प्रभु (ब्रह्म सूर्यसमं ज्योतिः) **द्यावा-पृथिवीभ्याम्**=द्युलोक व पृथिवीलोक के साथ—दीप्त मस्तिष्क (द्युलोक) व दृढ़ शरीर (पृथिवी) के साथ **प्रतीच्याः दिशः**=पश्चिम दिशा से **मा**=मुझे **पातु**=रक्षित करें। २. **तस्मिन् क्रमे**=उन्हीं में मैं गति करूँ। शेष पूर्ववत्०।

भावार्थ—पश्चिम में मैं सूर्यरूप प्रभु को उपस्थित देखूँ। वे मुझे दीप्त मस्तिष्क व दृढ़ शरीर प्राप्त कराते हैं। उन्हीं में मैं गति करूँ।

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**मन्त्रोक्ताः**॥ छन्दः—**भुरिग्जगती**॥

ओषधियोंवाले सर्वव्यापक 'अपः' प्रभु पश्चिम-उत्तर के बीच में

आपो मौषधीमतीरेतस्या दिशः पान्तु तासु क्रमे तासु श्रये तां पुरं प्रैमि।
ता मा रक्षन्तु ता मा गोपायन्तु ताभ्य आत्मानं परि ददे स्वाहा॥ ६॥

१. **ओषधीमतीः**=विविध ओषधि-वनस्पतियोंवाले **आपः**=सर्वव्यापक 'आपः' नामवाले प्रभु **मा**=मुझे **एतस्याः**=इस पश्चिम-उत्तर के बीच की दिशा से **पान्तु**=रक्षित करें। २. **तासु**=उन 'आपः' नामवाले प्रभु में ही मैं गति करता हूँ। शेष पूर्ववत्०।

भावार्थ—प्रभु सर्वव्यापक होने से 'आपः' हैं। ये मुझे जीवनधारण के लिए विविध ओषधि व वनस्पतियों को प्राप्त कराते हैं। मैं इन्हें इस पश्चिम-उत्तर के बीच की दिशा में अनुभव करूँ। इन्हीं में गति करूँ।

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**मन्त्रोक्ताः**॥ छन्दः—**अतिजगती**॥

सप्तऋषियों के साथ 'विश्वकर्मा' उत्तरदिशा में

विश्वकर्मा मा सप्तऋषिभिरुदीच्या दिशः पातु तस्मिन्क्रमे तस्मिञ्छ्रये
तां पुरं प्रैमि। स मा रक्षतु स मा गोपायतु तस्मा आत्मानं परि ददे स्वाहा॥ ७॥

१. **विश्वकर्मा**=इस ब्रह्माण्ड के निर्माता प्रभु—सब कर्मों के करनेवाले प्रभु **सप्तऋषिभिः**=सात ऋषियों के साथ **मा**=मुझे **उदीच्याः दिशः**=उत्तरदिशा से **पातु**=रक्षित करें। २. **तस्मिन् क्रमे**=इन विश्वकर्मा प्रभु में ही मैं गति करता हूँ। शेष पूर्ववत्०।

भावार्थ—मैं उत्तर दिशा में विश्वकर्मा प्रभु का अनुभव करूँ, जोकि दो कान, दो नासिका-छिद्र, दो आँखें व मुखरूप सात ऋषियों के साथ मेरा रक्षण कर रहे हैं। इन प्रभु में ही मेरी सम्पूर्ण गति हो।

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**मन्त्रोक्ताः**॥ छन्दः—**जगती**॥

प्राणों के साथ 'इन्द्र' इसी उत्तर-पूर्व के बीच की दिशा में

इन्द्रो॑ मा म॒रुत्वा॑ने॒तस्या॑ दि॒शः पा॑तु तस्मि॑न्क्रम॒े तस्मि॑ञ्छ्रये॒ तां पु॒रं॒ प्रैमि॑।
स मा॑ रक्षतु॒ स मा॑ गोपायतु॒ तस्मा॑ आ॒त्मान॒ं परि॑ दद॒े स्वाहा॑॥ ८॥

१. **मरुत्वान्**=प्राणोंवाले **इन्द्रः**=सर्वशक्तिमान् प्रभु **मा**=मुझे **एतस्याः दिशः**=इस उत्तर-पूर्व के बीच की दिशा से **पातु**=रक्षित करें। २. इस सर्वशक्तिमान्—सब प्राणशक्ति को देनेवाले प्रभु में ही मैं गति करता हूँ। शेष पूर्ववत्०।

भावार्थ—मैं इस उत्तर-पूर्व के बीच की दिशा में सर्वशक्तिमान् प्रभु को अपने लिए सर्वप्राणशक्ति को लिये हुए अनुभव करूँ। इनमें ही गति करूँ।

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**मन्त्रोक्ताः**॥ छन्दः—**पञ्चपदाऽतिशक्वरी**॥

प्रजनन शक्तिवाले 'प्रजापति' ध्रुवादिक् में

प्र॒जाप॑तिर्मा प्र॒जन॑नवान्त्स॒ह प्र॑तिष्ठा॒या ध्रु॒वाया॑ दि॒शः पा॑तु तस्मि॑न्क्रम॒े तस्मि॑ञ्छ्रये॒
तां पु॒रं॒ प्रैमि॑। स मा॑ रक्षतु॒ स मा॑ गोपायतु॒ तस्मा॑ आ॒त्मान॒ं परि॑ दद॒े स्वाहा॑॥ ९॥

१. **प्रजननवान्**=सब उत्पादन-शक्तिवाले **प्रजापतिः**=प्रजापालक प्रभु **प्रतिष्ठायाः सह**=प्रतिष्ठा—गौरव के साथ **मा**=मुझे **ध्रुवायाः दिशः**=ध्रुवा दिक् से **पातु**=रक्षित करें। २. **तस्मिन् क्रमे**=इन प्रजापालक प्रभु में ही मैं गति करूँ। शेष पूर्ववत्०।

भावार्थ—मैं ध्रुवा दिक् में प्रजनन सामर्थ्यवाले प्रजापति प्रभु का अनुभव करूँ। ये प्रभु ही मुझे सब गौरव प्राप्त कराते हैं। इन्हीं में मैं गति करूँ।

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**मन्त्रोक्ताः**॥ छन्दः—**अतिजगती**॥

सब देवों के साथ 'बृहस्पति' प्रभु ऊर्ध्वा दिक् में

बृह॒स्पति॑र्मा॒ विश्वै॑र्दे॒वैरू॒र्ध्वाया॑ दि॒शः पा॑तु तस्मि॑न्क्रम॒े तस्मि॑ञ्छ्रये॒ तां पु॒रं॒ प्रैमि॑।
स मा॑ रक्षतु॒ स मा॑ गोपायतु॒ तस्मा॑ आ॒त्मान॒ं परि॑ दद॒े स्वाहा॑॥ १०॥

१. **बृहस्पतिः** (ब्रह्मणस्पतिः)=सब ज्ञानों के स्वामी **विश्वैर्देवैः**=सब दिव्य गुणों के साथ **मा**=मुझे **ऊर्ध्वायाः दिशः**=ऊर्ध्वा दिक् से **पातु**=रक्षित करें। २. **तस्मिन् क्रमे**=इन बृहस्पति प्रभु में ही मैं गति करूँ। शेष पूर्ववत्०।

भावार्थ—मैं ऊर्ध्वादिक् में मेरे रक्षण के लिए सब दिव्यगुणों के साथ स्थित 'बृहस्पति' प्रभु को अनुभव करूँ। इन्हीं में मेरी सम्पूर्ण गति हो।

१८. [अष्टादशं सूक्तम्]

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**मन्त्रोक्ताः**॥ छन्दः—**साम्नीत्रिष्टुप्**॥

'आगे बढ़ने की भावना' व पापवृत्तियों का निराकरण

अग्निं ते वसुवन्तमृच्छन्तु। ये माऽघायवः प्राच्या दिशो ऽभिदासात्॥ १॥

१. **ये**=जो **अघायवः**=(malicious, harmful) अशुभ को चाहनेवाले हानिकर भाव **प्राच्याः दिशः**=पूर्व दिशा की ओर से **मा**=मुझे **अभिदासात्**=(दसु उपक्षये) उपक्षीण (हिंसित) करना चाहें, **ते**=वे **वसुवन्तम्**=सब वसुओंवाले—निवास के लिए आवश्यक तत्त्वोंवाले **अग्निम्**=अग्रणी प्रभु को **ऋच्छन्तु**=(ऋच्छ्=reach, fail in faculties) प्राप्त होकर क्षीणशक्ति हो जाएँ। २. इस पूर्वदिशा में 'अग्नि' प्रभु वसुओं के साथ मेरा रक्षण कर रहे हैं। जो भी दास्यवभाव इधर से मुझपर आक्रमण करता है, वह इस प्रभु को प्राप्त होकर नष्ट हो जाता है। प्रभु रक्षक हैं तो ये मुझ तक पहुँच ही कैसे सकते हैं?

भावार्थ—पूर्वदिशा से कोई पाप मुझपर आक्रमण नहीं कर सकता। इधर तो 'अग्नि' नामक प्रभु मेरा रक्षण कर रहे हैं न? आगे बढ़ने की प्रवृत्ति 'अग्नि' मुझे अशुभ भावनाओं से बचाती है

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**मन्त्रोक्ताः**॥ छन्दः—**आर्च्यनुष्टुप्**॥

'मध्यमार्ग में चलना' व पापवृत्तियों का निराकरण

वायुं तेऽन्तरिक्षवन्तमृच्छन्तु। ये माऽघायव एतस्या दिशो ऽभिदासात्॥ २॥

१. **ये**=जो **अघायवः**=अशुभ को चाहनेवाले हानिकर भाव **एतस्याः दिशः**=इस पूर्व-पश्चिम के बीच की दिशा से **मा**=मुझे **अभिदासात्**=उपक्षीण करना चाहें, **ते**=वे **अन्तरिक्षवन्तम्**=उत्तम हृदयान्तरिक्ष को प्राप्त करानेवाले **वायुम्**=निरन्तर गतिवाले प्रभु को **ऋच्छन्तु**=प्राप्त होकर नष्ट सामर्थ्य हो जाएँ। २. इस पूर्व-दक्षिण के मध्य दिग्भाग में 'वायु' नामक प्रभु, उत्तम हृदयान्तरिक्ष को लिये हुए मेरा रक्षण कर रहे हैं, जो भी अशुभ वृत्ति इधर से मुझपर आक्रमण करेगी, वह इन 'वायु' नामक प्रभु को प्राप्त होकर विनष्ट होगी। प्रभु के रक्षक होने पर यह मुझ तक पहुँचेगी ही कैसे?

भावार्थ—पूर्व-दक्षिण के मध्यवर्ती दिग्भाग से कोई अशुभवृत्ति मुझपर आक्रमण नहीं कर सकती। इधर से तो 'वायु' नामक प्रभु मेरा रक्षण कर रहे हैं। यह निरन्तर गतिशीलता (वायु) मुझे अशुभवृत्तियों का शिकार नहीं होने देगी।

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**मन्त्रोक्ताः**॥ छन्दः—**आर्च्यनुष्टुप्**॥

सौम्यता व पापविनाश

सोमं ते रुद्रवन्तमृच्छन्तु। ये माऽघायवो दक्षिणाया दिशो ऽभिदासात्॥ ३॥

१. **ये**=जो **अघायवः**=अशुभ को चाहनेवाले **मा**=मुझे **दक्षिणायाः दिशः**=दक्षिणा दिक् से **अभिदासात्**=उपक्षीण करना चाहें **ते**=वे **रुद्रवन्तम्**=(रुत् द्र) रोगों को दूर भगाने की शक्तिवाले **सोमम्**=सौम्य (शान्त) प्रभु को **ऋच्छन्तु**=प्राप्त होकर विनष्ट हो जाएँ। २. इस दक्षिण दिशा में रुद्रोंवाले 'सोम' प्रभु मेरे रक्षक हैं। सब अशुभभाव इन प्रभु को प्राप्त होकर भस्म हो जाते हैं, मुझ तक पहुँचने से पूर्व ही विनष्ट हो जाते हैं। सौम्यता मुझे पापों से बचाती है।

भावार्थ—दक्षिण दिशा से कोई अशुभवृत्ति मुझपर आक्रमण नहीं कर पाती। इधर से 'सोम' प्रभु मेरा रक्षण कर रहे हैं। सौम्यता (नम्रता) से सब पाप नष्ट हो जाते हैं।

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**मन्त्रोक्ताः**॥ छन्दः—**आर्च्यनुष्टुप्**॥

निर्द्वेषता व निष्पापता

वरुणं त आदित्यवन्तमृच्छन्तु। ये माऽघायव एतस्या दिशो ऽभिदासात्॥ ४॥

१. **ये**=जो **अघायवः**=अशुभ को चाहनेवाले पापभाव **मा**=मुझे **एतस्याः दिशः**=इस दक्षिण-पश्चिम के मध्यादि भाग से **अभिदासात्**=नष्ट करते हैं तो वे **आदित्यवन्तम्**=सब अच्छाइयों का आदान करनेवाली शुभ प्रवृत्तियों के साथ **वरुणम्**=पाप-निवारक प्रभु को **ऋच्छन्तु**=प्राप्त होकर नष्ट हो जाएँ। २. इस दक्षिण-पश्चिम के मध्यदिग्भाग से 'वरुण' प्रभु मेरा रक्षण कर रहे हैं। इधर से ये पापभाव मुझपर कैसे आक्रमण कर सकते हैं?

भावार्थ—दक्षिण-पश्चिम के मध्यदिग्भाग से कोई अशुभवृत्ति मुझपर आक्रमण नहीं कर सकती। इधर से 'वरुण' प्रभु मेरा रक्षण कर रहे हैं। वरुण—द्वेष-निवारण से सब बुराइयाँ दूर हो जाती हैं।

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**मन्त्रोक्ताः**॥ छन्दः—**स्वराडार्च्यनुष्टुप्**॥

सूर्यसम ज्ञानज्योति में पापान्धकारविलय

सूर्यं ते द्यावापृथिवीवन्तमृच्छन्तु। ये माऽघायवः प्रतीच्या दिशो ऽभिदासात्॥ ५॥

१. **ये**=जो **अघायवः**=अशुभ को चाहनेवाले पापभाव **मा**=मुझे **प्रतीच्याः दिशः**=पश्चिम दिशा से **अभिदासात्**=उपक्षीण करना चाहते हैं, **ते**=वे **द्यावापृथिवीवन्तम्**=उत्तम मस्तिष्करूप द्युलोक को तथा दृढ़ शरीररूप पृथिवीलोक को प्राप्त करानेवाले **सूर्यम्**=सूर्यसम ज्योतिवाले ब्रह्म को **ऋच्छन्तु**=प्राप्त होकर नष्ट हो जाएँ। २. इस पश्चिम दिशा से 'सूर्य' नामक प्रभु मेरा रक्षण कर रहे हैं। इधर से आनेवाले पापभाव सूर्य तक पहुँचते ही उस सूर्यसम दीप्त ज्ञानाग्नि में दग्ध हो जाते हैं। मुझतक नहीं पहुँच पाते।

भावार्थ—पश्चिम दिशा से कोई पापभाव मुझपर आक्रमण नहीं कर सकता। इधर से 'सूर्य' नामक प्रभु मेरा रक्षण कर रहे हैं। सूर्य के समान ज्ञानज्योति को दीप्त करने से सब पाप उसमें भस्म हो जाते हैं।

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**मन्त्रोक्ताः**॥ छन्दः—**आर्च्यनुष्टुप्**॥

वानस्पतिक भोजन व पापवृत्तिक्षय

अपस्त ओषधीमतीर्ऋच्छन्तु। ये माऽघायव एतस्या दिशो ऽभिदासात्॥ ६॥

१. **ये**=जो **अघायवः**=अशुभ को चाहनेवाले पापभाव **मा**=मुझे **एतस्याः दिशः**=इस पश्चिम व उत्तर के बीच की दिशा से **अभिदासात्**=क्षीण करना चाहते हैं, **ते**=वे पापभाव **ओषधीमतीः**=प्रशस्त ओषधियोंवाले **अपः**=सर्वव्यापक प्रभु को **ऋच्छन्तु**=प्राप्त होकर नष्ट हो जाएँ। २. प्रभु-प्रदत्त ओषधि-वनस्पतिरूप सात्त्विक भोजन करते हुए हम पापवृत्तियों से दूर रहें। इन भोजनों के होने पर पापवृत्तियों का उद्भव ही नहीं होता।

भावार्थ—पश्चिमोत्तरमध्यदिग्भाग से कोई पापभाव मुझपर आक्रमण नहीं कर सकता, इधर से प्रशस्त ओषधि-वनस्पतियों को लिये हुए व्यापक प्रभु मेरा रक्षण कर रहे हैं।

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**मन्त्रोक्ताः**॥ छन्दः—**प्राजापत्यात्रिष्टुप् (सर्वाद्विपदाः)**॥

सप्त ऋषियों का प्राशस्त्य व पाप का अभाव

विश्वकर्माणं ते सप्तऋषिवन्तमृच्छन्तु। ये माऽघायव उदीच्या दिशो ऽभिदासात्॥ ७॥

१. **ये**=जो **अघायवः**=अशुभ को चाहनेवाले पापभाव **मा**=मुझे **उदीच्याः दिशः**=उत्तर दिशा

से **अभिदासात्**=उपक्षीण करते हैं, **ते**=वे **सप्तऋषिवन्तम्**=प्रशस्त सात ऋषियोंवाले—उत्तम कर्णों, नासिका-छिद्रों, आँखों व मुखवाले **विश्वकर्माणम्**=ब्रह्माण्ड के कर्त्ता प्रभु को **ऋच्छन्तु**=प्राप्त होकर नष्ट हो जाएँ। २. इस उत्तरदिशा से प्रशस्त कर्ण आदि इन्द्रियों को प्राप्त करानेवाले विश्वकर्मा प्रभु मेरा रक्षण कर रहे हैं, इधर से पापभाव मुझतक पहुँच ही कैसे सकते हैं?

भावार्थ—मैं उत्तर दिशा में उस विश्वकर्मा प्रभु का ध्यान करता हुआ क्रियाशील बनूँ। प्रशस्त इन्द्रियोंवाला बनकर पापों से आक्रान्त न होऊँ।

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**मन्त्रोक्ताः**॥ छन्दः—**साम्नीत्रिष्टुप्**॥

प्राणाग्नि में पापदहन

इन्द्रं ते मरुत्वन्तमृच्छन्तु। ये माऽघायव एतस्या दिशो ऽभिदासात्॥ ८॥

१. **ये**=जो **अघायवः**=मेरे अशुभ की कामनावाले पापभाव **मा**=मुझे **एतस्याः दिशः**=इस उत्तर-पूर्व के बीच की दिशा से **अभिदासात्**=क्षीण करते हैं, **ते**=वे **मरुत्वन्तम्**=प्रशस्त प्राणोंवाले **इन्द्रम्**=शत्रु-विद्रावक शक्तिशाली प्रभु को **ऋच्छन्तु**=प्राप्त होकर नष्ट हो जाएँ। २. इस दिशा से 'इन्द्र' मेरा रक्षण कर रहे हैं। वे मुझे शत्रु-विनाश के लिए इन प्रशस्त प्राणों को प्राप्त कराते हैं। इस प्राणसाधना के होने पर इन सब पापमय भावनाओं का दहन हो जाता है। 'प्राणायामैर्दहेद्दोषान्'।

भावार्थ—मैं प्रभु-प्रदत्त प्राणों की साधना करता हुआ पापों को दग्ध करनेवाला बनूँ।

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**मन्त्रोक्ताः**॥ छन्दः—**प्राजापत्यात्रिष्टुप् (सर्वाद्विपदाः)**॥

प्रशस्त प्रजनन व पाप-निराकरण

प्रजापतिं ते प्रजननवन्तमृच्छन्तु। ये माऽघायवो ध्रुवाया दिशो ऽभिदासात्॥ ९॥

१. **ये**=जो **अघायवः**=पाप की कामनावाले अशुभ विचार **मा**=मुझे **ध्रुवायाः**=इस ध्रुवादिक् से (अधः प्रदेश से) **अभिदासात्**=क्षीण करना चाहते हैं, **ते**=वे **प्रजननवन्तम्**=प्रशस्त प्रजननवाले **प्रजापतिम्**=प्रजापति को **ऋच्छन्तु**=प्राप्त होकर नष्ट हो जाएँ। २. ध्रुवादिक् से मैं प्रजापति प्रभु को अपना रक्षण करता हुआ जानूँ। ये प्रभु मुझे गृहस्थ में पवित्र सन्तान के निर्माण की प्रेरणा देते हुए पापों से बचाएँ।

भावार्थ—ध्रुवादिक् से प्रजापति प्रभु मेरा रक्षण करते हैं। ये प्रभु मुझे उत्कृष्ट प्रजनन की प्रेरणा कराते हुए आसक्ति में नहीं फँसने देते और इसप्रकार मुझे पापों से दूर रखते हैं।

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**मन्त्रोक्ताः**॥ छन्दः—**प्राजापत्यात्रिष्टुप् (सर्वाद्विपदाः)**॥

ज्ञान व निष्पापता

बृहस्पतिं ते विश्वदेववन्तमृच्छन्तु। ये माऽघायव ऊर्ध्वाया दिशो ऽभिदासात्॥ १०॥

१. **ये**=जो **अघायवः**=अशुभ चाहनेवाली पापवृत्तियाँ **मा**=मुझे **ऊर्ध्वायाः दिशः**=ऊर्ध्वा दिक् से **अभिदासात्**=उपक्षीण करती हैं, **ते**=वे **विश्वदेववन्तम्**=सब प्रशस्त दिव्यगुणों को प्राप्त करानेवाले **बृहस्पतिम्**=ज्ञान के स्वामी प्रभु को **ऋच्छन्तु**=प्राप्त होकर नष्ट हो जाएँ। २. इस ऊर्ध्वादिक् की ओर से 'बृहस्पति' प्रभु मेरा रक्षण कर रहे हैं—वे मुझे सब दिव्यगुणों को प्राप्त कराते हैं। ऐसी स्थिति में वे पापप्रवृत्तियाँ मेरे समीप फटक ही नहीं पातीं।

भावार्थ—मैं ज्ञान की रुचिवाला बनूँ और इसप्रकार सब व्यसनों से अपने को बचा पाऊँ।

१९. [एकोनविंशं सूक्तम्]

ऋषिः—**अथर्वा** ॥ देवता—**मन्त्रोक्ताः** ॥ छन्दः—**भुरिग्बृहती** ॥

स्नेह व स्वास्थ्य

मित्रः पृथिव्योदक्रामत्तां पुरं प्र णयामि वः।
तामा विशत तां प्र विशत सा वः शर्म च वर्म च यच्छतु॥ १॥

१. **मित्रः**=सबके साथ स्नेह करनेवाला **पृथिव्या**=इस शरीररूप पृथिवी के दृष्टिकोण से **उदक्रामत्**=उन्नत होता है। २. प्रभु कहते हैं कि **वः**=तुम्हें, स्नेह की वृत्ति को अपनाकर स्वस्थ शरीर बननेवालों को **तां पुरम्**=उस सुदूर ब्रह्मपुरी में **प्रणयामि**=ले-चलता हूँ। **ताम् आविशत**=उस ब्रह्मपुरी में प्रवेश करो, **तां प्रविशत**=उसमें सम्यक् प्रवेश करो **च**=और **सा**=वह ब्रह्मपुरी **वः**=तुम्हारे लिए **शर्म**=सुख को **वर्म च**=और वासनाओं के आक्रमण से बचानेवाले कवच को **यच्छतु**=दे।

भावार्थ—स्नेह की वृत्ति को अपनाकर हम स्वस्थ बनें। तभी हम ब्रह्मपुरी की ओर चलने के अधिकारी होंगे। यह ब्रह्मपुरी की ओर चलना हमें आनन्दित करे और वासनाओं के आक्रमण से बचानेवाला कवच बने।

ऋषिः—**अथर्वा** ॥ देवता—**मन्त्रोक्ताः** ॥ छन्दः—**अनुष्टुब्गर्भापङ्क्तिः** ॥

क्रियाशीलता व हृदय की पवित्रता

वायुरन्तरिक्षेणोदक्रामत्तां पुरं प्र णयामि वः।
तामा विशत तां प्र विशत सा वः शर्म च वर्म च यच्छतु॥ २॥

१. **वायुः**=(वा गतौ गन्धने च) गति के द्वारा सब बुराइयों का संहार करनेवाला **अन्तरिक्षेण**=हृदयान्तरिक्ष के दृष्टिकोण से **उदक्रामत्**=उन्नत होता है। हृदय में कर्मसंकल्प होने पर हृदय पवित्र बना रहता है। २. **वः**=क्रियाशीलता के द्वारा हृदय को पवित्र रखनेवाले तुम्हें **तां पुरम्**=उस ब्रह्मपुरी की ओर **प्रणयामि**=ले-चलता हूँ। शेष पूर्ववत्।

भावार्थ—हम क्रियाशीलता के द्वारा पवित्र हृदय बनें। ये ही ब्रह्मपुरी के यात्री बन पाते हैं।

ऋषिः—**अथर्वा** ॥ देवता—**मन्त्रोक्ताः** ॥ छन्दः—**भुरिग्बृहती** ॥

निरन्तर गतिशीलता व प्रकाश

सूर्यो दिवोदक्रामत्तां पुरं प्र णयामि वः।
तामा विशत तां प्र विशत सा वः शर्म च वर्म च यच्छतु॥ ३॥

१. **सूर्यः**=(सरति) निरन्तर अपने मार्ग पर आगे बढ़नेवाला पुरुष **दिव**=ज्ञान के प्रकाश से **उदक्रामत्**=उन्नत होता है। २. निरन्तर श्रम द्वारा ज्ञान को प्राप्त करनेवाले तुम्हें (वः) मैं ब्रह्मपुरी की ओर ले-चलता हूँ। शेष पूर्ववत्०।

भावार्थ—हम निरन्तर श्रम द्वारा अत्यधिक ज्ञान प्राप्त करें। यही मार्ग है ब्रह्म को प्राप्त करने का।

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**मन्त्रोक्ताः**॥ छन्दः—**अनुष्टुब्गर्भापङ्क्तिः**॥

प्रसन्नचित्तता तथा विज्ञान-नक्षत्रोदय

चन्द्रमा॒ नक्ष॑त्रैरुद॑क्रामत्तां पुरं॒ प्र ण॑यामि वः।
तामा वि॑शत॒ तां प्र वि॑शत॒ सा व॒ः शर्म॑ च॒ वर्म॑ च यच्छतु॥ ४॥

१. **चन्द्रमाः**=(चदि आह्लादे) आह्लादमय मनोवृत्तिवाला साधक **नक्षत्रैः**=विज्ञान के नक्षत्रों के साथ **उदक्रामत्**=उन्नत होता है। २. हम प्रसन्नचित्त होकर जब विज्ञान के अध्ययन से एक-एक पिण्ड में प्रभु की महिमा को देखते हैं तब प्रभु कहते हैं कि **वः**=तुम्हें उस ब्रह्मपुरी की ओर ले-चलता हूँ। शेष पूर्ववत्०।

भावार्थ—हम आह्लादमय मनोवृत्तिवाले बनकर विज्ञान के नक्षत्रों को अपने मस्तिष्क गगन में उदित करें, तभी हम ब्रह्मपुरी की ओर चलने के अधिकारी होंगे।

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**मन्त्रोक्ताः**॥ छन्दः—**अनुष्टुब्गर्भापङ्क्तिः**॥

वानस्पतिक भोजन व सौम्यता

सोम॒ ओष॑धीभिरुद॑क्रामत्तां पुरं॒ प्र ण॑यामि वः।
तामा वि॑शत॒ तां प्र वि॑शत॒ सा व॒ः शर्म॑ च॒ वर्म॑ च यच्छतु॥ ५॥

१. एक **सोमः**=सौम्य स्वभाव का शान्त पुरुष **ओषधीभिः**=ओषधियों से **उदक्रामत्**=उन्नत होता है। वानस्पतिक भोजन इसकी वृत्ति को सौम्य व अक्रूर बनाता है। २. इन वानस्पतिक भोजनों से सौम्य वृत्तिवाले तुम लोगों को उस ब्रह्मनगरी की ओर ले-चलता हूँ। शेष पूर्ववत्०।

भावार्थ—हम ओषधि-वनस्पतियों को ही अपना भोजन बनाकर सौम्य स्वभाव के बनें। यह सौम्यता ही हमें ब्रह्म की ओर ले-चलती है। मांस-भोजन हमें क्रूर बनाता है और प्रभु से दूर करनेवाला होता है।

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**मन्त्रोक्ताः**॥ छन्दः—**अनुष्टुब्गर्भापङ्क्तिः**॥

यज्ञ व दानवृत्ति

य॒ज्ञो दक्षि॑णाभिरुद॑क्रामत्तां पुरं॒ प्र ण॑यामि वः।
तामा वि॑शत॒ तां प्र वि॑शत॒ सा व॒ः शर्म॑ च॒ वर्म॑ च यच्छतु॥ ६॥

१. **यज्ञः**=यह 'देवपूजा, संगतिकरण व दान' की वृत्तिवाला पुरुष **दक्षिणाभिः**=दानों के द्वारा **उदक्रामत्**=उन्नत होता है। २. इस यज्ञशील, दान की वृत्तिवाले पुरुष को उस ब्रह्मपुरी की ओर ले-चलता हूँ। शेष पूर्ववत्०।

भावार्थ—यज्ञमय जीवनवाले बनकर धन को लोकहित के कार्यों के लिए दान करते हुए हम ब्रह्मपुरी को प्राप्त करने के अधिकारी होते हैं।

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**मन्त्रोक्ताः**॥ छन्दः—**अनुष्टुब्गर्भापङ्क्तिः**॥

नदियों के साथ समुद्र

स॒मु॒द्रो न॒दीभि॒रुद॑क्रामत्तां पुरं॒ प्र ण॑यामि वः।
तामा वि॑शत॒ तां प्र वि॑शत॒ सा व॒ः शर्म॑ च॒ वर्म॑ च यच्छतु॥ ७॥

१. **स-मुद्रः**=सदा आनन्दमयी मनोवृत्तिवाला यह पुरुष **नदीभिः**=ज्ञानजल की नदियों के साथ **उदक्रामत्**=उन्नत होता है। जैसे नदियाँ समुद्र में प्रवेश करती हैं, इसीप्रकार हम भी वह समुद्र बनें, जिसमें कि ज्ञानजलपूर्ण नदियों का प्रवेश हो। इसप्रकार ज्ञान की रुचिवाले सतत

स्वाध्यायशील पुरुष को मैं उस ब्रह्मपुरी में ले-चलता हूँ। शेष पूर्ववत्०।

भावार्थ—हमारा जीवन ज्ञान-जल की नदियों का प्रवेशस्थान समुद्र बने, तभी हम ब्रह्मपुरी में प्रवेश के अधिकारी बन पाएँगे।

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**मन्त्रोक्ताः**॥ छन्दः—**अनुष्टुब्गर्भापङ्क्तिः**॥

ब्रह्मचारियों के साथ ज्ञानी आचार्य (ब्रह्म)

ब्रह्म ब्रह्मचारिभिरुदक्रामत्तां पुरं णयामि वः।
तामा विशत तां प्र विशत सा वः शर्म च वर्म च यच्छतु॥ ८॥

१. **ब्रह्मचारिभिः**=ब्रह्मचारियों के साथ **ब्रह्म**=ज्ञानमय जीवनवाला आचार्य **उदक्रामत्**=उन्नत होता है। ज्ञान का पुञ्ज बना हुआ आचार्य स्वयं ब्रह्मचर्य को धारण करता हुआ ब्रह्मचारियों के साथ उन्नति-पथ पर आगे बढ़ता है। २. इन आचार्यों को मैं ब्रह्मपुरी की ओर ले-चलता हूँ। शेष पूर्ववत्०।

भावार्थ—एक ज्ञानी आचार्य ब्रह्मचारियों को उन्नति-पथ पर ले-चलता हुआ स्वयं उन्नत होता है और ब्रह्मपुरी की प्राप्ति का पात्र बनता है।

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**मन्त्रोक्ताः**॥ छन्दः—**अनुष्टुब्गर्भापङ्क्तिः**॥

वीर्यशक्ति-सम्पन्न जितेन्द्रिय पुरुष (जितेन्द्रियता, वीर्यरक्षा)

इन्द्रो वीर्येणोदक्रामत्तां पुरं प्र णयामि वः।
तामा विशत तां प्र विशत सा वः शर्म च वर्म च यच्छतु॥ ९॥

१. **इन्द्रः**=एक जितेन्द्रिय पुरुष, जितेन्द्रियता के द्वारा वीर्यरक्षण करता हुआ, **वीर्येण**=इस सुरक्षित वीर्य से **उदक्रामत्**=उन्नत होता है। २. इन वीर्यरक्षक, जितेन्द्रिय पुरुषों को मैं ब्रह्मनगरी में प्राप्त कराता हूँ। शेष पूर्ववत्०।

भावार्थ—एक जितेन्द्रिय पुरुष वीर्यरक्षण के द्वारा ब्रह्म की प्राप्ति का पात्र बनता है। सुरक्षित वीर्य से इसकी बुद्धि दीप्त होती है। इस दीप्त बुद्धि से यह प्रभु-दर्शन करता है।

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**मन्त्रोक्ताः**॥ छन्दः—**स्वराट्पङ्क्तिः**॥

देवों का अमृतभक्षण

देवा अमृतेनोदक्रामंस्तां पुरं प्र णयामि वः।
तामा विशत तां प्र विशत सा वः शर्म च वर्म च यच्छतु॥ १०॥

१. **देवाः**=देववृत्ति के पुरुष **अमृतेन**=(यज्ञशेषं तथामृतम्-कोश) यज्ञशेष के सेवन के द्वारा **उदक्रामत्**=उन्नत होते हैं। २. इन यज्ञशेष का सेवन करनेवाले देववृत्ति के पुरुषों को मैं ब्रह्मपुरी की ओर ले-चलता हूँ। शेष पूर्ववत्०

भावार्थ—हम जीवन में देववृत्ति के बनें और सदा यज्ञशेष का सेवन करें। यही ब्रह्मप्राप्ति का मार्ग है।

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**मन्त्रोक्ताः**॥ छन्दः—**अनुष्टुब्गर्भापङ्क्तिः**॥

प्रजाओं के साथ प्रजापति

प्रजापतिः प्रजाभिरुदक्रामत्तां पुरं प्र णयामि वः।
तामा विशत तां प्र विशत सा वः शर्म च वर्म च यच्छतु॥ ११॥

१. **प्रजापतिः**=प्रजाओं का रक्षक राजा अथवा सन्तानों का पालक एक सद्गृहस्थ **प्रजाभिः**=

प्रजाओं के साथ **उदक्रामत्**=उन्नत होता है। राजा का कर्त्तव्य यही है कि प्रजा का रक्षण करे। एक सद्गृहस्थ सन्तानों को उत्तम बनाने के लिए यत्नशील हो। २. ऐसा होने पर ही तुम्हें मैं ब्रह्मपुरी को प्राप्त कराता हूँ। शेष पूर्ववत्०।

भावार्थ—हम राजा हों तो प्रजाओं का रक्षण करें। एक सद्गृहस्थ बनकर सन्तानों का उत्तमतया पालन करें। यही प्रभु-प्राप्ति का मार्ग है।

२०. [विंशं सूक्तम्]

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**मन्त्रोक्ताः**॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्**॥

पौरुषेय वध से परित्राण

अप॒ न्यधुः॑ पौरु॒षेयं॑ व॒धं सम॑िन्द्रा॒ग्नी धा॒ता स॑वि॒ता बृह॒स्पतिः॑।
सोमो॒ राजा॒ वरु॑णो अ॒श्विना॑ य॒मः पू॒षास्मान्परि॑ पातु मृ॒त्योः॥ १॥

१. **यम्**=जिस **पौरुषेयम्**=पुरुष-सम्बन्धी **वधम्**=घातक अस्त्र को **अपन्यधुः**=शत्रुगण छिपाकर रखते हैं। शरीर में रोगकृमिरूप हमारे सपत्न हमारे शरीरों में घातक तत्त्वों को विविध अंग-प्रत्यंगों में छिपाकर स्थापित करनेवाले होते हैं। इन्हीं के कारण हमारी असमय में मृत्यु हो जाती है। **इन्द्राग्नी**=बल व प्रकाश के तत्त्व उस **मृत्योः**=मृत्यु से **अस्मान्**=हमें **परिपातु**=बचाएँ। इन्द्र व अग्नितत्त्व का (बल व प्रकाश) का समन्वय होने पर हम रोगरूप वधों से मारे नहीं जाते। २. **धाता**=धारण करनेवाला, **सविता**=उत्पादक, **बृहस्पतिः**=ज्ञान का स्वामी, **सोमः**=सौम्य व सोमशक्ति का पुञ्ज, **राजा**=शासक—व्यावस्थापक, **वरुणः**=सब पापों का निवारण करनेवाला, **अश्विना**=प्राणापानशक्ति का अधिष्ठाता, **यमः**=सर्वनियन्ता **पूषा**=पोषक प्रभु हमें मृत्यु से बचाए। प्रभु के ये सब नाम हमें प्रेरणा देते हैं कि हम भी धारणात्मक कार्यों में प्रवृत्त हों, निर्माण में लगें, ज्ञानी बनें, सौम्य हों, जीवन को व्यवस्थित रक्खें, निर्द्वेष बनें, प्राणापान की साधनावाले हों, मन का नियमन करें और शक्तियों का उचित पोषण करें। यही मृत्यु से बचने का मार्ग है।

भावार्थ—मृत्यु से बचने का मार्ग यही है कि हम अपने जीवन में शक्ति व प्रकाश का समन्वय करें। 'धाता' इत्यादि नामों से प्रेरणा लेकर जीवनों को वैसा ही बनाएँ।

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**मन्त्रोक्ताः**॥ छन्दः—**जगती**॥

प्रभु-प्रदत्त कवच

यानि॑ च॒कार भुव॑नस्य॒ यस्पतिः॒ प्र॒जाप॑तिर्मात॒रिश्वा॑ प्र॒जाभ्यः॑।
प्र॒दिशो॒ यानि॑ वस॒ते दिश॑श्च॒ तानि॑ मे॒ वर्मा॑णि बहु॒लानि॑ सन्तु॥ २॥

१. **यानि**=जिन रक्षासाधनों को **प्रजाभ्यः**=प्रजाओं के लिए **प्रजापतिः चकार**=प्रजारक्षक प्रभु ने बनाया है, उस प्रभु ने **यः**=जोकि **भुवनस्य पतिः**=सारे ब्रह्माण्ड का स्वामी है तथा **मातरिश्वा**=मातृरूप प्रकृति में गति देनेवाला है (श्वि गतौ) २. जिन रक्षासाधनों को **दिशः प्रदिशः च**=दिशाएँ और फैली हुई अवान्तर दिशाएँ **वसते**=धारण करती हैं, **तानि**=वे सब **बहुलानि**=बहुत-से रक्षासाधन मेरे लिए **वर्माणि**=कवच के रूप में **सन्तु**=हों।

भावार्थ—प्रभु ने प्रकृति के सब देवों को हमारे रक्षण के लिए ही उस-उस स्थान में स्थापित किया है। ये सब रक्षा के साधन मेरे लिए कवच का काम दें।

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**मन्त्रोक्ताः**॥ छन्दः—**अनुष्टुप्**॥

'देही देवों' से दत्त कवच

यत्ते तनूष्वनह्यन्त देवा द्युराजयो देहिनः।
इन्द्रो यच्चक्रे वर्म तदस्मान्पातु विश्वतः॥ ३॥

१. प्रभु महादेव हैं। उत्तम 'माता, पिता व आचार्य' देहधारी देव हैं। माता बालक को 'चरित्र' का कवच धारण कराती है, पिता 'शिष्टाचार' का तथा आचार्य 'ज्ञान' का। **यत्**=जिस **वर्म**= कवच को **ते**=तेरे **तनूषु**=शरीरों पर (स्थूल, सूक्ष्म, कारणनामक शरीरों पर) **द्युराजयः**=ज्ञान से दीप्त होनेवाले **देहिनः**=शरीरधारी **देवाः**=देव—माता, पिता तथा आचार्य **अनह्यन्त**=बाँधते हैं। **तत्**=वह 'चरित्र, शिष्टाचार व ज्ञान' का कवच **अस्मान्**=हमें **विश्वतः**=सब ओर से **पातु**= रक्षित करे। २. इन कवचों के अतिरिक्त **यत् वर्म**=जिस कवच को **इन्द्रः**=सर्वशक्तिमान् परमैश्वर्यशाली प्रभु ने **चक्रे**=बनाया है। प्रभु ने शरीर में सोमशक्ति को स्थापित किया है। यह 'सोम' रोगों को रोकने के लिए सर्वोत्तम कवच है। यह सोम का कवच ही हमें सब ओर से सुरक्षित करे।

भावार्थ—सुशिक्षित माता 'चरित्र' के कवच को धारण कराती है, कुशल पिता 'शिष्टाचार' के कवच को धारण कराता है, आचार्य 'ज्ञान' के कवच को। प्रभु ने हमें 'सोमशक्ति' का कवच पहनाया है। ये कवच हमारा रक्षण करें।

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**मन्त्रोक्ताः**॥ छन्दः—**अनुष्टुप्**॥

मा मा प्रापत् प्रतीचिका

वर्म मे द्यावापृथिवी वर्माहर्वर्म सूर्यः।
वर्म मे विश्वेदेवाः क्रन्मा मा प्रापत्प्रतीचिका॥ ४॥

१. **मे**=मेरे लिए **द्यावापृथिवी**=द्युलोक और पृथिवीलोक **वर्म**=कवच का काम करें। **अहः**= दिन मेरे लिए **वर्म**=कवच हो। **सूर्यः**=सूर्य **वर्म**=कवच बने। २. **विश्वेदेवाः**='माता, पिता, आचार्य' आदि सब देव **मे**=मेरे लिए **वर्म क्रन्**=कवच बनें, जिससे **मा**=मुझे **प्रतीचिका**=मेरे विरुद्ध आनेवाली आसुरसेना—आसुरी वृत्तियों की सेना **मा प्रापत्**=मत प्राप्त हो। 'द्युलोक, पृथिवीलोक, दिन व सूर्य' आदि की अनुकूलता (रक्षण) मुझे रोगों से बचाएँ। माता आदि का उत्तम शिक्षण वासनाओं से।

भावार्थ—सारा संसार (सब प्राकृतिक देव) मेरा रक्षण करें, जिससे मैं स्वस्थ शरीर रहूँ। माता, पिता व आचार्य आदि सबका रक्षण मुझे वासनामय जीवनवाला न बनने दे।

यह नीरोग व निर्वासन पुरुष उन्नत होता हुआ अन्ततः 'ब्रह्मा' बनता है। 'ब्रह्मा' ही अगले सूक्त का ऋषि है—

२१. [एकविंशं सूक्तम्]

ऋषिः—**ब्रह्मा**॥ देवता—**छन्दाँसि**॥ छन्दः—**द्विपदासाम्नीबृहती (एकावसाना)**॥

सप्त छन्दोमय जीवन

गायत्र्युष्णिगनुष्टुब्बृहती पङ्क्तिस्त्रिष्टुब्जगत्यै॥ १॥

१. हम अपने प्रथमाश्रम में '**गायत्री**' छन्द को अपना आच्छादन बनाएँ। 'गयाः प्राणाः तान् तत्रे' प्राणों का रक्षण करनेवाली यह गायत्री है। प्रथमाश्रम का ध्येय 'प्राणशक्ति का रक्षण' ही है। ब्रह्मचारी वीर्यरक्षण द्वारा प्राणशक्ति में कमी नहीं आने देता। २. गृहस्थ में ध्येय '**उष्णिक्**'

छन्द है। 'उत् स्निह्यति'—यह गृहस्थ उत्कृष्ट स्नेहवाला होता है। इसका स्नेह वासनामय होकर राग में परिवर्तित नहीं हो जाता। वही गृहस्थ श्रेष्ठ है जोकि आसक्ति से बचा रहता है। इसी उद्देश्य से यह '**अनुष्टुप्**' एक दिन के बाद दूसरे दिन, अर्थात् सदा (स्तोभ worship) प्रभु का स्तवन करता है। ३. अब वानप्रस्थ बनने पर यह गृहस्थ की संकुचित हृदयता से ऊपर उठने के लिए 'बृहती' छन्द का ध्यान करता है और हृदय को बृहत् (विशाल) बनाता है। **पङ्क्तिः**=पाँचों यज्ञों का विस्तार करता हुआ (पचि विस्तारे) यह 'पाँचों कर्मेन्द्रियों, पाँचों ज्ञानेन्द्रियों, पाँचों प्राणों तथा 'मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार, हृदय' इस अन्तःकरण पंचक' का विकास करता है और **त्रिष्टुप्**=(स्तोभते to stop) 'काम, क्रोध व लोभ' इन तीनों का निरोध करता है। ४. काम, क्रोध, लोभ के निरोध के साथ विजयपूर्ण हो जाती है। अब इस विजेता का जीवन अपने लिए न रहकर **जगत्यै**=जगती के लिए हो जाता है। इसे अपने लिए अब कुछ नहीं करना। यह 'प्राजापत्य यज्ञ' में अपनी आहुति दे देता है। आज इस उन्नति के चरमोत्कर्ष पर पहुँचकर यह 'ब्रह्मा' हो गया है।

भावार्थ—ब्रह्मचर्याश्रम में 'गायत्री' हमारा आच्छादन हो। गृहस्थ में 'उष्णिक् और अनुष्टुप्'। वानप्रस्थ में हमारे आच्छादन 'बृहती, पङ्क्ति व त्रिष्टुप्' हों तथा संन्यास में हम 'जगती' के लिए हो जाएँ। हम अपने लिए न जी रहें हों।

यह व्यक्ति अंग-प्रत्यंग में रसवाला बना रहने से 'अंगिराः' है (अंग-रस)। अगले सूक्त का ऋषि 'अङ्गिराः' ही है—

२२. [द्वाविंशं सूक्तम्]

ऋषिः—**अङ्गिराः**॥ देवता—**मन्त्रोक्ताः**॥ छन्दः—**१ साम्नुष्णिक्, २ दैवीपङ्क्तिः, ३ प्राजापत्यागायत्री**॥

योगाङ्गों का अभ्यास

आङ्गिरसानामाद्यै पञ्चानुवाकैः स्वाहा॥ १॥

षष्ठाय स्वाहा॥ २॥ सप्तमाष्टमाभ्यां स्वाहा॥ ३॥

१. 'अङ्गिरस' वे व्यक्ति हैं जो गतिशील जीवनवाले होते हुए, ज्ञानप्रधान जीवन बिताते हुए (अगि गतौ) अंग-प्रत्यंग को रसमय बनाये रखते हैं—इनकी लोच-लाचक में कमी नहीं आने देते। इन **आङ्गिरसानाम्**=आंगिरसों के **आद्यैः**=प्रथम—प्रारम्भ में होनेवाले **पञ्च अनुवाकैः**=पाँच बातों के साथ सम्बद्ध जपों के हेतु से—'मैं 'यम-नियम' का पालन करूँगा, मैं 'आसन, प्राणायाम' को अपनाऊँगा और इसप्रकार 'प्रत्याहार'-वाला—इन्द्रियों को विषयों से वापस लानेवाला बनूँगा' इन प्रतिदिन दुहराये जानेवाले विचारों के हेतु से **स्वाहा**=उस प्रभु के प्रति अपना अर्पण करता हूँ। प्रभु ही मुझे इन विचारों को स्थूल रूप देने में समर्थ करेंगे। प्रभु-कृपा से ही ये विचार मेरे जीवन में आचार के रूप में परिवर्तित होंगे। २. अब मैं **षष्ठाय**=प्रत्याहार के बाद धारणारूप योग के छठे अंग के लिए प्रभु के प्रति **स्वाहा**=अपना अर्पण करता हूँ। इन्द्रियों को अन्दर ही बाँधने का प्रयत्न करता हूँ। ३. धारणा के बाद **सप्तम् अष्टमाभ्याम्**=सातवें व आठवें—ध्यान व समाधिरूप—योगांगों के लिए **स्वाहा**=आपके प्रति अपने को अर्पित करता हूँ। आपने ही मुझे इन योगांगों में गतिवाला करना है।

भावार्थ—हम योग के प्रथम पाँच अंगों को क्रियान्वित करने के लिए उन्हीं का जप व विचार करें—हमें उनका विस्मरण न हो। अब प्रत्याहार के बाद 'धारणा' के लिए यत्नशील

हों। धारणा के बाद 'ध्यान व समाधि' को अपना पाएँ। इन सबके लिए मैं प्रभु के प्रति अपना अर्पण करता हूँ।

ऋषिः—**अङ्गिराः**॥ देवता—**मन्त्रोक्ताः**॥ छन्दः—**४, ७ दैवीजगती, ५ दैवीत्रिष्टुप्, ६ दैवीपङ्क्तिः**॥

योगी का जीवन

नीलनखेभ्यः स्वाहा॥ ४॥ **हरितेभ्यः स्वाहा**॥ ५॥

क्षुद्रेभ्यः स्वाहा॥ ६॥ **पर्यायिकेभ्यः स्वाहा**॥ ७॥

१. योगांगों का अभ्यास करनेवाले ये व्यक्ति **नील**=कृष्णा=निर्लेप (नीरंग—जिनपर दुनिया का रंग नहीं चढ़ गया) बनते हैं तथा उन्नति के शिखर पर पहुँचते हैं, इनके जीवन में **न-ख**=छिद्र (दोष) नहीं रहते। इन **नीलनखेभ्यः**=निर्लेप, निश्छिद्र जीवनवाले पुरुषों के लिए हम (सु आह) **स्वाहा**=शुभ शब्दों का उच्चारण करते हैं। अपने जीवनों को भी उन-जैसा बनाने का प्रयत्न करते हैं। ३. इन **हरितेभ्यः**=इन्द्रियों का विषयों से प्रत्याहार करनेवालों के लिए **स्वाहा**=हम प्रशंसात्मक शब्द कहते हैं और इन-जैसा बनने के लिए यत्नशील होते हैं। ३. **क्षुद्रेभ्यः** (क्षुदिर् संपेषणे)=शत्रुओं का संपेषण कर डालनेवाले इन व्यक्तियों के लिए हम **स्वाहा**=(स्व हा) अपना अर्पण करते हैं। उनके शिष्य बनकर उन-जैसा बनने के लिए यत्न करते हैं। ४. **पर्यायिकेभ्यः**= (पर्याय=regular order) इन व्यवस्थित जीवनवालों के लिए **स्वाहा**=प्रशंसात्मक शब्द कहते हुए हम भी उनके जीवनों को अपना जीवन बनाते हैं। उनकी भाँति ही जीवन की प्रत्येक क्रिया को व्यवस्थित करते हैं।

भावार्थ—योगांगों के अभ्यास से हम निर्लेप व निश्छिद्र जीवनवाले हों। इन्द्रियों का विषयों से प्रत्याहार करें। काम, क्रोध, लोभ आदि शत्रुओं का संपेषण कर डालें। हमारे जीवन की प्रत्येक क्रिया व्यवस्थित (regular order में) हो।

ऋषिः—**अङ्गिराः**॥ देवता—**मन्त्रोक्ताः**॥ छन्दः—**८-१० आसुरीजगती**॥

शं-ख=शान्तेन्द्रिय पुरुष

प्रथमेभ्यः शङ्खेभ्यः स्वाहा॥ ८॥ **द्वितीयेभ्यः शङ्खेभ्यः स्वाहा**॥ ९॥

तृतीयेभ्यः शङ्खेभ्यः स्वाहा॥ १०॥

१. योगांगों के अभ्यास से इन्द्रियों की विषयों के प्रति रुचि कम और कम होती जाती है। इन्द्रियों के प्रति अरुचि ही 'संवेग' है। यह संवेग 'मृदु-मध्य-व तीव्र' इन तीन श्रेणियों में विभक्त है। इनमें मृदु संवेगवाले यहाँ 'प्रथम शंख' कहे गये हैं—वे व्यक्ति जो इन्द्रियों को शान्त करनेवालों की प्रथम श्रेणी में हैं। मध्य संवेगवाले द्वितीय श्रेणी में तथा तीव्र संवेगवाले तृतीय श्रेणी में। २. इन **प्रथमेभ्यः शंखेभ्यः**=प्रथम श्रेणीवाले शान्तेन्द्रिय पुरुषों के लिए हम **स्वाहा**=प्रशंसात्मक शब्द कहते हैं, **द्वितीयेभ्यः शंखेभ्यः**=मध्य संवेगवाले द्वितीय श्रेणी के शान्तेन्द्रिय पुरुषों के लिए **स्वाहा**=शुभ शब्द कहते हैं और **तृतीयेभ्यः शंखेभ्यः**=इन तीव्र संवेगवाले शान्तेन्द्रिय पुरुषों के लिए **स्वाहा**=अपने को सौंपते हैं (स्व हा) और उन-जैसा बनने के लिए यत्नशील होते हैं।

भावार्थ—योगांगानुष्ठान से विषयों से ऊपर उठकर हम क्रमशः अधिकाधिक शान्तेन्द्रिय बनें। ऐसे पुरुषों के साथ ही हमारा उठना-बैठना हो—हम भी उन-जैसा बनने के लिए यत्न करें।

ऋषिः—**अङ्गिराः**॥ देवता—**मन्त्रोक्ताः**॥ छन्दः—**११ दैवीजगती, १२-१३ दैवीत्रिष्टुप्**॥

उपोत्तम-उत्तम-उत्तर

उपोत्तमेभ्यः स्वाहा॥ ११॥ **उत्तमेभ्यः स्वाहा**॥ १२॥

उत्तरेभ्यः स्वाहा॥ १३॥

१. गतमन्त्र के शान्तेन्द्रिय, अतएव **उपोत्तमेभ्यः**=उस उत्तमपुरुष प्रभु के समीप वास करनेवालों के लिए **स्वाहा**=हम प्रशंसात्मक शब्द कहते हैं। २. **उत्तमेभ्यः**=(ब्रह्मभूतेभ्यः) इन उत्तम—ब्रह्मप्राप्त पुरुषों के लिए **स्वाहा**=हम शुभ शब्द बोलते हैं। ३. **उत्तरेभ्यः**=संसार-सागर को उत्तीर्ण कर गये इन पुरुषों के लिए हम **स्वाहा**=अपने को अर्पित करते हैं (स्व हा) और उनकी भाँति हम भी भवसागर को तैरने के लिए यत्नशील होते हैं।

भावार्थ—हम प्रभु की उपासना करें। प्रभु को प्राप्त करें और भवसागर से उत्तीर्ण हो जाएँ।

ऋषिः—**अङ्गिराः**॥ देवता—**मन्त्रोक्ताः**॥ छन्दः—**१४-१६ दैवीपङ्क्तिः, १७ दैवीजगती**॥

तत्त्वदर्शन

ऋषिभ्यः स्वाहा॥ १४॥ **शिखिभ्यः स्वाहा**॥ १५॥

गणेभ्यः स्वाहा॥ १६॥ **महागणेभ्यः स्वाहा**॥ १७॥

१. संसार के विषयों को तैर जानेवाले ये व्यक्ति ऋषि बनते हैं—तत्त्वद्रष्टा। **ऋषिभ्यः स्वाहा**=इन तत्त्वद्रष्टाओं के लिए हम प्रशंसात्मक शब्द कहते हैं। २. **शिखिभ्यः स्वाहा**=तत्त्वदर्शन के द्वारा उन्नति की शिखा (चोटी) पर पहुँचनेवाले इन शिखियों के लिए हम प्रशंसात्मक शब्द कहते हैं। ३. (गण संख्याने) **गणेभ्यः स्वाहा**=संख्यान करनेवाले—प्रत्येक बात के उपाय को सोचनेवाले, इसप्रकार कर्त्तव्याकर्त्तव्य का विवेक करनेवाले इन ज्ञानियों के लिए हम शुभ शब्द कहते हैं ४. **महाणेभ्यः स्वाहा**=महान् ज्ञानियों की हम प्रशंसा करते हैं। इनकी प्रशंसा करते हुए इन-जैसा ही बनने के लिए यत्नशील होते हैं।

भावार्थ—हम तत्त्वद्रष्टा ऋषियों, तत्त्वदर्शन से उन्नति के शिखर पर पहुँचे हुए व्यक्तियों, उपाय व अपाय को सोचकर कर्त्तव्याकर्त्तव्य का विवेक करनेवाले ज्ञानियों व महान् ज्ञानियों का शंसन करते हुए उन-जैसा बनने का प्रयत्न करें।

ऋषिः—**अङ्गिराः**॥ देवता—**मन्त्रोक्ताः**॥ छन्दः—**१८ आसुर्यनुष्टुप्, १९ प्राजापत्यागायत्री, २० दैवीपङ्क्तिः**॥

ब्रह्मा

सर्वेभ्योऽङ्गिरोभ्यो विदगणेभ्यः स्वाहा॥ १८॥

पृथक्सहस्राभ्यां स्वाहा॥ १९॥ **ब्रह्मणे स्वाहा**॥ २०॥

१. **अङ्गिरोभ्यः**=अंग-प्रत्यंग में रसवाले **सर्वेभ्यः**=सब **विदगणेभ्यः**=ज्ञानी—विवेकी पुरुषों के लिए हम **स्वाहा**=प्रशंसात्मक शब्द कहते हैं। २. तत्त्वज्ञान के कारण **पृथक् सहस्राभ्याम्**=विषयों की आसक्ति से पृथक् हुए-हुए और अतएव (स+हस्) आनन्दमय जीवनवाले इन जीवन्मुक्त पुरुषों के लिए हम **स्वाहा**=शुभ शब्द कहते हैं। ३. **ब्रह्मणे**=उत्तम सात्त्विक गति में भी सर्वप्रथम स्थान में स्थित इस 'ब्रह्मा' (वेदज्ञ) पुरुष के लिए **स्वाहा**=हम शुभ शब्द कहते हैं।

भावार्थ—हम तत्त्वज्ञानी, विषयों की आसक्ति से पृथक्, आनन्दमय (मनःप्रसादयुक्त) देवाग्रणी ब्रह्मा के लिए प्रशंसात्मक शब्द कहते हैं। वैसा ही बनने का प्रयत्न करते हैं।

ऋषिः—**अङ्गिराः**॥ देवता—**मन्त्रोक्ताः**॥ छन्दः—**चतुष्पदात्रिष्टुप्**॥

अस्पर्धनीय (ब्रह्मा)

ब्रह्मज्येष्ठा संभृता वीर्या ∫णि ब्रह्माग्रे ज्येष्ठं दिवमा ततान।
भूतानां ब्रह्मा प्रथमोत जज्ञे तेनार्हति ब्रह्मणा स्पर्धितुं कः॥ २१॥

१. पिछले मन्त्र में 'ब्रह्मा' का उल्लेख हुआ था। उस ब्रह्मा के लिए कहते हैं कि इस ब्रह्मा में **ब्रह्मज्येष्ठा**=ज्ञान की जिनमें सर्वप्रशस्त है, वे **वीर्याणि**=शक्तियाँ **संभृता**=सम्यक् भृत (पोषित) हुई हैं। इसने शारीर व मानस शक्तियों के साथ इस सर्वोपरि ज्ञानशक्ति का अपने में संभरण किया है। **अग्रे**=इस सृष्टि के प्रारम्भ में **ब्रह्मा**=इस सर्वोत्तम सात्त्विकाग्रणी पुरुष ने **ज्येष्ठं दिवम्**=सर्वश्रेष्ठ वेदमय ज्योति को 'अग्नि, वायु, आदित्य व अंगिरा' से प्राप्त करके **आततान**=चारों ओर फैलाया है। २. **उत**=और **भूतानाम्**=इन प्राणियों में यह **ब्रह्मा**=चतुर्वेदवेत्ता पुरुष **प्रथम जज्ञे**=सर्वप्रथम हुआ है। उन्नति के सोपान में यह सबसे ऊपर है। **तेन ब्रह्मणा**=उस ब्रह्मा से **कः**=कौन **स्पर्धितुम् अर्हति**=स्पर्धा के योग्य है? इस ब्रह्मा का मुक़ाबला कोई नहीं कर सकता। इसका जीवन पवित्रतम है।

भावार्थ—सृष्टि के प्रारम्भ में उत्पन्न होनेवाला (प्रभु का मानस पुत्र) यह ब्रह्मज्ञान प्रधान सब शक्तियों का अपने में संभरण करता है। इस ज्ञान को यह चारों ओर फैलाता है। इसका जीवन अद्वितीय है।

यह 'ब्रह्मा' अथर्वा बनता है—न डाँवाडोल होनेवाला। अथर्वा ही अगले सूक्त का ऋषि है—

२३. [त्रयोविंशं सूक्तम्]

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**मन्त्रोक्ताः**॥ छन्दः—१ **आसुरीबृहती**, २-४ **दैवीत्रिष्टुप्**॥

चार पुरुषार्थ, पञ्चभूत, छह ऋतुएँ, सात ऋषि

आथर्वणानां चतुर्ऋचेभ्यः स्वाहा॥ १॥ **पञ्चर्चेभ्यः स्वाहा॥ २॥**
षड्ऋचेभ्यः स्वाहा॥ ३॥ **सप्तर्चेभ्यः स्वाहा॥ ४॥**

१. 'अथर्वा' से जिन मन्त्रों का अर्थ देखा जाता है वे मन्त्र 'आथर्वण' कहलाते हैं। 'अथर्वा' वे व्यक्ति हैं जोकि 'अथ अर्वाङ्'—विषयों में न भटक (न थर्व्) अब अन्दर—आत्मनिरीक्षण करते हैं। **आथर्वणानाम्**=इन अथर्वाओं से देखे गये मन्त्रों में **चतुर्ऋचेभ्यः**=(ऋच् स्तुतौ) जिनमें 'धर्म, अर्थ, काम व मोक्ष' इन चारों पुरुषार्थों का स्तवन व प्रतिपादन है, उन मन्त्रों के लिए **स्वाहा**= हम (सु आह) प्रशंसात्मक शब्द कहते हैं। हम भी उन मन्त्रों का अध्ययन करते हुए 'धर्म, अर्थ, काम व मोक्ष' इन चारों ही पुरुषार्थों को सिद्ध करते हैं। २. **पञ्चर्चेभ्यः**='पृथिवी, जल, तेज, वायु व आकाश' इन पाँचों भूतों का स्तवन व प्रतिपादन करनेवाले मन्त्रों के लिए हम **स्वाहा**=प्रशंसात्मक शब्द कहते हैं। इनके अध्ययन से पाँचों भूतों का ज्ञान प्राप्त करके उनकी अनुकूलता के सम्पादन से हम पूर्ण स्वस्थ होने का प्रयत्न करते हैं। ३. **षड्ऋचेभ्यः**='वसन्त, ग्रीष्म, वर्षा, शरद्, हेमन्त व शिशिर' इन छह ऋतुओं का स्तवन करनेवाले मन्त्रों का हम **स्वाहा**=शंसन करते हैं। इनका अध्ययन करते हुए सब ऋतुओं के गुण-धर्मों को समझकर अपनी ऋतुचर्या को ठीक बनाते हैं। २. **सप्तर्चेभ्यः स्वाहा**='कर्णाविमौ नासिके चक्षणी मुखम्' इन सात ऋषियों का स्तवन व प्रतिपादन करनेवाले मन्त्रों के लिए हम प्रशंसात्मक शब्द कहते हैं। इनके अध्ययन से कान आदि ऋषियों के महत्त्व को समझते हैं और उनको ज्ञान-प्राप्ति में लगाकर

सचमुच ही उन्हें ऋषि बनाये रखने का प्रयत्न करते हैं।

भावार्थ—हम आथर्वण मन्त्रों में 'चतुर्ऋच' मन्त्रों से 'धर्मार्थ, काम व मोक्ष' इन चार पुरुषार्थों का ज्ञान प्राप्त करें। 'पञ्चर्चों' से पञ्चभूतों का, 'षड्चों' से छह ऋतुओं का तथा 'सप्तर्चों' सें कान आदि सात ऋषियों का ज्ञान प्राप्त करें।

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**मन्त्रोक्ताः**॥ छन्दः—५-७ **दैवीत्रिष्टुप्, ८ प्राजापत्यागायत्री**॥

आठ योगांग व वसु, नवद्वार, दस धर्मलक्षण, एकादश रुद्र

अ॒ष्टर्चेभ्य॒ः स्वाहा॑॥ ५॥ **न॒वर्चेभ्य॒ः स्वाहा॑**॥ ६॥

द॒श॒र्चेभ्य॒ः स्वाहा॑॥ ७॥ **एका॑द॒श॒र्चेभ्य॒ः स्वाहा॑**॥ ८॥

१. **अष्टर्चेभ्यः**=योग के आठ अंगों अथवा शरीरस्थ आठ चक्रों का स्तवन करनेवाले व आठ वसुओं का प्रतिपादन करनेवाले मन्त्रों के लिए हम **स्वाहा**=प्रशंसात्मक शब्द कहें। इनके अध्ययन से आठों योगाङ्गों व आठों वसुओं को समझें। २. **नवर्चेभ्यः स्वाहा**=(अष्टाचक्रा नवद्वारा) इस शरीररूप देवपुरी के नव द्वारों का स्तवन करनेवाले मन्त्रों के लिए हम शुभ शब्द कहते हैं। इनके अध्ययन से इनको उत्तम बनाने की प्रेरणा लेते हैं। ३. **दशर्चेभ्यः स्वाहा**= धर्म के दश लक्षणों (धृतिः क्षमा दमोऽस्तेयं शौचमिन्द्रियनिग्रहः। धीर्विद्या सत्यमक्रोधः) के प्रतिपादक मन्त्रों के लिए हम शुभ शब्द कहते हैं। इनके अध्ययन से इन दश लक्षणों को समझकर इन्हें अपनाने के लिए यत्नशील होते हैं। ४. **एकादशर्चेभ्यः स्वाहा**=११ रुद्रों (दश प्राण+जीवात्मा) के प्रतिपादक मन्त्रों के लिए प्रशंसात्मक शब्द कहते हैं। इनके अध्ययन से इन रुद्रों की शक्ति के वर्धन के लिए यत्नशील होते हैं।

भावार्थ—योग के आठ अंगों, शरीर के नवद्वारों, धर्म के दश लक्षणों व एकादश रुद्रों को समझकर इनको अपनाने व शक्तिशाली बनाने का यत्न करते हुए हम अपने जीवनों को प्रशस्त बनाते हैं।

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**मन्त्रोक्ताः**॥ छन्दः—९ **दैवीजगती, १०-१२ दैवीपङ्क्तिः**॥

'द्वादश आदित्य, दश यम-नियम+शरीर, मन, बुद्धि, चौदह विद्याएँ, १५ गन्ध

द्वा॒द॒श॒र्चेभ्य॒ः स्वाहा॑॥ ९॥ **त्र॒यो॒द॒श॒र्चेभ्य॒ः स्वाहा॑**॥ १०॥

च॒तु॒र्द॒श॒र्चेभ्य॒ः स्वाहा॑॥ ११॥ **प॒ञ्च॒द॒श॒र्चेभ्य॒ः स्वाहा॑**॥ १२॥

१. **द्वादशर्चेभ्यः स्वाहा**=बारह आदित्यों (चैत्र आदि १२ मासों) का स्तवन व प्रतिपादन करनेवाले मन्त्रों के लिए हम प्रशंसात्मक शब्द कहते हैं। इनके अध्ययन से इन बारह मासों के अनुरूप आहार-विहार को अपनाते हुए आदित्यसम दीप्त-जीवनवाले बनते हैं। २. **त्रयोदशर्चेभ्यः स्वाहा**=पाँच यमों (अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह) तथा पाँच नियमों (शौच, सन्तोष, तप, स्वाध्याय, ईश्वरप्रणिधान) और उनके पालन से स्वस्थ होनेवाले 'शरीर, मन व बुद्धि' का स्तवन करनेवाले मन्त्रों के लिए हम प्रशंसात्मक शब्द कहते हैं और यम-नियमों का पालन करते हुए हम त्रिविध स्वस्थ्य को प्राप्त करते हैं। ३. **चतुर्दशर्चेभ्यः स्वाहा**=चतुर्दश विद्याओं का (षडङ्गमिश्रिता वेदा धर्मशास्त्रां पुराणकम्। मीमांसा तर्कमपि च एता विद्याश्चतुर्दश) शंसन करनेवाले मन्त्रों का शंसन करते हुए हम इन चौदह विद्याओं को प्राप्त करने का प्रयत्न करते हैं। ४. **पञ्चदशर्चेभ्यः स्वाहा**=द्विविधगन्ध (सुरभि-असुरभि) षड् रस (कषाय, मधुर, लवण, कटु, तिक्त, अम्ल), सप्तवर्ण (सूर्य की सात रंग की किरणें)—इन पन्द्रह का वर्णन

करनेवाली ऋचाओं के लिए हम प्रशंसात्मक शब्द कहते हैं और इनका यथायोग करते हुए स्वस्थ बनते हैं।

भावार्थ—हम बारह आदित्यों को समझें। दश यम-नियमों व उनसे स्वस्थ बननेवाले शरीर, मन व बुद्धि को समझें। चौदह विद्याओं को जानने के लिए यत्नशील हों और 'द्विविध गन्ध, षड् रसों व सप्त वर्णों को समझकर' उनका ठीक प्रयोग करनेवाले बनें।

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**मन्त्रोक्ताः**॥ छन्दः—**१३ दैवीजगती, १४-१६ प्राजापत्यागायत्री, १७ दैवीपङ्क्तिः**॥

षोडश कलाएँ, १७ तत्त्वों का सूक्ष्मशरीर, अष्टादश ऋत्विज्

षोड॒श॒र्चेभ्यः स्वाहा॥ १३॥ **स॒प्त॒द॒श॒र्चेभ्यः स्वाहा**॥ १४॥
अ॒ष्टा॒द॒श॒र्चेभ्यः स्वाहा॥ १५॥ **एकोन॒विं॒श॒तिः स्वाहा**॥ १६॥
विं॒श॒तिः स्वाहा॥ १७॥

१. **षोडशर्चेभ्यः स्वाहा**=सोलह कलाओंवाले षोडशी पुरुष की सोलह कलाओं का शंसन करनेवाले मन्त्रों के लिए हम प्रशंसात्मक शब्द कहते हैं और इनके अध्ययन से इन सोलह कलाओं को समझने का प्रयत्न करते हैं। (प्राण, श्रद्धा, पञ्चभूतात्मक शरीर, इन्द्रियाँ, मन, अन्न, वीर्य, तप, मन्त्र, कर्म, लोक, नाम)। ३. **सप्तदशर्चेभ्यः स्वाहा**='दश इन्द्रियाँ—पाँच प्राण, मन व बुद्धि' से बने हुए सत्रह तत्त्वोंवाले सूक्ष्मशरीर का वर्णन करनेवाले मन्त्रों के लिए हम शंसन करते हैं। इनके अध्ययन से इस सूक्ष्मशरीर के महत्त्व को समझकर इसकी उन्नति के लिए यत्नशील होते हैं। ३. **अष्टादशर्चेभ्यः स्वाहा**='सोलह ऋत्विजों तथा यजमान व यजमान-पत्नी' इन अठारह से चलनेवाले यज्ञों का शंसन करनेवाले मन्त्रों का हम शंसन करते हैं। इनके अध्ययन से इन यज्ञों को जानकर इन्हें अपनाते हैं। ४. **एकोनविंशतिः**=जागरित व स्वप्नस्थान में १९ मुखोंवाला (एकोनविंशतिमुखः=दश इन्द्रियाँ, पञ्च प्राण, मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार) मैं 'एकोनविंशति' **स्वाहा**=इन मन्त्रों के प्रति अपने को अर्पित करता हूँ। इन सब मुखों से इन्हीं के अध्ययन के लिए यत्नशील होता हूँ। ५. **विंशतिः**=पञ्चस्थूलभूत+पञ्चसूक्ष्मभूत+पञ्च ज्ञानेन्द्रियाँ+पञ्च कर्मेन्द्रियोंवाला—बीस तत्त्वों का पुतला मैं **स्वाहा**=इन मन्त्रों के प्रति अपने को अर्पित करता हूँ।

भावार्थ—मैं षोडशी पुरुष की सोलह कलाओं को, सूक्ष्मशरीर के १७ तत्त्वों को तथा १८ व्यक्तियों से साध्य यज्ञों का ज्ञान प्राप्त करता हूँ। मैं अपने १९ मुखों से इन ऋचाओं का अध्ययन करता हूँ। बीस तत्त्वोंवाला मैं इन मन्त्रों के प्रति अपने को अर्पित करता हूँ।

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**मन्त्रोक्ताः**॥ छन्दः—**१८, २२ दैवीजगती, १९, २१ दैवीपङ्क्तिः, २० दैवीत्रिष्टुप्**॥

अज्ञान विध्वंस व प्रभु-दर्शन

म॒ह॒त्का॒ण्डा॒य॒ स्वाहा॥ १८॥ **तृ॒चेभ्यः स्वाहा**॥ १९॥
एक॒र्चेभ्यः स्वाहा॥ २०॥ **क्षु॒द्रेभ्यः स्वाहा**॥ २१॥
एका॒नृ॒चेभ्यः स्वाहा॥ २२॥

१. (कडि भेदने संरक्षणे च) **महत्काण्डाय**=महान् अविद्या का भेदन करनेवाले व हमारा संरक्षण करनेवाले वेदज्ञान के लिए **स्वाहा**=मैं अपना अर्पण करता हूँ। २. **तृचेभ्यः**='जीव, प्रकृति, परमात्मा' अथवा 'ज्ञान, कर्म, उपासना' तीनों का प्रतिपादन करनेवाले इन मन्त्रों के लिए

स्वाहा=अपना अर्पण करता हूँ। ३. **एकर्चेभ्यः**=उस एक अद्वितीय प्रभु की महिमा का स्तवन करनेवाले मन्त्रों के लिए **स्वाहा**=मैं अपना अर्पण करता हूँ। उनके पढ़ने के लिए यत्नशील होता हूँ। (क्षुद्र् संपेषणे) **क्षुद्रेभ्यः**=अविद्यान्धकार का संपेषण करनेवाले इन वेदमन्त्रों के लिए **स्वाहा**=मैं अपना अर्पण करता हूँ। ५. **एकानृचेभ्यः स्वाहा**=(नास्ति ऋक्—स्तुत्याविद्याः—यस्य सकाशात् सः 'अनृच') उस ब्रह्मविद्या का वर्णन करनेवाली अनुत्तम (सर्वोत्तम) ऋचाओं के लिए मैं अपने को अर्पित करता हूँ।

भावार्थ—अज्ञान के विध्वंसक वेदमन्त्रों का अध्ययन करते हुए हम उस अद्वितीय प्रभु को जानने के लिए यत्नशील होते हैं।

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**मन्त्रोक्ताः**॥ छन्दः—**२३ दैवीत्रिष्टुप्, २४-२५ दैवीपङ्क्तिः, २६ दैवीजगती**॥

सूर्य-व्रात्य-प्राजापत्य

रोहितेभ्यः स्वाहा॥ २३॥ **सूर्याभ्यां स्वाहा**॥ २४॥
व्रात्याभ्यां स्वाहा॥ २५॥ **प्राजापत्याभ्यां स्वाहा**॥ २६॥

१. (रोहयति इति) **रोहितेभ्यः**=हमारा उत्थान करनेवाले इन वेदमन्त्रों के लिए **स्वाहा**=मैं अपना अर्पण करता हूँ। २. **सूर्याभ्यां स्वाहा**=वेद से प्रेरणा प्राप्त करके सूर्य की भाँति निरन्तर गतिशील (सरति) पति-पत्नी के लिए हम शुभ शब्द कहते हैं। उनका प्रशंसन करते हैं। हम भी उनसे अपना जीवन उन-जैसा बनाने की प्रेरणा लेते हैं। ३. **व्रात्याभ्याम्**=व्रतमय जीवनवाले पति-पत्नी के लिए हम **स्वाहा**=प्रशंसात्मक शब्द कहते हैं। हम भी उनकी भाँति व्रती जीवनवाले होते हैं। ४. **प्राजापत्याभ्याम्**=सन्तानों का उत्तम रक्षण करनेवाले इन पति-पत्नी के लिए **स्वाहा**= हम प्रशंसात्मक शब्द कहते हैं और उनसे स्वयं भी सन्तानों के सम्यक् रक्षण की प्रेरणा लेते हैं।

भावार्थ—उन्नति के साधनभूत वेद-मन्त्रों का अध्ययन करते हुए हम निरन्तर गतिशील (सूर्य) व्रतमय जीवनवाले (व्रात्य) व सन्तानों का सम्यक् रक्षण करनेवाले (प्राजापत्य) बनते हैं।

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**मन्त्रोक्ताः**॥ छन्दः—**२७ दैवीत्रिष्टुप्, २८दैवीजगती, २९ दैवीपङ्क्तिः**॥

विषासहि-मंगलिक-ब्रह्मा

विषासह्यै स्वाहा॥ २७॥
मङ्गलिकेभ्यः स्वाहा॥ २८॥ **ब्रह्मणे स्वाहा**॥ २९॥

१. **विषासह्यै**=वेदज्ञान द्वारा सब शत्रुओं का पराभव करनेवाली इस गृहिणी के लिए हम **स्वाहा**=प्रशंसात्मक शब्द कहते हैं। इससे सब गृहिणियों को 'विषासहि' बनने की प्रेरणा प्राप्त होती है। २. **मंगलिकेभ्यः स्वाहा**=वेदज्ञान द्वारा सदा यज्ञ आदि मंगल कार्यों को करनेवाले पुरुषों के लिए हम प्रशंसात्मक शब्द कहते हैं। इससे सभी को इन मंगल कार्यों को करने की प्रवृत्ति प्राप्त होती है। ३. अन्ततः हम **ब्रह्मणे**=इन चारों वेदों का ज्ञान प्राप्त करनेवाले सर्वोत्तम सात्त्विक पुरुष के लिए शुभ शब्द कहते हैं और स्वयं ऐसा बनने का ही अपना लक्ष्य बनाते हैं।

भावार्थ—वेदज्ञान से हम शत्रुओं का मर्षण करनेवाले, मंगल कार्यों को करनेवाले व सर्वोत्तम सात्त्विक स्थिति की ओर बढ़नेवाले बनते हैं।

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**मन्त्रोक्ताः**॥ छन्दः—**चतुष्पदात्रिष्टुप्**॥

ब्रह्मा

ब्रह्मज्येष्ठा संभृता वीर्या ∫णि ब्रह्माग्रे ज्येष्ठं दिवमा ततान।
भूतानां ब्रह्मा प्रथमोत जज्ञे तेनार्हति ब्रह्मणा स्पर्धितुं कः॥ ३०॥

१. व्याख्या १९.२२.२१ पर द्रष्टव्य है।

२४. [चतुर्विंशं सूक्तम्]

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**ब्रह्मणस्पतिः**॥ छन्दः—**अनुष्टुप्**॥

देव—देव का धारण—आत्मशासन

येन देवं सवितारं परि देवा अधारयन्।
तेनेमं ब्रह्मणस्पते परि राष्ट्रं धत्तन॥ १॥

१. इस सूक्त का देवता 'ब्रह्मणस्पति' है—ज्ञान का रक्षक। यह ज्ञान हमें अपने पर शासन करने के योग्य बनाता है। इसप्रकार इस ज्ञान को यहाँ 'वासः' कहा गया है, चूँकि यह हमें आच्छादित करता हुआ पापों से बचाता है। इसी से अन्ततः देवपुरुष प्रभु को अपने हृदयों में धारण करते हैं। **येन**=जिस ज्ञान से **देवाः**=देववृत्ति के व्यक्ति उस **सवितारम्**=सर्वोत्पादक—सर्वप्रेरक **देवम्**=प्रकाशमय प्रभु को **परि अधारयन्**=समन्तात् धारण करते हैं। ज्ञान ही वस्तुतः उन्हें देव बनाता है। देव बनकर वे महादेव के समीप होते चलते हैं। अन्ततः वे हृदयों में प्रभु के प्रकाश को देखते हैं। २. हे **ब्रह्मणस्पते**=ज्ञान के स्वमिन् प्रभो! **तेन**=उस ज्ञान से **इमम्**=इस अपने उपासक को भी आप **राष्ट्राय**=इस शरीररूप राष्ट्र की उत्तमता के लिए—अपने पर शासन कर सकने के लिए—**परिधत्तन**=धारण कीजिए।

भावार्थ—ज्ञानरूप वस्त्र हमें पाप आदि से सुरक्षित करता हुआ देव बनाता है और अन्ततः प्रभु-दर्शन कराता है। इसको धारण करते हुए हम आत्मशासन के योग्य बनें।

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**मन्त्रोक्ताः**॥ छन्दः—**अनुष्टुप्**॥

प्रभु-धारण व बल-प्राप्ति

परीममिन्द्रमायुषे महे क्षत्राय धत्तन। यथैनं जरसे नयां ज्योक्क्षत्रेऽधि जागरत्॥ २॥

१. **आयुषे**=दीर्घजीवन के लिए तथा **महे क्षत्राय**=क्षतों से त्राण करनेवाले महान् बल के लिए **इमम्**=इस **इन्द्रम्**=सर्वशक्तिमान् प्रभु को **परिधत्तन**=अपने हृदयों में धारण करो। २. **यथा**=जिस प्रकार **एनम्**=इस पुरुष को—परमपुरुष प्रभु को—**जरसे**=वासनाओं को जीर्ण करनेवाली स्तुति के लिए **नयाम्**=प्राप्त करूँ, जिससे यह स्तोता **ज्योक्**=दीर्घकाल तक **क्षत्रे**=बल के विषय में **अधि जागरत्**=जागरित रहे—अप्रमत्त बना रहे।

भावार्थ—हम जितना-जितना प्रभु को धारण कर पाते हैं, उतना-उतना ही वासनाओं के विनाश के द्वारा बल को धारण करनेवाले बनते हैं।

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**मन्त्रोक्ताः**॥ छन्दः—**अनुष्टुप्**॥

प्रभु-धारण व ज्ञान-प्राप्ति

परीमं सोममायुषे महे श्रोत्राय धत्तन। यथैनं जरसे नयां ज्योक्श्रोत्रेऽधि जागरत्॥ ३॥

१. **इमं सोमम्**=इस सौम्य (शान्त) प्रभु को **आयुषे**=दीर्घजीवन के लिए तथा **महे श्रोत्राय**=महान् श्रवणीय ज्ञान के लिए **परिधत्तन**=अपने हृदयों में धारण करो। २. **यथा**=जिस प्रकार **एनम्**=इस

प्रभु को **जरसे**=वासनाओं को जीर्ण करनेवाली स्तुति के लिए **नयाम्**=प्राप्त करूँ, जिससे **ज्योक्**=दीर्घकाल तक **श्रोत्रे**=श्रवणीय ज्ञान के विषय में यह स्तोता **अधिजागरत्**=खूब जागरित रहे—अप्रमत्त रहे।

भावार्थ—हम जितना-जितना प्रभु का धारण करेंगे उतना-उतना ही वासना-विनाश द्वारा ज्ञान का धारण कर पाएँगे।

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**मन्त्रोक्ताः**॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्**॥

ज्ञानवस्त्रों का धारण

परि॑ धत्त ध॒त्त नो॒ वर्च॑सेमं ज॒रामृ॑त्यु॒ं कृणुत दी॒र्घमायु॑ः।
बृह॒स्पति॒ः प्राय॑च्छद्वा॒स ए॒तत्सोमा॑य॒ राज्ञे॒ परि॑धात॒वा उ॑॥ ४॥

१. हे देवो! आप **नः**=हमारे **इयम्**=इस व्यक्ति को **परिधत्तन**=ज्ञानरूप वस्त्र धारण कराओ और इसप्रकार इसे वासनाओं से ऊपर उठाकर **वर्चसा धत्त**=शक्ति के साथ धारण करो। इसके जीवन को आप शक्तिशाली बनाओ। इसे शक्ति-सम्पन्न बनाकर इसके लिए **जरामृत्युम्**=अत्यन्त वृद्धावस्था में मृत्युवाले **दीर्घमायुः**=दीर्घजीवन को **कृणुत**=करो। २. **बृहस्पतिः**=ज्ञान का स्वामी सबका आचार्य प्रभु **एतत् वासः**=इस ज्ञान-वस्त्र को **परिधातवा उ**=निश्चय से धारण करने के लिए **सोमाय**=सौम्य स्वभाववाले—विनीत **राज्ञे**=जितेन्द्रिय—इन्द्रियों के राजा—व्यवस्थित जीवनवाले विद्यार्थी के लिए **प्रायच्छत्**=देता है।

भावार्थ—देव हमें ज्ञान-वस्त्र को धारण कराके दीर्घजीवनवाला बनाएँ। ज्ञान का स्वामी आचार्य सौम्य व जितेन्द्रिय विद्यार्थी को ज्ञान देता है।

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**मन्त्रोक्ताः**॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्**॥

गृष्टी-रक्षण

ज॒रां सु ग॑च्छ॒ परि॑ धत्स्व॒ वासो॒ भवा॑ गृष्टी॒नामभिशस्तिपा उ॑।
श॒तं च॒ जीव॑ श॒रदः॑ पुरू॒ची र॒यश्च॒ पोष॒मुप॑संव्ययस्व॥ ५॥

१. हे मनुष्य! तू **जरां सुगच्छ**=जरावस्था तक सम्यक् चल—युवावस्था में ही तेरा अन्त न हो जाए। **वासः परिधत्स्व**=ज्ञान-वस्त्र को तू धारण कर और इसप्रकार **गृष्टीनाम्**=इन इन्द्रियरूप गौओं का तू **उ**=निश्चय से **अभिशस्तिपा भव**=हिंसन से रक्षण करनेवाला हो। ये इन्द्रिरूप गौएँ विषयरूप व्याघ्रों से हिंसित न हो जाएँ। ज्ञान की तलवार से तू इन व्याघ्रों का हिंसन कर २. **च**=और **पुरूचीः**=(पुरु अञ्च्) पूरण व पालक खूब ही गतिवाली **शतं शरदः**=सौ शरद् ऋतुओं तक तू **जीव**=जीनेवाला हो **च**=तथा **रायः पोषम्**=ज्ञान के पोषण को **उपसंव्ययस्व**=अपने जीवन में सीनेवाला बन (व्ये-to sew), तुझे पोषक धन की कभी कमी न हो।

भावार्थ—ज्ञान-वस्त्र को धारण करके हम दीर्घजीवनवाले बनें, इन्द्रियरूप गौओं को विषय-व्याघ्रों का शिकार न होने दें। गतिशील १०० शरद ऋतुओं तक जीएँ। पोषक धन को प्राप्त करें।

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**मन्त्रोक्ताः**॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्**॥

वापी-रक्षण

परी॒दं वासो॑ अधिथाः स्व॒स्तयेऽभू॑र्वापी॒नामभिशस्तिपा उ॑।
श॒तं च॒ जीव॑ श॒रदः॑ पुरू॒चीर्वसू॑नि चारु॒र्वि भ॑जासि॒ जीव॑न्॥ ६॥

१. हे मनुष्य! तू **इदं वासः**=इस ज्ञानवस्त्र को **परि अधिथाः**=सम्यक् धारण करनेवाला

बन—इससे तू चारों ओर से अपने को ढक ले। इसके धारण से तू **स्वस्तये अभूः**=कल्याण के लिए हो **उ**=और निश्चय से **वापीनाम्**=उत्तम गुणों के बीजों का वपन करनेवाली इन ज्ञानवाणियों का **अभिशस्तिपाः**=हिंसन से रक्षण करनेवाला हो। तू स्वाध्याय में कभी विच्छेद करनेवाला न बन २. **च**=और **पुरूचीः**=खूब ही गतिवाली **शतं शरदः**=सौ शरद् ऋतुओं तक तू **जीव**=जी और **जीवन्**=जीवन को धारण करता हुआ तू **चारुः**=चरणशील होता है—भक्षण की क्रियावाला होता है। तू जीने के लिए ही खाता है। विलास में धन का व्यय कभी नहीं करता। तू इन **वसूनि**=धनों को **विभजासि**=सबके प्रति विभक्त करनेवाला होता है—यज्ञों के द्वारा तू इसे सभी के प्रति विभक्त करता है। स्वयं यज्ञशेष का ही सेवन करता है।

भावार्थ—ज्ञानवस्त्र को धारण करके हम अपना रक्षण करते हुए कल्याण प्राप्त करें। ज्ञान-वाणियों का सदा रक्षण करते हुए उत्तम गुणों के बीजों को अपने में बोएँ। दीर्घकाल तक जीएँ। केवल शरीर-रक्षण के लिए भोजन करता हुआ तू धन को विभक्त कर।

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**मन्त्रोक्ताः**॥ छन्दः—**त्रिपदाऽऽर्षीगायत्री**॥

योगे-योगे तवस्तरम्

योगेयोगे तवस्तरं वाजेवाजे हवामहे। सखाय इन्द्रमूतये॥ ७॥

१. हम **सखायः**=उस प्रभु के सखा बनते हुए **इन्द्रम्**=उस परमैश्वर्यशाली सर्वशक्तिमान् प्रभु को **ऊतये**=रक्षण के लिए **वाजेवाजे**=प्रत्येक संग्राम में **हवामहे**=पुकारते हैं। २. उस प्रभु को हम पुकारते हैं जोकि **योगे-योगे**=प्रत्येक मेल के अवसर पर **तवस्तरम्**=हमारे बलों को बढ़ानेवाले हैं। जितना-जितना प्रभु से हमारा सम्पर्क बढ़ता है, उतना-उतना हमारा बल बढ़ता है और संग्रामों में हम वियजी बनते हैं।

भावार्थ—प्रभु हमारे रक्षक हैं। प्रभु-सम्पर्क से शक्ति का वर्धन होता है।

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**मन्त्रोक्ताः**॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्**॥

'हिरण्यवर्ण-अजर-सुवीर'

हिरण्यवर्णो अजरः सुवीरो जरामृत्युः प्रजया सं विशस्व।
तदग्निराह तदु सोम आह बृहस्पतिः सविता तदिन्द्रः॥ ८॥

१. 'प्रभु जीव को क्या कहते हैं?' इस प्रश्न का उत्तर देते हुए कहते हैं कि **हिरण्यवर्णः**=ज्योतिर्मय वर्णवाला—तेजस्वी—स्वर्ण के समान चमकता हुआ (तप्तकाञ्चनवर्णाभम्), **अजरः**=जिसकी शक्तियाँ जीर्ण नहीं हो गईं, **सुवीरः**=उत्तम वीर सन्तानोंवाला, **जरामृत्युः**=पूर्ण जरावस्था में मृत्यु को प्राप्त होनेवाला—युवावस्था में ही न चला जानेवाला तू **प्रजया संविशस्व**=प्रजा के साथ घर में निवास करनेवाला हो। २. **अग्निः**=अग्रणी प्रभु **तत् आह**=उस बात को ही कहते हैं **उ**=और **सोमः**=सौम्य (शान्त) प्रभु **तत् आह**=उस बात को कहते हैं। **बृहस्पतिः**=ज्ञान के स्वामी प्रभु, **सविता**=सर्वोत्पादक—सर्वप्रेरक प्रभु, **इन्द्रः**=सर्वशक्तिमान्, परमैश्वर्यशाली प्रभु **तत्**=उस बात को ही कहते हैं। अग्नि आदि नामों से प्रभु का स्मरण कराना इसलिए ही है कि हमें यह समझ में आ जाए कि 'हिरण्यवर्ण, अजर, सुवीरः' बनने का प्रकार यही है कि हम भी आगे बढ़ने की भावनावाले बनें (अग्नि), सौम्य (शान्त) स्वभाव हों, ज्ञान की रुचिवाले हों (बृहस्पति), निर्माणात्मक कार्यों में प्रवृत्त हों (सविता) और जितेन्द्रिय बनें (इन्द्र)।

भावार्थ—हमारा आदर्श यही हो कि हम 'हिरण्यवर्ण, अजर व सुवीर' बनें। प्रभु के अग्नि आदि नामों से उस-उस प्रेरणा के लेनेवाले बनें।

अग्नि आदि नामों से प्रेरणा लेकर ठीक मार्ग पर चलनेवाला यह व्यक्ति 'गोपथ' कहलाता है। गौएँ—वेदवाणी के मार्ग पर चलनेवाला। यह गोपथ ही अगले सूक्त का ऋषि है—

२५. [पञ्चविंशं सूक्तम्]

ऋषिः—**गोपथः**॥ देवता—**वाजी**॥ छन्दः—**अनुष्टुप्**॥

वाजी

अश्रान्तस्य त्वा मनसा युनज्मि प्रथमस्य च।
उत्कूलमुद्वहो भवोदुह्य प्रति धावतात्॥ १॥

१. मार्ग पर बढ़ता हुआ व्यक्ति लक्ष्य-स्थान पर पहुँचता ही है, अतः प्रभु कहते हैं कि हे जीव! **त्वा**=तुझे उस पुरुष के **मनसा**=मन से **युनज्मि**=युक्त करता हूँ जोकि **अश्रान्तस्य**=कभी थकता नहीं—ऊब नहीं जाता—मार्ग पर बढ़ता ही चलता है, **च**=और अतएव **प्रथमस्य**=प्रथम स्थान में स्थित होता है। प्रथम स्थान में स्थित होने के संकल्पवाले पुरुष के मन से मैं तुझे जोड़ता हूँ। तू अश्रान्तभाव से आगे बढ़ता ही चल। २. **उत्कूलम् उद्वहः**=जैसे नदी किनारों को भी लाँघकर उमड़ पड़ती है, उसी प्रकार तू सब विघ्नों को—रुकावटों को लाँघकर ऊपर उठनेवाला **भव**=हो। **उदुह्य**=अपने को सब विघ्न-बाधाओं से ऊपर उठाकर **प्रति धावतात्**=तू लक्ष्य स्थान की ओर वेग से बढ़नेवाला हो।

भावार्थ—हम अश्रान्त मन से प्रथम स्थान पर पहुँचने के लिए आगे बढ़ते चलें। सब विघ्नों को पार करके लक्ष्य स्थान की ओर बढ़ें।

किसी भी विघ्न-बाधा से न रुकनेवाला 'अथर्वा' अगले सूक्त का ऋषि है—

२६. [षड्विंशं सूक्तम्]

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**अग्निः, हिरण्यम्**॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्**॥

हिरण्य-धारण व दीर्घजीवन

अग्नेः प्रजातं परि यद्धिरण्यममृतं दध्रे अधि मर्त्येषु।
य एनद्वेद स इदेनमर्हति जरामृत्युर्भवति यो बिभर्ति॥ १॥

१. शरीर में वैश्वानर अग्नि (जाठराग्नि) भोजन के परिपाक के द्वारा रस, रुधिर आदि धातुओं का निर्माण करती है। इस निर्माण में अन्तिम धातु 'वीर्य' है। यही 'हिरण्य' है—हित-रमणीय है। यही 'अमृत' है। रोगों से आक्रान्त न होने देनेवाला है। प्रभु ने **अग्नेः प्रजातम्**=वैश्वानर अग्नि से उत्पन्न हुआ-हुआ **यत्**=जो **हिरण्यम्**=हित-रमणीय **अमृतम्**=रोगों से आक्रान्त न होने देनेवाला वीर्य है, उसको **अधिमर्त्येषु**=इन मानव-शरीरों में **परिदध्रे**=समन्तात् स्थापित किया है। २. **यः**=जो पुरुष **एनत् वेद**=इस बात को समझ लेता है, **सः**=वह **इत्**=निश्चय से **एनम् अर्हति**=इस हिरण्य को धारण करने के योग्य होता है। वह इस हिरण्य को धारण करनेवाला बनता है और **यः बिभर्ति**=जो भी इसे धारण करता है, वह **जरामृत्युः भवति**=पूर्ण जरावस्था तक पहुँचकर शरीर को छोड़नेवाला होता है। दीर्घजीवनवाला होता है।

भावार्थ—प्रभु ने ऐसी व्यवस्था की है कि शरीर में 'वैश्वानर अग्नि' द्वारा रस-रुधिर आदि के क्रम से हिरण्य (वीर्य) की उत्पत्ति होती है। यही अमृत है। जो इसका धारण करता है वह नीरोग होकर दीर्घजीवन प्राप्त करता है।

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**अग्निः, हिरण्यम्**॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्**॥

प्रजावन्तः मनवः पूर्वे

यद्धिरण्यं सूर्येण सुवर्ण प्रजावन्तो मनवः पूर्व ईषिरे।
तत्त्वा चन्द्रं वर्चसा सं सृजत्यायुष्मान्भवति यो बिभर्ति॥ २॥

१. **यत्**=जो **हिरण्यम्**=हित-रमणीय वीर्य है, वह **सूर्येण सुवर्णम्**=सूर्य से उत्तम वर्णवाला है। शरीर में सूर्य की भाँति चमकता है। अथवा सूर्य के सम्पर्क में जीवन बिताने से उत्तम वर्णवाला होता है। जो भी इस हिरण्य को **ईषिरे**=प्राप्त होते हैं (ईष गतौ) वे **प्रजावन्तः**=उत्तम सन्तानोंवाले, **मनवः**=विचारशील—ज्ञानी व **पूर्वे**=अपना पालन व पूरण करनेवाले होते हैं। २. हे हिरण्य! **तत् चन्द्रम्**=उस आह्लाद के कारणभूत **त्वा**=तुझको **यः बिभर्ति**=जो धारण करता है, वह **वर्चसा संसृजति**=वर्चस् (Vitality) के साथ अपना संसर्ग करता है और **आयुष्मान् भवति**=प्रशस्त दीर्घ जीवनवाला होता है।

भावार्थ—वीर्य-रक्षण द्वारा हम उत्तम सन्तानवाले—विचारशील व अपना पालन व पूरण करनेवाले बनते हैं। यह सुरक्षित वीर्य हमें प्राणशक्ति-सम्पन्न व प्रशस्त दीर्घ जीवनवाला बनाता है।

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**अग्निः, हिरण्यम्**॥ छन्दः—**अनुष्टुप्**॥

आयु-वर्चस्-ओजस्-बल

आयुषे त्वा वर्चसे त्वौजसे च बलाय च।
यथा हिरण्यतेजसा विभासासि जनाँ अनु॥ ३॥

१. गतमन्त्र में वर्णित हिरण्य (वीर्य) **त्वा**=तुझे **आयुषे**=दीर्घजीवन के लिए प्राप्त कराए **च**=और **वर्चसे**=वर्चस् के लिए प्राप्त कराए। इस वर्चस् द्वारा ही नीरोग व दीर्घजीवन प्राप्त होगा। यह हिरण्य **त्वा**=तुझे **ओजसे**=ओज के लिए **च**=तथा **बलाय**=बल के लिए प्राप्त कराए। ओज मन की वह शक्ति हैं जोकि अच्छाइयों का वर्धन करती है और बल बुराइयों का विनाश करनेवाली शक्ति है। २. तू **यथा हिरण्यतेजसा**=इस हिरण्य के तेज के अनुपात में—जितना-जितना वीर्य का रक्षण करता है उतना-उतना, **जनान् अनु विभासासि**=जनों का लक्ष्य करके तू दीप्तिवाला होता है—मनुष्यों में तू चमक उठता है। सुरक्षित वीर्य सब शक्तियों को बढ़ाता है और हमारी श्री की वृद्धि का कारण बनता है।

भावार्थ—वीर्यरक्षण द्वारा हम 'आयु, वर्चस्, ओज व बल' को प्राप्त करें। यह हमें समाज में दीप्त जीवनवाला बनाए।

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**अग्निः, हिरण्यम्**॥ छन्दः—**पथ्यापङ्क्तिः**॥

आयुष्यं-वर्चस्यम्

यद्वेद राजा वरुणो वेद देवो बृहस्पतिः।
इन्द्रो यद् वृत्रहा वेद तत्ते आयुष्यं भुवत्तत्ते वर्चस्यं भुवत्॥ ४॥

१. **यत्**=जिस हिरण्य को—वीर्य को **राजा**=व्यवस्थित (regulated) जीवनवाला **वरुणः**=द्वेष का निवारण करनेवाला श्रेष्ठ पुरुष **वेद**=जानता है, जिस हिरण्य को **देवः**=दिव्यगुणसम्पन्न **बृहस्पतिः**=ज्ञानी पुरुष **वेद**=जानता है। २. **यत्**=जिस हिरण्य को **वृत्रहा**=वासना को विनष्ट करनेवाला **इन्द्रः**=जितेन्द्रिय पुरुष **वेद**=जानता है **तत्**=वह हिरण्य **ते**=तेरे लिए **आयुष्यम्**=प्रशस्त आयु को देनेवाला **भुवत्**=हो। **तत्**=वह हिरण्य **ते**=तेरे लिए **वर्चस्यं भुवत्**=उत्तम वर्चस् को—

रोगनिवारकशक्ति को देनेवाला **भुवत्**=हो।

भावार्थ—हम 'निर्द्वेष, ज्ञानी व जितेन्द्रिय' बनकर वीर्य का रक्षण करें। यह सुरक्षित वीर्य हमारे लिए 'आयुष्य व वर्चस्य' हो—हमें दीर्घजीवन व रोगप्रतिबन्धकशक्ति प्राप्त कराए।

वीर्य का रक्षण करता हुआ यह अपने को ज्ञानाग्नि में परिपक्व 'भृगु' (भ्रस्ज् पाके) बनाता है और शरीर में रस-(लोच-लचक)-वाला 'अंगिराः' बनता है। यही अगले सूक्त का ऋषि है—

२७. [सप्तविंशं सूक्तम्]

ऋषिः—**भृग्वङ्गिराः**॥ देवता—**त्रिवृत्**॥ छन्दः—**अनुष्टुप्**॥

ऋषभ, वृषा, वायु, इन्द्र

गोभिष्ट्वा पात्वृषभो वृषा त्वा पातु वाजिभिः।
वायुष्ट्वा ब्रह्मणा पात्विन्द्रस्त्वा पात्विन्द्रियैः॥ १॥

१. (ऋष दर्शने) **ऋषभः**=वह सर्वद्रष्टा प्रभु **त्वा**=तुझे **गोभिः**=उत्तम गौवों के द्वारा **पातु**=रक्षित करे। इन गौओं का दूध हमारी बुद्धियों का वर्धन करके हमारे ज्ञान को भी बढ़ाता है। **वृषा**=वह शक्तिशाली प्रभु **त्वा**=तुझे **वाजिभिः**=उत्तम घोड़ों के द्वारा **पातु**=रक्षित करे। ये घोड़े उचित व्यायामादि का साधन बनते हुए हमारी बल-वृद्धि का हेतु होते हैं। २. **वायुः**=(वा गति=ज्ञान) ज्ञान के द्वारा सब बुराइयों का विध्वंस करनेवाला वह प्रभु **त्वा**=तुझे **ब्रह्मणा**=ज्ञान के द्वारा **पातु**=रक्षित करे। **इन्द्रः**=वह सर्वशक्तिमान् परमैश्वर्यशाली प्रभु **त्वा**=तुझे **इन्द्रियैः**=उत्तम इन्द्रियों के द्वारा **पातु**=रक्षित करे।

भावार्थ—प्रभु हमें उत्तम गौवें व घोड़े, ज्ञान तथा इन्द्रियों को प्राप्त कराके सुरक्षित करें।

ऋषिः—**भृग्वङ्गिराः**॥ देवता—**त्रिवृत्**॥ छन्दः—**अनुष्टुप्**॥

सोम-सूर्य-चन्द्र-वात

सोमस्त्वा पात्वोषधीभिर्नक्षत्रैः पातु सूर्यः।
माद्भ्यस्त्वा चन्द्रो वृत्रहा वातः प्राणेन रक्षतु॥ २॥

१. **सोमः**=वह सौम्य प्रभु **त्वा**=तुझे **ओषधीभिः**=दोषों का दहन करनेवाली ओषधियों के द्वारा **पातु**=रक्षित करे। हम सौम्य वानस्पतिक भोजनों द्वारा दीर्घजीवन प्राप्त करें। 'आग्नेय' पदार्थ रोगों के भेषज हैं, नकि भोजन। **सूर्यः**=सूर्यसम देदीप्यमान प्रभु **नक्षत्रैः**=नक्षत्रों के द्वारा हमारा **पातु**=रक्षण करें। सब नक्षत्रों की हमारे साथ अनुकूलता हो 'सर्वं शान्तिः'। २. वह **वृत्रहा**=सब वासनाओं का विनाश करनेवाला **चन्द्रः**=आह्लादमय प्रभु **माद्भ्यः**=मासों के द्वारा—(मस्=to measure) प्रमाणों के द्वारा—तत्त्वज्ञान को प्राप्त कराने के द्वारा **त्वा**=तेरी **रक्षतु**=रक्षा करें तथा **वातः**=निरन्तर गतिशील प्रभु **प्राणेन**=प्राणशक्ति के द्वारा हमारा रक्षण करें।

भावार्थ—प्रभु हमें उत्तम ओषधियों, नक्षत्रों, तत्त्वज्ञान तथा प्राणशक्ति के द्वारा रक्षित करें।

ऋषिः—**भृग्वङ्गिराः**॥ देवता—**त्रिवृत्**॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्**॥

त्रिवृता त्रिवृद्भिः (रक्षन्तु)

तिस्रो दिवस्तिस्रः पृथिवीस्त्रीण्यन्तरिक्षाणि चतुरः समुद्रान्।
त्रिवृतं स्तोमं त्रिवृत आप आहुस्तास्त्वा रक्षन्तु त्रिवृता त्रिवृद्भिः॥ ३॥

१. **दिवः**=द्युलोकों को **तिस्रः**=उत्तम, अधम व मध्यम भेद से तीन प्रकार का **आहुः**=कहते

हैं। **पृथिवीः**=पृथिवियों को भी **तिस्रः**=उत्तम, मध्यम व अधमभेद से **तिस्रः**=तीन प्रकार का कहते हैं। इसी प्रकार **अन्तरिक्षाणि**=अन्तरिक्षों को भी **त्रीणि**=तीन प्रकार का कहते हैं। २. **समुद्रान्** (रायः समुद्राँश्चतुरः०)=ज्ञान के समुद्रभूत इन वेदों को **चतुरः**=चार कहते हैं (ऋग्, यजुः, साम, अथर्व)। **स्तोमम्**=स्तुतिसमूह को **त्रिवृतम्**=तीन में होनेवाला कहते हैं। प्रकृति के पदार्थों का गुणवर्णन ही प्रकृतिस्तवन है। जीव के कर्त्तव्यों का उपदेश जीवस्तवन है। प्रभु की उपासना का प्रतिपादन प्रभु-स्तवन है। **आपः**=(आपो नारा इति प्रोक्ताः) मानव-सन्तानों को भी **त्रिवृतः**='ज्ञान, कर्म व उपासना' इन तीन में चलनेवाला कहते हैं। कई मनुष्य ज्ञानप्रधान होते हैं, कई कर्मप्रधान और कई भक्तिप्रधान। **ताः**=वे सब **त्रिवृता**=तीन-तीन रूपों में होते हुए **त्रिवृद्भिः**=(**त्रिषु वर्तन्ते**) शरीर, मन व बुद्धि पर प्रभाव डालनेवाले कर्म, भक्ति व ज्ञान के द्वारा **रक्षन्तु**=रक्षित करें। 'कर्म' शरीर को, 'भक्ति' मन को तथा 'ज्ञान' मस्तिष्क को सुन्दर बनाए।

भावार्थ—हम 'ज्ञान, कर्म व उपासना' तीनों का अपने में समन्वय करते हुए 'कर्म' से पृथिवीलोक का, 'भक्ति' से अन्तरिक्षलोक का तथा 'ज्ञान' से द्युलोक का विजय करें।

ऋषिः—**भृग्वङ्गिराः**॥ देवता—**त्रिवृत्**॥ छन्दः—**अनुष्टुप्**॥

गोप्ता

त्रीन्नाकांस्त्रीन्त्समुद्रांस्त्रीन्ब्रध्नांस्त्रीन्वैष्टपान्।
त्रीन्मातरिश्वनस्त्रीन्त्सूर्यान्गोप्तॄन्कल्पयामि ते॥ ४॥

१. **त्रीन् नाकान्**=तीन मोक्षलोकों को (सूचना—मोक्ष में ब्रह्म के साथ विचरते हुए जीवों में भी 'जिसका ज्ञान जितना अधिक होता है उसे उतना ही आनन्द अधिक होता है' इस आचार्यवाक्य के अनुसार मोक्ष भी उत्तम, मध्यम, अधम स्थिति के अनुसार तीन भागों में विभक्त है), **त्रीन् समुद्रान्**=तीन 'ऋक्, यजुः, साम' मन्त्ररूप ज्ञान समुद्रों को, **त्रीन् ब्रध्नान्**=(ब्रध्न=महान्) 'मन, बुद्धि, अहंकार' रूप तीन महान् तत्त्वों को, **त्रीन् वैष्टपान्**=पृथिवी, अन्तरिक्ष व द्युलोक-रूप तीन लोकों को **ते**=तेरा **गोप्तॄन्**=रक्षक **कल्पयामि**=बनाता हूँ। मोक्षलोकों का ध्यान भी मुझे वासना में फँसने से बचाता है। २. **त्रीन् मातरिश्वनः**='प्राण, अपान, व्यान'-(भूः, भुवः, स्वः) रूप तीन वायुओं को तथा **त्रीन् सूर्यान्**=प्रातः, मध्याह्न व सायंकाल के भेदरूप सूर्यों को तेरा रक्षक बनाता हूँ। प्राणसाधना व सूर्य का सेवन मानस व शारीर स्वास्थ्य को प्राप्त कराते हैं।

भावार्थ—'मोक्ष-प्राप्ति का ध्यान, वेद का अध्ययन 'मन, बुद्धि व अहंकार' के महत्त्व को समझना, त्रिलोकी के स्वरूप का चिन्तन, प्राणसाधना व सूर्य-सेवन' ये सब हमारे मानस व शारीर स्वास्थ्य के रक्षक बनते हैं।

ऋषिः—**भृग्वङ्गिराः**॥ देवता—**त्रिवृत्**॥ छन्दः—**अनुष्टुप्**॥

'अग्नि, चन्द्र, सूर्य'

घृतेन त्वा समुक्षाम्यग्र आज्येन वर्धयन्।
अग्नेश्चन्द्रस्य सूर्यस्य मा प्राणं मायिनो दभन्॥ ५॥

१. हे **अग्ने**=अग्रणी प्रभो! **आज्येन** (अञ्ज् कान्तौ) आपकी प्राप्ति की प्रबल कामना से आपको अपने हृदयदेश में **वर्धयन्**=बढ़ाता हुआ मैं **त्वा**=आपको **घृतेन**=मलों के क्षरण व ज्ञानदीप्ति से **समुक्षामि**=अपने हृदय में सम्यक् सिक्त करता हूँ। मेरा हृदय आपकी भावना से ओतप्रोत हो जाता है। २. ऐसा होने पर मैं शरीर में शक्ति की अग्निवाला, मन में आह्लादवाला (चन्द्र) तथा मस्तिष्क में दीप्त ज्ञान के सूर्यवाला बनता हूँ। इस **अग्नेः चन्द्रस्य सूर्यस्य**=शरीर

में अग्नि, मन में चन्द्र तथा मस्तिष्क में सूर्य के **प्राणम्**=प्राण को **मायिनः**=मायाविनी वृत्तियाँ—राक्षसीभाव **मा दभन्**=मत हिंसित करें। जब हम अग्नि, चन्द्र व सूर्य बनते हैं तब आसुरभावों से आक्रान्त नहीं होते।

भावार्थ—हम प्रभु-प्राप्ति की प्रबल कामना, मल-क्षरण व ज्ञानदीप्ति से प्रभु को हृदयों में आसीन करें। तब हम शरीर में 'अग्नि', मन में 'चन्द्र' तथा मस्तिष्क में 'सूर्य' बनेंगे। ऐसा होने पर हम आसुरभावों से आक्रान्त नहीं होंगे।

ऋषिः—**भृग्वङ्गिराः**॥ देवता—**त्रिवृत्**॥ छन्दः—**अनुष्टुप्**॥

भ्राजन्तो विश्ववेदसो देवः

मा वः प्राणं मा वोऽपानं मा हरो मायिनो दभन्।
भ्राजन्तो विश्ववेदसो देवा दैव्येन धावत॥ ६॥

१. **वः**=तुम्हारी **प्राणम्**=प्राणशक्ति को **मायिनः**=आसुर-(मायावी)-भाव **मा दभन्**=मत हिंसित करें। **वः**=तुम्हारी **अपानम्**=अपानशक्ति को **मा**=ये आसुरभाव मत हिंसित करें तथा **हरः**=तुम्हारे शत्रुबलापहारक तेज को **मा**=ये आसुरभाव मत हिंसित करें। आसुरी वृत्तियों से प्राणापान व तेज का विनाश होता है। २. आसुरी वृत्तियों में न फँसकर प्राणापान की शक्ति व तेजस्विता से **भ्राजन्तः**=चमकते हुए **विश्ववेदसः**=सब ज्ञानों व धनों को प्राप्त करनेवाले (विद् ज्ञाने, विद् लाभे) **देवाः**=देववृत्ति के पुरुषो! तुम **दैव्येन धावत**=उस देव (प्रभु) के प्राप्त करनेवाले यज्ञादि उत्तम कर्मों से **धावत**=गतिशील बनते हुए अपने जीवनों को शुद्ध बना डालो (धावु गतिशुद्ध्योः)।

भावार्थ—हम आसुरभावों से ऊपर उठकर प्राणापान की शक्ति व तेज का अपने में रक्षण करें। तेजस्विता से दीप्त, ज्ञानी व देव बनकर हम देवोचित कार्यों को करते हुए अपने जीवनों को शुद्ध बना डालें।

ऋषिः—**भृग्वङ्गिराः**॥ देवता—**त्रिवृत्**॥ छन्दः—**अनुष्टुप्**॥

प्राण से 'अग्नि, वात, सूर्य'

प्राणेनाग्निं सं सृजति वातः प्राणेन संहितः।
प्राणेनं विश्वतोमुखं सूर्यं देवा अजनयन्॥ ७॥

१. प्रभु **प्राणेन**=इस प्राणशक्ति के द्वारा **अग्निम्**=शरीरस्थ वैश्वानर अग्नि को **संसृजति**=सम्यक् सृष्ट करते हैं। 'अहं वैश्वानरो भूत्वा प्राणिनां देहमाश्रितः। प्राणापानसमायुक्तः पचाम्यन्नं चतुर्विधम्'। प्राण से युक्त यह अग्नि भोजन का समुचित पाचन करता है। **प्राणेन**=प्राण से **वातः**=(वा गतौ) निरन्तर क्रियाशीलता का भाव हृदय में **संहितः**=सम्यक् धारण किया जाता है। प्राणशक्ति हमें क्रियाशील बनाती है। २. **देवाः**=देववृत्ति के पुरुष **प्राणेन**=प्राण से ही **विश्वतोमुखम्**=सब ओर मुखोंवाले **सूर्यम्**=ज्ञानसूर्य को **अजनयन्**=प्रादुर्भूत करते हैं। प्राणसाधना से ही ज्ञानदीप्ति प्राप्त होती है। यह ज्ञानदीप्ति सब पदार्थों का सम्यक् प्रकाश करने के कारण 'विश्वतोमुख' कही गई है।

भावार्थ—प्राणशक्ति के ठीक होने पर शरीररूप पृथिवी में 'अग्नि' देव, मनरूप अन्तरिक्ष में 'वायु' देव तथा मस्तिष्करूप द्युलोक में 'सूर्य' देव की स्थापना होती है। शरीर में शक्ति, हृदय में कर्मसंकल्प व मस्तिष्क में ज्ञान का निवास होता है।

ऋषिः—**भृग्वङ्गिराः**॥ देवता—**त्रिवृत्**॥ छन्दः—**अनुष्टुप्**॥

आयुः कृत्, आयुष्मान्, आत्मन्वान्

आयुषायुष्कृतां जीवायुष्माञ्जीव मा मृथाः।
प्राणेनात्मन्वतां जीव मा मृत्योरुदगा वशम्॥ ८॥

१. साधना के द्वारा **आयुः कृताम्**=आयुष्य का सम्पादन करनेवाले पुरुषों की **आयुषा**=आयु से **जीव**=तू जीनेवाला बन। **आयुष्मान्**=प्रशस्त आयुष्यवाला होकर **जीव**=जी। **मा मृथाः**=मर मत। हम साधना के द्वारा दीर्घजीवन का सम्पादन करें और प्रशस्त आयुष्यवाले बनें। २. **आत्मन्वताम्**=प्रशस्त मनवाले पुरुषों के **प्राणेन**=प्राण से **जीव**=तू जीवनवाला बन अथवा प्राणसाधना द्वारा प्रशस्त मनवाला होकर जीवन बिता। तुझमें प्रशस्त मन व प्राणशक्ति का समन्वय हो। तू **मृत्योः**=मृत्यु के **वशम्**=वश में **मा अगाः**=मत जा। मृत्यु तुझे अपने वशीभूत न कर ले।

भावार्थ—हम साधना के द्वारा दीर्घजीवी बनें। प्रशस्त जीवनवाले हों। प्राणसाधना द्वारा मन को निर्मल करके 'आत्मन्वान्' बनें।

ऋषिः—**भृग्वङ्गिराः**॥ देवता—**त्रिवृत्**॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्**॥

देवनिधि 'हिरण्य'

देवानां निहितं निधिं यमिन्द्रोऽन्वविन्दत्पथिभिर्देवयानैः।
आपो हिरण्यं जुगुपुस्त्रिवृद्भिस्तास्त्वा रक्षन्तु त्रिवृता त्रिवृद्भिः॥ ९॥

१. **देवानाम्**=देववृत्ति के पुरुषों के द्वारा **निहितम्**=अपने शरीर में स्थापित **निधिम्**=निधि को—कोश को **यम्**=जिस निधि को **इन्द्रः**=देवताओं का मुखिया जितेन्द्रिय पुरुष **देवयानैः पथिभिः**=देवयान मार्गों से—देवोचित कर्मों को ही करते रहने से **अन्वविन्दत्**=प्राप्त करता है। उस **हिरण्यम्**=हितरमणीय वीर्य को **आपः**=कर्मों में व्याप्त रहनेवाली प्रजाएँ **त्रिवृद्भिः**='ज्ञान, कर्म व उपासना' में लगे रहने से **जुगुपुः**=रक्षित करती हैं। २. हे हिरण्य! **ताः**=वे प्रजाएँ **त्वा**=तुझे **त्रिवृता**='शक्ति, भक्ति व ज्ञान' में वर्तन के हेतु से **त्रिवृद्भिः**=सदा 'ज्ञान, कर्म व उपासना' में लगे रहने के द्वारा **रक्षन्तु** रक्षित करें। सुरक्षित वीर्य 'शक्ति, भक्ति व ज्ञान' को बढ़ाता है। इसप्रकार हमें शारीरिक, मानस व बौद्धिक स्वास्थ्य प्राप्त होता है।

भावार्थ—देवयान मार्गों से चलने पर जितेन्द्रिय बनते हुए हम 'हिरण्य' का रक्षण करते हैं। यह हमारे अन्दर शक्ति, पवित्रता व ज्ञान का संचार करता है। हमारा जीवन 'ज्ञान, कर्म व उपासना' मय बनता है।

ऋषिः—**भृग्वङ्गिराः**॥ देवता—**त्रिवृत्**॥ छन्दः—**आर्च्युष्णिक्**॥

प्रियायमाणाः

त्रयस्त्रिंशद्देवतास्त्रीणि च वीर्या ∫णि प्रियायमाणा जुगुपुरप्स्वन्तः।
अस्मिंश्चन्द्रे अधि यद्धिरण्यं तेनायं कृणवद् वीर्याणि॥ १०॥

१. **त्रयस्त्रिंशद् देवताः**=तेतीस देव हैं। आठ वसु, ग्यारह रुद्र, बारह आदित्य, इन्द्र और प्रजापति **च**=और **त्रीणि वीर्याणि**=कायिक, वाचिक व मानसभेद से तीन वीर्य हैं। **अप्सु**=प्रजाओं में (आपो नारा इति प्रोक्ताः) **प्रियायमाणाः**=प्रभु को प्रीणित करनेवाले लोग **अन्तः**=अपने अन्दर इन देवों व वीर्यों का **जुगुपुः**=रक्षण करते हैं। (सर्वा ह्यस्मिन् देवता गावो गोष्ठइवासते। 'सूर्यः चक्षुर्भूत्वा०, वायुः प्राणो भूत्वा० अग्निर्वाग् भूत्वा०') जब हम यज्ञादि कर्मों से प्रभु-प्रीणन में प्रवृत्त होंगे तब अपने अन्दर देवों व वीर्यों का रक्षण कर पाएँगे। २. **अस्मिन्**=इस प्रभु-प्रीणन

में प्रवृत्त **चन्द्रे**=आह्लादमय मनोवृत्तिवाले पुरुष में **यत्**=जो **हिरण्यम्**=हितरमणीय वीर्यशक्ति है, **तेन**=उस हिरण्य से ही **अयम्**=यह चन्द्र=मनःप्रसादयुक्त पुरुष **वीर्याणि कृणवत्**=कायिक, वाचिक व मानस शक्तिशाली कर्मों को करता है।

भावार्थ—हम यज्ञादि कर्मों के द्वारा प्रभु-प्रणीन में प्रवृत्त रहें। इससे वासनाओं से आक्रान्त न होकर हम अपने अन्दर हिरण्य (वीर्य) का रक्षण कर पाएँगे। इस सुरक्षित वीर्य द्वारा हम शरीर, मन व बुद्धि से पराक्रम के कार्य करते हुए दिव्य-गुण-सम्पन्न जीवनवाले बनेंगे।

ऋषिः—**भृग्वङ्गिराः**॥ देवता—**त्रिवृत्**॥ छन्दः—**११ आर्च्युष्णिक्, १२ आर्च्यनुष्टुप्, १३ साम्नीत्रिष्टुप्**॥

(एकादश-एकादश-एकादश), यज्ञशेष का सेवन

ये देवा दिव्येकादश स्थ ते देवासो हविरिदं जुषध्वम्॥ ११॥

ये देवा अन्तरिक्ष एकादश स्थ ते देवासो हविरिदं जुषध्वम्॥ १२॥

ये देवाः पृथिव्यामेकादश स्थ ते देवासो हविरिदं जुषध्वम्॥ १३॥

१. **ये**=जो **देवाः**=देव **दिवि**=मस्तिष्करूप द्युलोक में **एकादश स्थ**=ग्यारह हो, **ते देवासः**=वे देव इस त्यागपूर्वक अदन को (हु दानादनयोः)—यज्ञशेष के सेवन को **जुषध्वम्**=प्रीतिपूर्वक सेवन करो। मेरे द्युलोकस्थ देव सदा यज्ञशेष का सेवन करें। यज्ञशेष का सेवन ही देवों के देवत्व को स्थिर रखता है। इसी से 'दशप्राण व जीवात्मा' ठीक बने रहेंगे। २. **ये देवाः**=जो देव **अन्तरिक्षे**=हृदयान्तरिक्ष में **एकादश स्थ**=ग्यारह हैं, **ते देवासः**=वे देव **इदं हविः जुषध्वम्**=इस यज्ञशेष का सेवन करनेवाले हों। अन्तरिक्षस्थ ग्यारह देव 'दश इन्द्रियाँ व मन' हैं, यज्ञशेष का सेवन इन्हें स्वस्थ रखता है। इससे इनका देवत्व बना रहता है। ३. **ये देवाः**=जो देव **पृथिव्याम्**=इस शरीररूप पृथिवी में **एकादश स्थ**=दश इन्द्रियगोलक और अन्नमयकोश हैं, **ते देवासः**=वे सब देव **इदं हविः**=इस हवि का **जुषध्वम्**=प्रीतिपूर्वक सेवन करें। यज्ञशेष के सेवन से ये सब ठीक बने रहते हैं।

भावार्थ—यज्ञशेष के सेवन से शरीरस्थ तेतीस देव ठीक बने रहें। इनका देवत्व नष्ट न हो, यही पूर्ण स्वास्थ्य है।

ऋषिः—**भृग्वङ्गिराः**॥ देवता—**त्रिवृत्**॥ छन्दः—**१४ अनुष्टुप्, १५ षट्पदाऽतिशक्वरी**॥

असपत्नम्-अभयम्, अघ्न्या, जातवेदाः

असपत्नं पुरस्तात्पश्चान्नो अभयं कृतम्।
सविता मा दक्षिणत उत्तरान्मा शचीपतिः॥ १४॥
दिवो मादित्या रक्षन्तु भूम्या रक्षन्त्वग्नयः।
इन्द्राग्नी रक्षतां मा पुरस्तादश्विनावभितः शर्म यच्छताम्।
तिरश्चीनघ्न्या रक्षतु जातवेदा भूतकृतो मे सर्वतः सन्तु वर्म॥ १५॥

१. व्याख्या १९.१६.१-२ पर द्रष्टव्य है।

यह अघ्न्या (अहन्तव्या) वेदवाणी का स्वाध्याय करनेवाला व्यक्ति 'ब्रह्मा' बनता है। इसी के अगले तीन सूक्त हैं—

२८. [अष्टाविंशं सूक्तम्]

ऋषिः—**ब्रह्मा**॥ देवता—**दर्भमणिः**॥ छन्दः—**अनुष्टुप्**॥

दीर्घायुत्वाय, तेजसे

इमं बध्नामि ते मणिं दीर्घायुत्वाय तेजसे।
दर्भं सपत्नदम्भनं द्विषतस्तपनं हृदः॥ १॥

१. 'आपो दर्भाः श० २.२.३.११' इस वाक्य के अनुसार 'आपः' ही 'दर्भः' कहलाते हैं। 'आपः' शरीरस्थ रेतःकणों का नाम है, अतः रेतःकण ही 'दर्भ' कहे गये हैं। रेतःकण 'मणि' व 'रत्न' हैं—शरीर में रमणीयतम वस्तु हैं, अतः 'दर्भमणि' शब्द का प्रयोग इन रेतःकणों के लिए हुआ है। **इमम्**=इस **मणिम्**=मणि को **ते बध्नामि**=तेरे लिए बाँधता हूँ। शरीर में इसे सुबद्ध करता हूँ, ताकि **दीर्घायुत्वाय**=तुझे दीर्घजीवन प्राप्त हो तथा **तेजसे**=तू तेजस्वी बने। २. इस **दर्भम्**=दर्भ को मैं तेरे लिए बाँधता हूँ, क्योंकि (दृभ to fear, to be afraid of) इससे सब रोग भयभीत होते हैं। **सपत्नदम्भनम्**=यह तो रोगरूप शत्रुओं को हिंसित करनेवाला है। **द्विषतः हृदः तपनम्**=ये दर्भ हमसे प्रीति न करनेवाले शत्रु के हृदय को संतप्त करनेवाले हैं। शरीर में दर्भ का बन्धन होने पर शरीर में रोगरूप शत्रुओं का वास नहीं हो पाता।

भावार्थ—शरीर में वीर्यकणों के रूप में रहनेवाले 'आपः' ही 'दर्भ' हैं। इनका शरीर में बँधन होने पर वहाँ रोगरूप शत्रु नहीं आ सकते। यह रोगों से अनाक्रान्त व्यक्ति दीर्घजीवी व तेजस्वी बनता है।

ऋषिः—**ब्रह्मा**॥ देवता—**दर्भमणिः**॥ छन्दः—**अनुष्टुप्**॥

द्विषन्-शत्रु-दुर्हादः

द्विषतस्तापयन्हृदः शत्रूणां तापयन्मनः।
दुर्हार्द सर्वास्त्वं दर्भ घर्मइवाभीन्त्सन्तापयन्॥ २॥

१. **द्विषतः**=हमसे प्रीति न करनेवाले विरोधियों के **हृदः**=हृदयों को **तापयन्**=सन्तप्त करता हुआ यह 'दर्भ' है। **शत्रूणाम्**=हमारा शातन करनेवाले शत्रुओं के **मनः**=मन को **तापयन्**=तपाता हुआ यह दर्भ है। २. हे **दर्भ**=शत्रुओं को भयभीत करनेवाले दर्भमणे! **त्वम्**=तू **सर्वान्**=सब **अभीन्**=न डरनेवाले—अति प्रबल **दुर्हार्दः**=दुष्ट हृदयवालों को **घर्मः इव**=आदित्य की भाँति **तापयन्**=संतप्त करता हुआ हो।

भावार्थ—दर्भमणि के धारण से—वीर्य-रक्षण से द्वेषभाव दूर हो जाते हैं, 'काम, क्रोध, लोभ' आदि शत्रु विनष्ट हो जाते हैं, हृदय से सब दुर्भाव दूर हो जाते हैं।

ऋषिः—**ब्रह्मा**॥ देवता—**दर्भमणिः**॥ छन्दः—**अनुष्टुप्**॥

सपत्न-हृदय-भेदन

घर्मइवाभितपन्दर्भ द्विषतो नितपन्मणे।
हृदः सपत्नानां भिन्द्धीन्द्रइव विरुजं बलम्॥ ३॥

१. **घर्मः इव**=सूर्य के समान **अभितपन्**=दीप्त होते हुए **दर्भ मणे**=शत्रु-हिंसक वीर्यमणे! तू **द्विषतः नितपन्**=हमारे साथ प्रीति न करनेवाले रोगरूप शत्रुओं को नितरां संतप्त करते हुए **सपत्नानाम्**=इन शत्रुओं के **हृदः भिन्धि**=हृदयों को विदीर्ण कर दे। २. **इन्द्रः इव**=इन्द्र की भाँति—शत्रुओं का विद्रावण करनेवाले जितेन्द्रिय पुरुष की भाँति **बलम्**=शत्रु-सैन्य को **विरुजम्**

(रुजो भंगे) भग्न करनेवाली हो।

भावार्थ—वीर्य ही दर्भमणि है—रोगरूप शत्रुओं का विद्रावण करनेवाली है। यह सूर्य की भाँति दीप्त होती हुई रोग-सैन्य को संतप्त करके नष्ट कर डाले।

ऋषिः—**ब्रह्मा**॥ देवता—**दर्भमणिः**॥ छन्दः—**अनुष्टुप्**॥

शत्रु-शिरो-विपातन

भिन्द्धि दर्भ सपत्नानां हृदयं द्विषतां मणे।
उद्यन्त्वचमिव भूम्याः शिर एषां वि पातय॥ ४॥

१. हे **दर्भ**=दर्भमणे—रोगरूप शत्रुओं की हिंसक वीर्यमणे! तू **सपत्नानाम्**=रोगरूप शत्रुओं के **हृदयम्**=हृदय को **भिन्धि**=विदीर्ण कर दे। रोगों के प्राबल्य को समाप्त कर दे। २. **उद्यन्**=शरीर में ऊर्ध्व गतिवाली होती हुई तू **भूम्याः त्वचम् इव**=जैसे कोई कुदाल आदि से भूमि की उपरली त्वचा को खोद डालता है, उसी प्रकार तू **एषां द्विषताम्**=इन, हमारे साथ प्रीति न करनेवाले रोगरूप शत्रुओं के **शिरः विपातय**=सिर को काटकर गिरा दे।

भावार्थ—शरीर में वीर्य की ऊर्ध्वगति होने पर रोगरूप शत्रुओं का सिर कट जाता है, अर्थात् रोग विनष्ट हो जाते हैं।

ऋषिः—**ब्रह्मा**॥ देवता—**दर्भमणिः**॥ छन्दः—**अनुष्टुप्**॥

रोगों का विदारण

भिन्द्धि दर्भ सपत्नान्मे भिन्द्धि मे पृतनायतः।
भिन्द्धि मे सर्वान्दुर्हार्दो भिन्द्धि मे द्विषतो मणे॥ ५॥

१. हे **दर्भ**=वीर्यमणे! **मे**=मेरे **सपत्नान्**=शत्रुभूत रोगों को **भिन्धि**=विदीर्ण कर डाल। **ये पृतनायतः**=मुझपर सेना से चढ़ाई करनेवाले—नाना प्रकार के उपद्रवों के साथ आक्रमण करनेवाले इन रोगों को **भिन्धि**=नष्ट कर। २. मेरे प्रति **सर्वान्**=सब **दुर्हार्दः**=दुष्ट हृदयवाले—मेरा अशुभ चाहनेवाले शत्रुओं को **भिन्धि**=विदीर्ण कर। हे **मणे**=वीर्य! तू **मे द्विषतः**=मेरे साथ अप्रीतिवाले इन रोगरूप शत्रुओं को **भिन्धि**=विदीर्ण कर।

भावार्थ—रोग हमारे सपत्न हैं—हमारे शरीर पर अपना आधिपत्य स्थापित करना चाहते हैं। ये रोग विविध उपद्रवोंरूप सैन्य के साथ हमपर आक्रमण करते हैं। ये हमारे प्रति दुष्टभाववाले हैं—ये कभी हमारा भला नहीं करते। इनकी हमारे साथ कोई प्रीति नहीं। वीर्य शरीर में सुरक्षित होने पर इनका विदारण कर देता है।

ऋषिः—**ब्रह्मा**॥ देवता—**दर्भमणिः**॥ छन्दः—**अनुष्टुप्**॥

रोग-छेदन

छिन्द्धि दर्भ सपत्नान्मे छिन्द्धि मे पृतनायतः।
छिन्द्धि मे सर्वान्दुर्हार्दोन् छिन्द्धि मे द्विषतो मणे॥ ६॥

१. हे **दर्भ**=वीर्यमणे! **मे**=मेरे **सपत्नान्**=रोगरूप शत्रुओं को **छिन्धि**=(छिदिर् द्वेधीकरणे) दो टुकड़ों में काट डाल। **मे**=मुझपर **पृतनायतः**=उपद्रवसैन्य से आक्रमण करनेवाले इन रोगरूप शत्रुओं को **छिन्धि**=छिन्न कर दे। २. **मे**=मेरे प्रति **सर्वान्**=सब **दुर्हार्दान्**=दुष्ट हृदयवाले इन रोगों को **छिन्धि**=काट डाल। हे **मणे**=वीर्य! **मे द्विषतः**=मेरे प्रति अप्रीतिवाले इन रोगों को **छिन्धि**=समाप्त कर डाल।

भावार्थ—शरीर में सुरक्षित होने पर वीर्य रोगों का छेदन कर डालता है।

ऋषिः—**ब्रह्मा**॥ देवता—**दर्भमणिः**॥ छन्दः—**अनुष्टुप्**॥

रोग-वृश्चन

वृश्च दर्भ सपत्नान्मे वृश्च मे पृतनायतः।
वृश्च मे सर्वान्दुर्हार्दो वृश्च मे द्विषतो मणे॥ ७॥

भावार्थ—शरीर में सुरक्षित वीर्य रोगों का वृश्चन (छेदन) कर डालता है। रोगवृक्ष के लिए वीर्य कुल्हाड़े के समान है।

ऋषिः—**ब्रह्मा**॥ देवता—**दर्भमणिः**॥ छन्दः—**अनुष्टुप्**॥

रोग-कर्तन

कृन्त दर्भ सपत्नान्मे कृन्त मे पृतनायतः।
कृन्त मे सर्वान्दुर्हार्दः कृन्त मे द्विषतो मणे॥ ८॥

भावार्थ—शरीर में सुरक्षित वीर्य रोगों का कर्तन कर देता है। रोग की बेलों के लिए यह वीर्य कर्तरिका=कैंची के समान है।

ऋषिः—**ब्रह्मा**॥ देवता—**दर्भमणिः**॥ छन्दः—**अनुष्टुप्**॥

रोगों को पीस डालना

पिंश दर्भ सपत्नान्मे पिंश मे पृतनायतः।
पिंश मे सर्वान्दुर्हार्दः पिंश मे द्विषतो मणे॥ ९॥

भावार्थ—शरीर में सुरक्षित वीर्य रोगों को पीस डालता है (पिश अवयवे)

ऋषिः—**ब्रह्मा**॥ देवता—**दर्भमणिः**॥ छन्दः—**अनुष्टुप्**॥

रोग वेधन

विध्य दर्भ सपत्नान्मे विध्य मे पृतनायतः।
विध्य मे सर्वान्दुर्हार्दो विध्य मे द्विषतो मणे॥ १०॥

भावार्थ—'सुरक्षित वीर्य' रूप सेनापति रोगरूप शत्रुओं का सिर विद्ध करता हुआ उन्हें धराशायी कर देता है।

२९. [एकोनत्रिंशं सूक्तम्]

ऋषिः—**ब्रह्मा**॥ देवता—**दर्भमणिः**॥ छन्दः—**अनुष्टुप्**॥

रोगों को छेद डालना

निक्ष दर्भ सपत्नान्मे निक्ष मे पृतनायतः।
निक्ष मे सर्वान्दुर्हार्दो निक्ष मे द्विषतो मणे॥ १॥

भावार्थ—शरीर में सुरक्षित वीर्य रोगों को छेद डालता है (निक्ष् to pierce)।

ऋषिः—**ब्रह्मा**॥ देवता—**दर्भमणिः**॥ छन्दः—**अनुष्टुप्**॥

रोगहिंसन

तृन्द्धि दर्भ सपत्नान्मे तृन्द्धि मे पृतनायतः।
तृन्द्धि मे सर्वान्दुर्हार्दस्तृन्द्धि मे द्विषतो मणे॥ २॥

भावार्थ—शरीर में सुरक्षित वीर्य रोगरूप शत्रुओं को कुचल डालता है (तृद्-हिंसने)।

ऋषिः—**ब्रह्मा**॥ देवता—**दर्भमणिः**॥ छन्दः—**अनुष्टुप्**॥

रोग-निरोध

रुन्धि द॑र्भ स॒पत्ना॑न्मे रुन्धि मे॑ पृतनाय॒तः।
रुन्धि मे॒ सर्वा॑न्दु॒र्हार्दो॑ रुन्धि मे॑ द्विष॒तो म॑णे॥ ३॥

भावार्थ—शरीर में वीर्य के सुरक्षित होने पर रोगों का स्वभावतः निरोध हो जाता है।

ऋषिः—**ब्रह्मा**॥ देवता—**दर्भमणिः**॥ छन्दः—**अनुष्टुप्**॥

रोगों को मसल (to Slay) डालना

मृण द॑र्भ स॒पत्ना॑न्मे मृण मे॑ पृतनाय॒तः।
मृण मे॒ सर्वा॑न्दु॒र्हार्दो॑ मृण मे॑ द्विष॒तो म॑णे॥ ४॥

भावार्थ—शरीर में सुरक्षित वीर्य रोगों का संहार कर डालता है।

ऋषिः—**ब्रह्मा**॥ देवता—**दर्भमणिः**॥ छन्दः—**अनुष्टुप्**॥

रोग मन्थन (Humiliate, crush down)

मन्थ॑ दर्भ स॒पत्ना॑न्मे॒ मन्थ॑ मे पृतनाय॒तः।
मन्थ॑ मे॒ सर्वा॑न्दु॒र्हार्दो॒ मन्थ॑ मे द्विष॒तो म॑णे॥ ५॥

भावार्थ—शरीर में सुरक्षित वीर्य रोगों का सर्वथा विनाश कर डालता है।

ऋषिः—**ब्रह्मा**॥ देवता—**दर्भमणिः**॥ छन्दः—**अनुष्टुप्**॥

रोग-संचूर्णन

पि॒ण्ढि द॑र्भ स॒पत्ना॑न्मे पि॒ण्ढि मे॑ पृतनाय॒तः।
पि॒ण्ढि मे॒ सर्वा॑न्दु॒र्हार्दः॑ पि॒ण्ढि मे॑ द्विष॒तो म॑णे॥ ६॥

भावार्थ—शरीर में सुरक्षित वीर्य रोगों का चूरा-चूरा कर डालता है (पिष् संचूर्णने)।

ऋषिः—**ब्रह्मा**॥ देवता—**दर्भमणिः**॥ छन्दः—**अनुष्टुप्**॥

रोग-दहन

ओष॑ दर्भ स॒पत्ना॑न्मे॒ ओष॑ मे पृतनाय॒तः।
ओष॑ मे॒ सर्वा॑न्दु॒र्हार्द॒ ओष॑ मे द्विष॒तो म॑णे॥ ७॥

भावार्थ—शरीर में सुरक्षित वीर्य रोगों को संदग्ध कर देता है।

ऋषिः—**ब्रह्मा**॥ देवता—**दर्भमणिः**॥ छन्दः—**अनुष्टुप्**॥

रोगों को भस्मीभूत कर देना

दह॑ दर्भ स॒पत्ना॑न्मे॒ दह॑ मे पृतनाय॒तः।
दह॑ मे॒ सर्वा॑न्दु॒र्हार्दो॒ दह॑ मे द्विष॒तो म॑णे॥ ८॥

भावार्थ—शरीर में सुरक्षित वीर्य रोगों को भस्मीभूत कर देता है।

ऋषिः—**ब्रह्मा**॥ देवता—**दर्भमणिः**॥ छन्दः—**अनुष्टुप्**॥

रोग-हनन

ज॒हि द॑र्भ स॒पत्ना॑न्मे ज॒हि मे॑ पृतनाय॒तः।
ज॒हि मे॒ सर्वा॑न्दु॒र्हार्दो॑ ज॒हि मे॑ द्विष॒तो म॑णे॥ ९॥

भावार्थ—शरीर में सुरक्षित वीर्य रोगों को सुदूर विनष्ट करनेवाला होता है।

सूचना—प्रस्तुत प्रसंग में साहित्य की 'अभ्यास' शैली का सुन्दर चित्रण हो गया है। एक ही बात को क्रमशः 'भिन्द्धि, छिन्द्धि, वृश्च, कृन्त, पिंश, विध्य, निक्ष, तृन्द्धि, रुन्द्धि, मृण, मन्थ, पिण्ड्धि, ओष, दह व जहि' क्रियाओं से कहा गया है।

३०. [त्रिंशं सूक्तम्]

ऋषिः—**ब्रह्मा**॥ देवता—**दर्भमणिः**॥ छन्दः—**अनुष्टुप्**॥

अद्वितीय कवच

यत्ते॑ दर्भ जरामृ॑त्युः श॒तं वर्म॑सु॒ वर्म॑ ते।
तेने॒मं व॒र्मिणं॑ कृ॒त्वा स॒पत्ना॑न् जहि वी॒र्यै॑॥ १॥

१. वीर्यकण ही वस्तुतः रोगों से रक्षित करनेवाला महान् कवच है, अतः कहते हैं कि हे **दर्भ**=रेतःकण! **यत्**=जो **ते**=तेरा **वर्म**=कवच है, वह **ते**=तेरा कवच **शतं वर्मसु**=सैकड़ों कवचों में एक अद्वितीय ही कवच है। यह कवच **जरामृत्युः**=पूर्ण वृद्धावस्था के बाद ही मृत्यु को प्राप्त करानेवाला है। इस कवच से रक्षित होकर मनुष्य युवावस्था में ही समाप्त नहीं हो जाता। २. **तेन**=उस कवच से **इमम्**=इस इन्द्र को **वर्मिणं कृत्वा**=कवचवाला करके **सपत्नान्**=रोगरूप शत्रुओं को **वीर्यैः**=पराक्रमों द्वारा **जहि**=सुदूर विनष्ट कर डाल।

भावार्थ—सुरक्षित वीर्य एक अद्वितीय कवच है। यह हमें रोगों से आक्रान्त नहीं होने देता। यह हमें पूर्ण आयुष्य प्राप्त कराता है।

ऋषिः—**ब्रह्मा**॥ देवता—**दर्भमणिः**॥ छन्दः—**अनुष्टुप्**॥

जरसे-भर्तवे

श॒तं ते॑ दर्भ॒ वर्मा॑णि स॒हस्रं॑ वी॒र्या॑ ण्णि ते।
तम॒स्मै विश्वे॒ त्वां दे॒वा ज॒रसे॒ भर्त॒वा अ॑दुः॥ २॥

१. हे **दर्भ**=वीर्यमणे! **ते**=तेरे **वर्माणि**=कवच **शतम्**=सैकड़ों हैं। यह वीर्यमणि हमें शतवर्षपर्यन्त कवच धारण कराती हुई रोगों से आक्रान्त नहीं होने देती। हे दर्भ! **ते वीर्याणि**=तेरे पराक्रम **सहस्त्रम्**=हज़ारों हैं। यह वीर्यमणि हज़ारों प्रकार से रोगरूप शत्रुओं को आक्रान्त करती है। २. **तं त्वाम्**=उस तुझको **विश्वेदेवाः**=सब प्राकृतिक देव **अस्मै**=इस पुरुष के लिए **अदुः**=देते हैं, जिससे **जरसे**=यह पूर्ण जरावस्था तक आयुष्यों को भोगनेवाला हो तथा **भर्तवे**=ठीक से अपना भरण-पोषण कर सके।

भावार्थ—सुरक्षित वीर्य शरीर को विविध कवचों को धारण कराता है—पराक्रमवाला बनाता है। सब प्राकृतिक शक्तियाँ इस कवच को हमें दीर्घजीवन व भरण के लिए प्राप्त कराती हैं।

ऋषिः—**ब्रह्मा**॥ देवता—**दर्भमणिः**॥ छन्दः—**अनुष्टुप्**॥

देववर्म—इन्द्रवर्म

त्वामा॑हुर्दे॒व॒वर्म॒ त्वां द॑र्भ॒ ब्रह्म॑ण॒स्पति॑म्।
त्वामिन्द्र॑स्याहु॒र्वर्म॒ त्वं रा॒ष्ट्राणि॑ रक्षसि॥ ३॥

१. हे **दर्भ**=वीर्यमणे! **त्वाम्**=तुझे **देव-वर्म आहुः**=उस महान् देव प्रभु से दिया हुआ कवच कहते हैं। इस कवच को देववृत्ति के व्यक्ति ही धारण कर पाते हैं, इसलिए भी यह 'देववर्म' कहलाया है। **त्वाम्**=तुझे **ब्रह्मणस्पतिम् आहुः**=ब्रह्मणस्पति—ज्ञान का रक्षक कहते हैं। सुरक्षित

वीर्य ही ज्ञानाग्नि का ईंधन बनता है। २. हे दर्भ! **त्वाम्**=तुझे **इन्द्रस्य वर्म आहुः**=जितेन्द्रिय पुरुष का कवच कहते हैं। एक जितेन्द्रिय पुरुष ही वीर्य का रक्षण कर पाता है। यह सुरक्षित वीर्य उसका कवच बनता है और उसे रोगाक्रान्त नहीं होने देता। यह जितेन्द्रिय पुरुष ही राष्ट्र का सम्यक् शासन कर पाता है। 'जितेन्द्रियो हि शक्नोति वशे स्थापयितुं प्रजाः', अतः कहते हैं कि हे वीर्य! **त्वम्**=तू ही **राष्ट्राणि रक्षसि**=राष्ट्रों का रक्षण करता है।

भावार्थ—हम देववृत्ति के व जितेन्द्रिय बनकर वीर्य का रक्षण कर पाते हैं। सुरक्षित वीर्य हमारी ज्ञानाग्नि का ईंधन बनता है और हमें रोगों से आक्रान्त नहीं होने देता। यही एक राजा को राष्ट्ररक्षण की योग्यता प्राप्त कराता है।

ऋषिः—**ब्रह्मा**॥ देवता—**दर्भमणिः**॥ छन्दः—**अनुष्टुप्**॥

सपत्नक्षयणं-द्विषतस्तपनम्

सपत्नक्षयणं दर्भ द्विषतस्तपनं हृदः।
मणिं क्षत्रस्य वर्धनं तनूपानं कृणोमि ते॥ ४॥

१. हे **दर्भ**=वीर्यमणे! तू **सपत्नक्षयणम्**=रोगरूप सपत्नों का क्षय करनेवाला है। **द्विषतः**=हमसे प्रीति न करनेवाले राग-द्वेष आदि के **हृदः**=हृदयों को तू **तपनम्**=सन्तप्त करनेवाला है, अर्थात् इनको समाप्त करनेवाला है। २. तू **क्षत्रस्य वर्धनम्**=क्षतों से त्राण करनेवाले बल का बढ़ानेवाला है। **मणिम्**=तू मणि के तुल्य है। **ते**=तेरे द्वारा ही मैं **तनूपानम्**=शरीर का रक्षण **कृणोमि**=करता हूँ। अथवा शरीर में तेरा पान करता हूँ। शरीर में तुझे सुरक्षित करता हुआ मैं अपने को रक्षित करता हूँ।

भावार्थ—रोगरूप सपत्नों का नाश करनेवाली इस दर्भमणि (वीर्य) को मैं शरीर में सुरक्षित करता हुआ, इसके द्वारा अपना रक्षण करता हूँ।

ऋषिः—**ब्रह्मा**॥ देवता—**दर्भमणिः**॥ छन्दः—**अनुष्टुप्**॥

समुद्रः-पर्जन्यः

यत्समुद्रो अभ्यक्रन्दत्पर्जन्यो विद्युता सह।
ततो हिरण्ययो बिन्दुस्ततो दर्भो अजायत॥ ५॥

१. **यत्**=जब **समुद्रः**=(स-मुद्) मनःप्रसाद से युक्त यह **पर्जन्यः**=(परां तृप्तिं जनयति) अपने अन्दर परातृप्ति को अनुभव करनेवाला आत्मतृप्त पुरुष **विद्युता सह**=विशिष्ट द्युति के साथ होता है और **अभ्यक्रन्दत्**=प्रभु का लक्ष्य करके आह्वान करता है—प्रभु का आराधन करता है, **ततः**=तभी यह **बिन्दुः**=रेतःकण **हिरण्ययः**=इसके लिए हितरमणीय व ज्योतिर्मय होता है। २. शरीर में वीर्यरक्षण के लिए साधन हैं (१) मन को प्रसन्न रखना (समुद्रः), (२) प्रभु का आराधन (अभ्यक्रन्दत्), (३) अपने अन्दर तृप्ति अनुभव करना—विषयों की ओर न जाना (पर्जन्यः), (४) ज्ञानप्रधान बनना (विद्युता सह)। **ततः**=ऐसा होने पर यह वीर्य **दर्भः अजायत**=शत्रुओं का हिंसन करनेवाला हो जाता है। इससे रोग भयभीत हो उठते हैं (दृभ=to be afraid of)

भावार्थ—मनःप्रसाद से युक्त होकर हम प्रभु का आह्वान करें। यह प्रभु-स्मरण हमारे वीर्य का रक्षण करेगा और सुरक्षित वीर्य हमारे शत्रुओं को भयभीत करनेवाला होगा।

प्रभु-स्मरणपूर्वक अपने जीवन में वीर्य का सम्पादन करनेवाला 'सविता' अगले सूक्त का ऋषि है। यह वीर्यशक्ति को 'औदुम्बरमणि' के रूप में स्मरण करता है 'सोऽब्रवीत् अयं वाव

स मा सर्वस्मात् पाप्मन् उद् अभार्जीत् तस्मात् उदुम्भरः। उदुम्बर इति आचक्षते परोक्षम् शत० ७.४.१.२२' शरीर में सुरक्षित वीर्य सब पापों व रोगों से बचाता है—

३१. [एकत्रिंशं सूक्तम्]

ऋषिः—**सविता (पुष्टिकामः)**॥ देवता—**औदुम्बरमणिः**॥ छन्दः—**अनुष्टुप्**॥

औदुम्बरमणि

औदुम्बरेण मणिना पुष्टिकामाय वेधसा।
पशूनां सर्वेषां स्फातिं गोष्ठे मे सविता करत्॥ १॥

१. **वेधसा**=(वेधस् creator, Name of सोम) शरीर में सब शक्तियों को उत्पन्न करनेवाली **औदुम्बरेण मणिना**=सब पापों व रोगों से ऊपर उठानेवाली 'औदुम्बर' नामवाली वीर्यरूप मणि से **सविता**=शक्ति का सम्पादक प्रभु **पुष्टिकामाय मे**=पुष्टि की कामनावाले मेरे लिए **गोष्ठे**=इस शरीररूप गोष्ठ में **सर्वेषां पशूनाम्**=सब इन्द्रियरूप पशुओं की **स्फातिम्**=वृद्धि **करत्**=करें। २. शरीर गोष्ठ है। इसमें सब देव भिन्न-भिन्न इन्द्रियों के रूप में इसप्रकार रह रहे हैं, जैसेकि गोष्ठ में गौएँ रहती है 'सर्वाह्यस्मिन् देवता गावो गोष्ठइवासते'। वीर्यशक्ति के रक्षण से इन सब इन्द्रियरूप गौओं की शक्ति बढ़ती है।

भावार्थ—प्रभु मेरे अन्दर वीर्यरूप 'औदुम्बरमणि' का रक्षण करें। यह मणि ही सब शक्तियों को उत्पन्न करती है। इसी से शरीररूप गोष्ठ में इन्द्रियरूप गौओं का वर्धन होता है।

ऋषिः—**सविता (पुष्टिकामः)**॥ देवता—**औदुम्बरमणिः**॥ छन्दः—**अनुष्टुप्**॥

अग्निः-गार्हपत्यः

यो नो अग्निर्गार्हपत्यः पशूनामधिपा असत्।
औदुम्बरो वृषा मणिः सं मा सृजतु पुष्ट्या॥ २॥

१. **यः**=जो **औदुम्बरमणिः**=हमें सब पापों व रोगों से ऊपर उठानेवाली यह औदुम्बर—वीर्यरूप मणि है, वह **नः**=हमें **अग्निः**=आगे ले-चलनेवाली है, **गार्हपत्यः**=यही वस्तुतः हमारे इस शरीरगृह का रक्षण करनेवाली है। यह **पशूनाम्**=इन्द्रियरूप गौओं की **अधिपाः**=आधिक्येन रक्षण करनेवाली **असत्**=है। २. यह मणि **वृषा**=हमें शक्तिशाली बनाती है। यह **मा**=मुझे **पुष्ट्या**=पुष्टि से **संसृजतु**=संसृष्ट करे।

भावार्थ—शरीर में सुरक्षित वीर्य ही उन्नति का कारण है। यही शरीर का रक्षक है। इन्द्रियों को यही रक्षित करता है व शक्तिशाली बनाता है। यह हमें पुष्ट करे।

ऋषिः—**सविता (पुष्टिकामः)**॥ देवता—**औदुम्बरमणिः**॥ छन्दः—**अनुष्टुप्**॥

गौ और औदुम्बर मणि

करीषिणीं फलवतीं स्वधामिरां च नो गृहे।
औदुम्बरस्य तेजसा धाता पुष्टिं दधातु मे॥ ३॥

१. **करीषिणीम्**=प्रशस्त करीष (गोमय) को प्राप्त करानेवाली, **फलवतीम्**=(ञिफला विशरणे) रोगों को विशीर्ण करने की क्रियावाली **च**=और **स्वधाम्**=हमारे अन्दर आत्मतत्त्व को धारण करानेवाली (सात्त्विक दुग्ध से बुद्धि को सात्त्विक करके यह हमें आत्मदर्शन के योग्य बनाती है) **इराम्**=(इडा=गौ) गौ को **नः**=हमारे **गृहे**=घर में **धाता**=वे धारक प्रभु **दधातु**=धारण करें। इन गौओं के होने पर प्रशस्त गोमय प्राप्त होता है—यह भूमि को उपजाऊ बनाता है तथा लेपन

आदि के होने पर क्रिमिनाशन का कार्य करता है। गौ का दूध प्रशस्त बुद्धि देता है और नीरोगता प्राप्त कराता है। २. गोदुग्ध के प्रयोग से 'धाता'—वह धारक प्रभु **औदुम्बरस्य**= इस औदुम्बरमणि को **तेजसा**=तेज से **मे**=मेरे लिए **पुष्टिम्**=अंग-प्रत्यंग के पोषण को (दधातु) धारण करे।

भावार्थ—हम गोदुग्ध के प्रयोग से नीरोग व तीव्र-बुद्धि बनें। प्रभु गोदुग्ध से अंग-प्रत्यंग को पुष्ट कर हमें दीर्घजीवी बनाते हैं।

ऋषिः—**सविता (पुष्टिकामः)**॥ देवता—**औदुम्बरमणिः**॥ छन्दः—**अनुष्टुप्**॥

वीर्यरक्षण व ऐश्वर्य (भूमा)

यद् द्विपाच्च चतुष्पाच्च यान्यन्नानि ये रसाः।
गृह्णे ३ हं त्वेषां भूमानं बिभ्रदौदुम्बरं मणिम्॥ ४॥

१. **यत्** जो **द्विपात्**=दो पाँववाले मनुष्य आदि हैं **च**=और **चतुष्पात्**=गौ आदि पशु हैं **च**=और **यानि अन्नानि**=जो जौ-चावल आदि अन्न हैं तथा **ये रसाः**=दूध-दही, इक्षु आदि रसवाले पदार्थ हैं, **अहम्**=मैं **तु**=तो **औदुम्बरं मणिं बिभ्रत्**=सब पापों व रोगों से ऊपर उठानेवाली इस वीर्यमणि को धारण करता हुआ **एषाम्**=इन सबके **भूमानम्**=बाहुल्य को **गृह्णे**=ग्रहण करता हूँ।

भावार्थ—वीर्यरक्षणवाला पुरुष सब प्रकार से समृद्ध बनाता है—अभ्युदयशाली होता है।

ऋषिः—**सविता (पुष्टिकामः)**॥ देवता—**औदुम्बरमणिः**॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्**॥

पयः पशूनां, रसमोषधीनाम्

पुष्टिं पशूनां परि जग्रभाहं चतुष्पदां द्विपदां यच्च धान्यम्।
पयः पशूनां रसमोषधीनां बृहस्पतिः सविता मे नि यच्छात्॥ ५॥

१. **अहम्**=मैं वीर्यरक्षण करनेवाला होता हुआ **पशूनां पुष्टिम्**=गवादि पशुओं की पुष्टि को **परिजग्रभ**=सर्वथा प्राप्त होता हूँ। **चतुष्पदाम्**=गवादि चार पाँववाले पशुओं की **द्विपदाम्**=दो पाँववाले मनुष्यों की पुष्टि को प्राप्त करता हूँ, **च**=और **यत्**=जो **धान्यम्**=व्रीहि-यव आदि धान्य हैं, उनकी पुष्टि को प्राप्त करता हूँ। मेरा घर सब प्रकार से फूला-फला होता है। २. वह **बृहस्पतिः**=आकाशादि बड़े-बड़े सब लोकों का स्वामी अथवा ज्ञान का स्वामी **सविता**=प्रेरणा देनेवाला प्रभु **मे**=मेरे लिए **पशूनां पयः**=गवादि पशुओं के दूध को तथा **ओषधीनां रसम्**=व्रीहि-यवादि ओषधियों के रस को **नियच्छात्**=देते हैं। मेरे लिए वे यही नियम बनाते हैं कि मैं पशुओं से तो दूध को ही भोजन के रूप में लूँ तथा ओषधियों के सार को ग्रहण करनेवाला बनूँ। इसप्रकार शुद्ध वानस्पतिक भोजन में चलूँ।

भावार्थ—वीर्यरक्षण करते हुए हम सब प्रकार से समृद्ध हों। पशुओं से दूध व ओषधियों से रस को लेनेवाले बनें।

ऋषिः—**सविता (पुष्टिकामः)**॥ देवता—**औदुम्बरमणिः**॥ छन्दः—**विराट्प्रस्तारपङ्क्तिः**॥

पशु+द्रविण

अहं पशूनामधिपा असानि मयि पुष्टं पुष्टपतिर्दधातु।
मह्यमौदुम्बरो मणिर्द्रविणानि नि यच्छतु॥ ६॥

१. **अहम्**=मैं **पशूनाम्**=शरीरस्थ इन्द्रियरूप पशुओं का **अधिपाः**=अधिष्ठातृरूपेण रक्षक **असानि**=होऊँ, जितेन्द्रिय बनूँ। **पुष्टपतिः**=सब पोषणों का स्वामी प्रभु **मयि**=मुझमें **पुष्टं दधातु**= सब शक्तियों का पोषण धारण करे। मैं सब अंगों के दृष्टिकोण से पुष्ट बनूँ। २. यह **औदुम्बरः**

मणिः=मुझे सब पापों व रोगों से उभारनेवाली वीर्यमणि **मह्यम्**=मेरे लिए **द्रविणानि**=सब धनों को **नियच्छतु**=दे।

भावार्थ—मैं सब इन्द्रियों को विषय-वासनाओं से बचाता हुआ सब अंगों का पोषण प्राप्त करूँ। वीर्यरक्षण द्वारा सब जीवन-धनों को प्राप्त करूँ।

ऋषिः—**सविता (पुष्टिकामः)**॥ देवता—**औदुम्बरमणिः**॥ छन्दः—**अनुष्टुप्**॥

प्रजा, धन, वर्चस्

उप॒ मौदु॑म्बरो म॒णिः प्र॒जया॑ च॒ धने॑न च।
इन्द्रे॑ण जिन्वि॒तो म॒णिरा मा॑गन्त्स॒ह वर्च॑सा॥ ७॥

१. यह **औदुम्बरः मणिः**=सब पापों व रोगों से उभारनेवाली वीर्यमणि **मा**=मुझे **प्रजया च**=उत्तम प्रजा के साथ, **च**=और **धनेन**=धन के साथ **उप**=समीपता से प्राप्त हो। वीर्यरक्षण से मैं उत्तम सन्तान व धन प्राप्त करूँ। २. **इन्द्रेण**=उस परमैश्वर्यशाली—सर्वशक्तिसम्पन्न—प्रभु से **जिन्वितः**=हमारे शरीर में प्रेरित की हुई यह **मणिः**=वीर्यमणि **मा**=मुझे **वर्चसा सह**=वर्चस् के साथ—Vitality=प्राणशक्ति के साथ **आगन्**=प्राप्त हो। सुरक्षित वीर्य मुझे वर्चस्वी बनाए—मैं सब रोगों का पराजय करनेवाला बनूँ।

भावार्थ—शरीर में सुरक्षित वीर्य हमें उत्तम प्रजा, धन व वर्चस् प्राप्त कराता है।

ऋषिः—**सविता (पुष्टिकामः)**॥ देवता—**औदुम्बरमणिः**॥ छन्दः—**अनुष्टुप्**॥

सपत्नहा-धनसाः

दे॒वो म॒णिः स॑पत्न॒हा ध॑न॒सा धन॑सातये।
प॒शोर॒न्नस्य॒ भूमा॑नं॒ गवां॑ स्फा॒तिं नि य॑च्छतु॥ ८॥

१. यह औदुम्बरमणि **देवः मणिः**=सब रोगों को जीतने की कामनावाली मणि है (दिव् विजिगीषायाम्), यह **सपत्नाहा**=रोगरूप शत्रुओं का हनन करती है। **धनसाः**=सब जीवन-धनों को प्राप्त कराती है। यह **धनसातये**=इन जीवनधनों की प्राप्ति के लिए हो। २. यह मुझे **पशोः**=गवादि पशुओं, **अन्नस्य**=व्रीहि-यवादि अन्नों तथा विशेषकर **गवां स्फातिम्**=गौओं की समृद्धि को **नियच्छतु**=प्राप्त कराए। घर गौ से ही तो समृद्ध होता है, स्वर्ग बनता है।

भावार्थ—यह वीर्यमणि देव है—सब रोगों का पराजय करती है, जीवन-धनों को प्राप्त कराती है, वीर्यरक्षक का घर पशुओं व अन्नों से समृद्ध बनाता है।

ऋषिः—**सविता (पुष्टिकामः)**॥ देवता—**औदुम्बरमणिः**॥ छन्दः—**अनुष्टुप्**॥

वीर्यरक्षण व सरस्वती आराधन

यथाग्रे॒ त्वं व॑नस्पते पुष्ट्या॒ स॒ह ज॑ज्ञि॒षे।
ए॒वा ध॑न॒स्य मे स्फा॒तिमा द॑धातु सर॑स्वती॥ ९॥

१. हे **वनस्पते**=वनस्पतियों के सेवन से उत्पन्न औदुम्बरमणे! (वीर्यमणे!) **यथा**=जैसे **त्वम्**=तू **अग्रे**=सर्वप्रथम **पुष्ट्या सह**=सब शक्तियों के पोषण के साथ **जज्ञिषे**=प्रादुर्भूत होती है, **एवा**=इसीप्रकार यह **सरस्वती**=ज्ञान की अधिष्ठात्री देवता **मे**=मेरे लिए **धनस्य स्फातिम्**=ज्ञान-धन की वृद्धि को **आदधातु**=धारण करे। २. वीर्यरक्षण के अनुपात में ही ज्ञानाग्नि की दीप्ति होती है और ज्ञानधन प्राप्त होता है।

भावार्थ—हम वीर्यरक्षण करते हुए सरस्वती के प्रिय बनें।

ऋषिः—**सविता (पुष्टिकामः)**॥ देवता—**औदुम्बरमणिः**॥ छन्दः—**अनुष्टुप्**॥

धन-दूध-धान्य

आ मे धनं सरस्वती पयस्फातिं च धान्य ँम्।
सिनीवाल्युपा वहादयं चौदुम्बरो मणिः॥ १०॥

यह **सिनीवाली**=(सिनम्=अन्नम्) अन्नोंवाली **सरस्वती**=ज्ञान की अधिष्ठात्री देवता **मे**=मेरे लिए **धनम्**=धन को **पयस्फातिम्**=दूध की वृद्धि को **च**=तथा **धान्यम्**=धान्य को **उपावहात्**=सर्वथा समीपता से प्राप्त कराए, अर्थात् मेरा ज्ञान उस विज्ञानवाला हो जो मुझे 'धन, दूध व धान्य' के प्राचुर्य को देनेवाला हो। २. **च**=और **अयम्**=यह **औदुम्बरः मणिः**=सब रोगों व पापों से ऊपर उठानेवाली वीर्यमणि मुझे धन, दूध व धान्य को देनेवाली हो। वीर्यरक्षण मेरी समृद्धि का कारण बने।

भावार्थ—ज्ञान की आरधना तथा वीर्यरक्षण मुझे 'धन, दूध व धान्य' का प्राचुर्य दें।

ऋषिः—**सविता (पुष्टिकामः)**॥ देवता—**औदुम्बरमणिः**॥ छन्दः—**पञ्चपदाशक्वरी**॥

'अराति-अमति-क्षुधा' का निराकरण

त्वं मणीनामधिपा वृषासि त्वयि पुष्टं पुष्टपतिर्जजान। त्वयीमे वाजा
द्रविणानि सर्वौदुम्बरः स त्वमस्मत्सहस्वारादरातिममतिं क्षुधं च॥ ११॥

१. हे औदुम्बरमणे! **त्वम्**=तू **मणीनाम्**=सब रत्नों की **अधिपाः**=रक्षक है। वीर्यरक्षण से ही शरीर में सब रमणीय तत्त्व उत्पन्न होते हैं। **वृषा असि**=तू सब शक्तियों व सुखों का वर्धन करनेवाला है। **पुष्टपतिः**=सब पोषक तत्त्वों के स्वामी प्रभु ने **त्वयि**=तुझमें **पुष्टं जजान**=सब पोषक तत्त्वों का प्रादुर्भूत किया है। २. **त्वयि**=तुझमें ही **इमे**=ये **वाजाः**=शक्तियाँ तथा **सर्वा द्रविणानि**=सब धन स्थापित हुए हैं। **औदुम्बरः**=तू सब रोगों व पापों से हमें उभारनेवाला है। **सः त्वम्**=वह तू **अस्मत्**=हमसे **अरातिम्**=अदानवृत्ति को, **अमतिम्**=बुद्धि के दारिद्र्य को मत्यभाव को **च**=तथा **क्षुधम्**=भूख को **आरात् सहस्व**=सुदूर कुचलनेवाला हो।

भावार्थ—वीर्यरक्षण हमें अदानवृत्ति, कमसमझी व दारिद्र्य से दूर रखता है।

ऋषिः—**सविता (पुष्टिकामः)**॥ देवता—**औदुम्बरमणिः**॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्**॥

ग्रामणीः

ग्रामणीरसि ग्रामणीरुत्थायाभिषिक्तोऽभि मा सिञ्च वर्चसा।
तेजोऽसि तेजो मयि धारयाधि रयिरसि रयिं मे धेहि॥ १२॥

१. हे औदुम्बर मणे! तू **ग्रामणीः असि**=इन्द्रियासमूह का नेतृत्व करनेवाली है—सब इन्द्रियों को अपने कार्य में प्रवृत्त करने के लिए तू उन्हें शक्तिशाली बनाती है। तू सचमुच **ग्रामणीः उत्थाय**=शरीर में **ऊर्ध्वः**=गतिवाली होकर **अभिषिक्ता**=शरीर में चारों ओर सिक्त हुई-हुई **ग्रामणीः**=इस इन्द्रिय-समूह का प्रणयन करती है। तू **मा**=मुझे **वर्चसा**=वर्चस् से—प्राणशक्ति से **अभिसिञ्च**=सर्वतः सिक्त कर। २. तू तो **तेजः असि**=तेज-ही-तेज है। **मयि**=मुझमें **तेजः**=तेजस्विता को **धारय**=धारण कर। **रयिः असि**=तू ही वास्तविक धन है। **मे**=मुझमें **रयिम्**=इस ऐश्वर्य को **अधि धेहि**=आधिक्येन स्थापित कर।

भावार्थ—सुरक्षित वीर्य इन्द्रियसमूह का अपने-अपने कार्य में प्रवर्तक है। यह हमारे अन्दर तेजस्विता का धारण करता है—हमें रयीश (रयि+ईश) बनाता है।

ऋषिः—**सविता (पुष्टिकामः)**॥ देवता—**औदुम्बरमणिः**॥ छन्दः—**पञ्चपदाशक्वरी**॥

गृहमेधी

पुष्टिरसि पुष्ट्या मा समङ्ग्धि गृहमेधी गृहपतिं मा कृणु।
औदुम्बरः स त्वमस्मासु धेहि रयिं च नः सर्ववीरं
नि यच्छ रायस्पोषाय प्रतिं मुञ्चे अहं त्वाम्॥ १३॥

१. हे औदुम्बर मणे! तू **पुष्टिः असि**=हमारा पोषण करनेवाली है। तू **मा**=मुझे **पुष्ट्या समङ्ग्धि**=पुष्टि से युक्त कर। तू **गृहमेधी**=इस शरीररूप गृह के साथ मेलवाली है। **मा**=मुझे **गृहपतिं कृणु**=इस शरीररूप गृह का रक्षक बना। सुरक्षित वीर्य ही तो इस शरीर का रक्षण करता है। २. **औदुम्बरः**=तू सब पापों व रोगों से हमें ऊपर उभारनेवाला है। **सः**=वह **त्वम्**=तू **अस्मासु**=हममें **रयिं धेहि**=रयि का धारण कर **च**=और **नः**=हमारे लिए **सर्ववीरम्**=सब वीर सन्तानोंवाली रयि को **नियच्छ**=दे। सुरक्षित वीर्य हमें वीर सन्तानों को प्राप्त कराता है और हमें रयि का ईश बनाता है। हे औदुम्बर! **अहम्**=मैं **त्वाम्**=तुझे **रायस्पोषाय**=धन के पोषण के लिए **प्रतिमुञ्चे**=धारण करता हूँ। वीर्य का संयम करने पर शक्तिशाली इन्द्रियोंवाला होकर मैं धन का सर्जन करनेवाला होता हूँ।

भावार्थ—सुरक्षित वीर्य मुझे पुष्ट करता है—मेरे शरीरगृह का रक्षण करता है—हमें रयि का ईश बनाता है।

ऋषिः—**सविता (पुष्टिकामः)**॥ देवता—**औदुम्बरमणिः**॥ छन्दः—**विराडास्तारपङ्क्तिः**॥

मधुमती सनि

अयमौदुम्बरो मणिर्वीरो वीराय बध्यते।
स नः सनिं मधुमतीं कृणोतु रयिं च नः सर्ववीरं नि यच्छात्॥ १४॥

१. **अयम्**=यह **औदुम्बरः मणिः**=रेतःकणरूप मणि पापों व रोगों से उभारनेवाली है। **वीरः**=यह रोगरूप शत्रुओं को कम्पित करनेवाली है (वि ईर)। **वीराय बध्यते**=यह वीर पुरुष के लिए शरीर में बद्ध की जाती है। २. **सः**=वह मणि **नः**=हमारी **सनिम्**=उपासना (संभजन) को **मधुमतीम्**=अत्यन्त माधुर्यवाला **कृणोतु**=करे। वीर्य के सुरक्षित होने पर यह वीर मनःप्रसाद के साथ प्रभुभजन करनेवाला होता है। यह मणि **नः**=हमारे लिए **सर्ववीरम्**=सन्तानोंवाले **रयिम्**=ऐश्वर्य को **नियच्छात्**=दे।

भावार्थ—सुरक्षित वीर्य रोगों को कम्पित करके दूर भगाता है। हमारी उपासना को मधुर बनाता है और वीर सन्तानों से युक्त धन प्राप्त कराता है।

वीर्यरक्षण द्वारा नीरोग व दीर्घजीवन की कामनावाला 'आयुष्यकामः' अगले दो सूक्तों का ऋषि है। यह 'भृगु' है—वीर्यरक्षण के लिए अपने को तपस्या व ज्ञान की अग्नि में पकाने से यह 'भृगु' है—

३२. [द्वात्रिंशं सूक्तम्]

ऋषिः—**भृगुः (आयुष्कामः)**॥ देवता—**दर्भः**॥ छन्दः—**अनुष्टुप्**॥

शतकाण्ड (दर्भ)

शतकाण्डो दुश्च्यवनः सहस्रपर्ण उत्तिरः। दर्भो य उग्र ओषधिस्तं ते बध्नाम्यायुषे॥ १॥

१. **दर्भः**=शत्रुसंहारक वीर्यरूप मणि **शतकाण्डः**=(काण्ड=arrow) सैकड़ों तीरोंवाली है—

इन तीरों से यह रोगरूप शत्रुओं को विद्ध करती है। **दुश्च्यवनः**=यह शत्रुओं से च्युत नहीं की जाती, **सहस्रपर्णः**=हजारों प्रकार से यह हमारा पालन व पूरण करती है। **उत्तिरः**=यह रोगरूप शत्रुओं को उखाड़ देती है। **दर्भः**=यह वीर्यमणि **यः**=जोकि **उग्रः**=बड़ी तेजस्वी है **ओषधिः**=सब दोषों का दहन करनेवाली है, **ते**=उस ओषधिभूत वीर्य को **ते बध्नामि**=तुझमें बाँधता हूँ। इसे तेरे शरीर में ही सुरक्षित करता हूँ। यह तेरे **आयुषे**=दीर्घजीवन के लिए होती है।

भावार्थ—यह वीर्यमणि सैकड़ों बाणों से रोगरूप शत्रुओं पर प्रहार करती है। रोगों को जला देती है। शरीर में धारण किये जाने पर यह दीर्घजीवन का कारण बनती है।

ऋषिः—**भृगुः (आयुष्कामः)**॥ देवता—**दर्भः**॥ छन्दः—**अनुष्टुप्**॥

न शिरो रोग—न हृद् रोग

नास्य केशान्प्र वपन्ति नोरसि ताडमा घ्नते।
यस्मा अच्छिन्नपर्णेन दर्भेण शर्म यच्छति॥ २॥

१. **यस्मा**=जिसके लिए **अच्छिन्नपर्णेन**=न विनष्ट पालन शक्तिवाली **दर्भेण**=वीर्यमणि से **शर्म**=सुख को **यच्छति**=वे प्रभु देते हैं। रोग **अस्य**=इस पुरुष के **केशान् न प्रवपन्ति**=केशों को छिन्न करनेवाले नहीं होते तथा **न**=न ही **उरसि ताडम्**=छाती पर प्रहार करके **आघ्नते**=इसे आहत करते हैं। २. वीर्य के रक्षित होने पर न ही कोई शिरो-रोग होता है, न ही छाती में किसी प्रकार का विकार होता है।

भावार्थ—शरीर में सुरक्षित वीर्य न किसी शिरो-रोग को होने देता है, न हृद् रोग को।

ऋषिः—**भृगुः (आयुष्कामः)**॥ देवता—**दर्भः**॥ छन्दः—**अनुष्टुप्**॥

ज्ञानाग्नि की दीप्ति, शरीर की दृढ़ता

दिवि ते तूलमोषधे पृथिव्यामसि निष्ठितः।
त्वया सहस्रकाण्डेनायुः प्र वर्धयामहे॥ ३॥

१. हे **ओषधे**=दोषों का दहन करनेवाली वीर्यमणे! **दिवि**=मस्तिष्करूप द्युलोक में **ते**=तेरा **तूलम्**=(तूल पूरणे to fill) पूरण हुआ है। वीर्य की ऊर्ध्वगति होने पर यह वीर्य ज्ञानाग्नि का ईंधन बना है। हे वीर्य! तू **पृथिव्याम्**=इस शरीररूप पृथिवी में **निष्ठितः असि**=निश्चय से स्थित हुआ है। वीर्य ज्ञानाग्नि को दीप्त करता है, तो शरीररूप पृथिवी को दृढ़ बनाता है। २. **सहस्रकाण्डेन**=शत्रुओं के संहार के लिए हज़ारों बाणोंवाले **त्वया**=तुझसे हम **आयुः**=अपने जीवन को **प्रवर्धयामहे**=दीर्घ बनाते हैं।

भावार्थ—वीर्य की ऊर्ध्वगति होने पर यह ज्ञानाग्नि का ईंधन बनता है। यह शरीररूप पृथिवी को दृढ़ बनाता है। शत्रुओं को नष्ट करने के लिए सहस्रों बाण तुझे धारण करके अपने जीवन को दीर्घ बनाते हैं।

ऋषिः—**भृगुः (आयुष्कामः)**॥ देवता—**दर्भः**॥ छन्दः—**अनुष्टुप्**॥

दुर्हाद् का सुहार्द् बन जाना

तिस्रो दिवो अत्यतृणत्तिस्र इमाः पृथिवीरुत।
त्वयाहं दुर्हार्दो जिह्वां नि तृणद्मि वचांसि॥ ४॥

१. हे वीर्यमणे! तू **तिस्रः दिवः**=तीनों प्रकाशों को (द्युलोकों को) **अत्यतृणत्** (तृद् to set free) अन्धकार से मुक्त करती है। **उत**=और **इमाः**=इन **तिस्रः**=तीनों **पृथिवीः**=शरीररूप पृथिवियों

को भी रोगों से मुक्त करती है। 'स्थूल, सूक्ष्म व कारण' भेद से तीन शरीर ही तीन पृथिवियाँ है। वीर्यरक्षण से ये तीनों नीरोग व निर्दोष बनते हैं। इसीप्रकार 'प्रकृति, जीव व परमात्मा' का ज्ञान ही त्रिविध द्युलोक है, वीर्यरक्षण ही इस द्युलोक को अज्ञानान्धकार शून्य करता है। २. हे वीर्य! **त्वया**=तेरे रक्षण के द्वारा **अहम्**=मैं **दुर्हार्दः**=दुष्ट हृदयवाले की **जिह्वाम्**=जिह्वा को तथा **वचांसि**=वचनों को **नितृणद्मि**=समाप्त करता हूँ। वीर्यरक्षक पुरुष व्यवहार में इतना मधुर होता है कि इसके मधुर वचनों से दुष्ट पुरुष भी शान्त हो जाता है। इसका सूत्र होता है 'अक्रोधेन जयेत् क्रोधं, आक्रुष्टः कुशलं वदेत्'। सो दुर्हार्द् पुरुष भी इसके व्यवहार से सुहार्द् बन जाता है।

भावार्थ—वीर्यरक्षण से 'प्रकृति, जीव, परमात्मा' का ज्ञान प्राप्त होता है। 'स्थूल, सूक्ष्म, कारण' शरीरों का स्वास्थ्य प्राप्त होता है तथा वह हमें इतना मधुर बनाता है कि इसके सामने दुष्ट अपनी दुष्टता छोड़ देते हैं।

ऋषिः—**भृगुः (आयुष्कामः)**॥ देवता—**दर्भः**॥ छन्दः—**अनुष्टुप्**॥

सहमान-सहस्वान्

त्वमसि सहमानोऽहमस्मि सहस्वान्।
उभौ सहस्वन्तौ भूत्वा सपत्नान्त्सहीषीमहि॥ ५॥

१. हे शतकाण्ड (शत्रुओं के संहार के लिए सैकड़ों शरोंवाले) वीर्य! **त्वम्**=तू **सहमानः असि**=रोगरूप शत्रुओं का मर्षण करनेवाला है। **अहम्**=मैं भी **सहस्वान् अस्मि**=वासनारूप शत्रु-मर्षण की वृत्तिवाला हूँ। २. इसप्रकार **उभौ**=हम दोनों **सहस्वन्तौ**=शत्रुओं को कुचलनेवाले **भूत्वा**=होकर **सपत्नान्**=इन रोग व वासनारूप शत्रुओं को **सहिषीमहि**=कुचल डालें।

भावार्थ—हम वासनारूप शत्रुओं को कुचलने की वृत्तिवाले बनें। सुरक्षित वीर्य भी शतकाण्ड है—यह रोगों का संहार करता है, अतः मैं वीर्यरक्षण करता हुआ शत्रुओं का पराभव करनेवाला बनूँ।

ऋषिः—**भृगुः (आयुष्कामः)**॥ देवता—**दर्भः**॥ छन्दः—**अनुष्टुप्**॥

अभिमाति-सहन

सहस्व नो अभिमातिं सहस्व पृतनायतः।
सहस्व सर्वान्दुर्हार्दः सुहार्दो मे बहून्कृधि॥ ६॥

१. हे शतकाण्ड! तू **नः**=हमारे **अभिमातिम्**=(पाप्मा वै अभिमातिः तै० २.१.३.५) पापभावों को **सहस्व**=पराभूत कर। **पृतनायतः**=उपद्रव-सैन्य से हमपर आक्रमण करनेवाले रोगों को **सहस्व**=पराभूत कर। २. **सर्वान्**=सब **दुर्हार्दः**=दुष्ट हृदयवालों को **सहस्व**=पराभूत कर तथा **मे**=मेरे **बहून्**=बहुत-से व्यक्तियों को **सुहार्दः**=शुभ हृदयवाला **कृधि**=कर। हमारे घर व समाज के सभी व्यक्ति शुभ हृदयवाले हों।

भावार्थ—वीर्यरक्षण द्वारा हम पापों, रोगों व दुष्ट-हृदयता को दूर करें।

ऋषिः—**भृगुः (आयुष्कामः)**॥ देवता—**दर्भः**॥ छन्दः—**अनुष्टुप्**॥

'दिविष्टम्भ' दर्भमणि

दर्भेण देवजातेन दिवि ष्टम्भेन शश्वदित्।
तेनाहं शश्वतो जनाँ असनं सनवानि च॥ ७॥

१. **देवजातेन**=उस महान् देव प्रभु से उत्पन्न किये गये—प्रभु ने ही तो शरीर में रस-रुधिर आदि के क्रम से इसके उत्पादन की व्यवस्था की है **दिवि ष्टम्भेन**=प्राणायाम द्वारा जिस वीर्य की ऊर्ध्वगति करके मस्तिष्करूप द्युलोक में स्थिरता हुई है **तेन**=उस दिविष्टम्भ (स्तम्भ्) वीर्य से **शश्वत् इत्**=सदा ही निश्चय से **अहम्**=मैं **शश्वतः**=प्लुतगतिवाले (शश् प्लुतगतौ) **जनान्**=लोगों को **असनम्**=प्राप्त करता आया हूँ **सनवानि च**=और भविष्य में भी ऐसे ही लोगों को प्राप्त करूँ। २. जब एक घर में पति-पत्नी प्रभु-स्मरणपूर्वक प्राणायामादि साधनों से शरीर में वीर्य की ऊर्ध्वगतिवाले होते हैं तब उनके घरों में सदा स्फूर्तिमय जीवनवाले सन्तानों की उत्पत्ति होती है।

भावार्थ—हम वीर्य को प्रभु-प्रदत्त सर्वोत्तम वस्तु जानें। प्राणायाम द्वारा शरीर में इसकी ऊर्ध्वगति करें। यह हमें स्फूर्तिमय जीवनवाले सन्तानों को प्राप्त कराएगा।

ऋषिः—**भृगुः (आयुष्कामः)**॥ देवता—**दर्भः**॥ छन्दः—**पुरस्ताद्बृहती**॥

वीर्यरक्षण व सर्वप्रियता

प्रियं मा दर्भ कृणु ब्रह्मराजन्या ∫ भ्यां शूद्राय चार्याय च।
यस्मै च कामयामहे सर्वस्मै च विपश्यते॥ ८॥

१. हे **दर्भ**=रोगों का हिंसन करनेवाले वीर्य! तू **मा**=मुझे **ब्रह्मराजन्याभ्याम्**=ब्राह्मणों व क्षत्रियों के लिए, **शूद्राय च अर्याय च**=शूद्रों के लिए और वैश्यों के लिए, अर्थात् सारे समाज के लिए **प्रियं कृणु**=प्रियकर। वीर्यरक्षण द्वारा मधुर स्वभाव बनता हुआ मैं सर्वप्रिय बनूँ। २. **च**=और **यस्मै**=जिसके लिए हम **कामयामहे**=चाहते हैं, अर्थात् जो हमारे निकट सम्बन्धी हैं उनका भी तू मुझे प्रिय बना **च**=तथा **सर्वस्मै विपश्यते**=बारीकी से सब दोषों को देखनेवालों के लिए भी तू मुझे प्रिय बना। दोषदर्शी—विरोधी वृत्तिवाले मनुष्य भी मेरे प्रति प्रेमवाले बन जाएँ।

भावार्थ—वीर्यरक्षण से स्वभाव में माधुर्य का सञ्चार करता हुआ मैं सम्पूर्ण समाज का, अपने बन्धुओं का व विरोधियों का भी प्रिय बन पाऊँ।

ऋषिः—**भृगुः (आयुष्कामः)**॥ देवता—**दर्भः**॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्**॥

दर्भः 'वरुणः' त्रिलोकी धारकः

यो जायमानः पृथिवीमदृंहद्यो अस्तभ्नादन्तरिक्षं दिवं च।
यं बिभ्रतं ननु पाप्मा विवेद स नोऽयं दर्भो वरुणो दिवा कः॥ ९॥

१. **यः**=जो **जायमानः**=शरीर में प्रादुर्भूत होता हुआ **पृथिवीम्**=इस शरीररूप पृथिवी को **अदृंहत्**=दृढ़ बनाता है। **यः**=जो **अन्तरिक्षम्**=हृदयान्तरिक्ष को **दिवं च**=और मस्तिष्करूप द्युलोक को **अस्तभ्नात्**=थामता है, ऐसा यह दर्भ है। शरीर में सुरक्षित वीर्य शरीर को दृढ़ बनाता है, हृदय को निर्मल तथा मस्तिष्क को दीप्त करता है। २. **यम्**=जिस दर्भ (वीर्यमणि) को **बिभ्रतम्**=धारण करते हुए को **पाप्मा**=पाप व रोग **ननु विवेद**=प्राप्त नहीं करता है, **सः**=वह **अयं दर्भः**=यह दर्भ **वरुणः**=सब पापों व रोगों का वारण करनेवाला है। यह **नः**=हमारे जीवन को **दिवा कः**=प्रकाशमय करता है। यह हमारे जीवन को प्रकाशमय बनाता है।

भावार्थ—शरीर में सुरक्षित वीर्य शरीर को दृढ़, मन को निर्मल व मस्तिष्क को दीप्त बनाता है। यह अपने धारण करनेवाले को निष्पाप बनाता है। पापों व रोगों का निवारण करता हुआ यह जीवन को प्रकाशमय बनाता है।

ऋषिः—**भृगुः (आयुष्कामः)**॥ देवता—**दर्भः**॥ छन्दः—**जगती**॥

सर्वोत्तम औषध

सपत्नहा शतकाण्डः सहस्वानोषधीनां प्रथमः सं बभूव।
स नोऽयं दर्भः परि पातु विश्वतस्तेन साक्षीय पृतनाः पृतन्यतः॥ १०॥

१. यह दर्भ **सपत्नहा**=रोगरूप शत्रुओं को नष्ट करनेवाला है। **शतकाण्डः**=सैकड़ों बाणोंवाला है—इनके द्वारा ही यह रोगरूप शत्रुओं का वेधन करता है। **सहस्वान्**=शत्रुओं को कुचलनेवाले बल से सम्पन्न है। यह **ओषधीनां प्रथमः संबभूव**=ओषधियों में सर्वश्रेष्ठ है। वस्तुतः वीर्य के समान कोई भी औषध नहीं, इसके सुरक्षित होने पर रोगों का आक्रमण होता ही नहीं। आचार्य के शब्दों में यही 'मन्त्र, तन्त्र व यन्त्र' है। २. **सः**=वह **अयं दर्भः**=यह दर्भ **नः**=हमें **विश्वतः**=सब ओर से **परिपातु**=सम्यक् रक्षित करे। **तेन**=उस वीर्यमणि के द्वारा **पृतन्यतः**=उपद्रव-सैन्य से हमपर आक्रमण करनेवाले रोगों की **पृतनाः**=सैन्यों का **साक्षीय**=मैं पराभव करूँ।

भावार्थ—सुरक्षित वीर्य सर्वोत्तम औषध है। यह हमारा सर्वतः रक्षण करता है। रोगों के सब उपद्रव-सैन्य का यह संहार कर देता है।

३३. [त्रयस्त्रिंशं सूक्तम्]

ऋषिः—**भृगुः**॥ देवता—**दर्भः**॥ छन्दः—**जगती**॥

'सहस्रार्घः' दर्भमणि

सहस्रार्घः शतकाण्डः पयस्वानपामग्निर्वीरुधां राजसूयम्।
स नोऽयं दर्भः परि पातु विश्वतो देवो मणिरायुषा सं सृजाति नः॥ १॥

१. **अयं दर्भः**=यह वीर्यरूप मणि **सहस्रार्घः**=हज़ारों मूल्योंवाली है—अत्यन्त क़ीमती है। **शतकाण्डः**=रोगरूप शत्रुओं के वेधन के लिए सैकड़ों बाणोंवाली है। **पयस्वान्**=हमारा प्रशस्त आप्यायन (वर्धन) करनेवाली है। **अपाम्**=प्रजाओं को यह **अग्निः**=आगे ले-चलनेवाला है। **वीरुधाम्**=विशेषरूप से रोगों का निरोध करनेवाली औषधों का यह **राजसूयम्**=राजसूय यज्ञ है। राजसूययज्ञ करनेवाला राजा सर्वोत्तम राजा माना जाता है। इसीप्रकार यह वीर्य रोगनिरोधकों में सर्वश्रेष्ठ है। २. **सः**=वह यह दर्भ **नः**=हमें **विश्वतः परिपातु**=सब ओर से रक्षित करे। यह **देवःमणिः**=प्रकाशमय व रोगों को जीतने की कामना करनेवाली है। यह **नः**=हमें **आयुषा**=दीर्घ आयुष्य से **संसृजाति**=संसृष्ट करती है।

भावार्थ—यह वीर्यमणि देवमणि है। बहुमूल्य है। रोगों को रोकनेवालों की मुखिया है। यह हमें नीरोग बनाकर दीर्घजीवन प्राप्त कराती है।

ऋषिः—**भृगुः**॥ देवता—**दर्भः**॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्**॥

मधुमान्-पयस्वान्

घृतादुल्लुप्तो मधुमान्पयस्वान्भूमिदृंहोऽच्युतश्च्यावयिष्णुः ।
नुदन्त्सपत्नानधरांश्च कृण्वन्दर्भो रोह महतामिन्द्रियेण॥ २॥

१. शरीर में रेतःकणों की ऊर्ध्वगति होकर जब ये ज्ञानाग्नि का ईंधन बनते हैं—सारे रुधिर में व्याप्त हो जाते हैं तब ये अदृष्ट हो जाते हैं। यही इनका 'उल्लोपन' है। **घृतात्**=मलों के क्षरण व ज्ञानदीप्ति के हेतु से **उल्लुप्तः**=शरीर में ऊर्ध्वगति द्वारा अदृष्ट किया हुआ यह दर्भ **मधुमान्**=जीवन को माधुर्यवाला बनाता है। **पयस्वान्**=यह जीवन में प्रशस्त आप्यायन का कारण बनता है।

भूमिदृंहः=यह शरीररूप भूमि को दृढ़ बनाता है। **अच्युतः**=शत्रुओं से च्युत न किया जाता हुआ **च्यावयिष्णुः**=रोगरूप शत्रुओं को च्युत करनेवाला है। २. हे **दर्भ**=वीर्यमणे! **सपत्नान्**=रोगरूप शत्रुओं को परे धकेलता हुआ **च**=और **अधरान् कृण्वन्**=उनको पाँवों तले रोंदता हुआ—पराजित करता हुआ तू **महताम्**=(मह पूजायाम्) इन प्रभु-पूजन करनेवालों के **इन्द्रियेण**=बल के हेतु से **आरोह**=शरीर में ऊर्ध्व गतिवाला हो। शरीर में ऊर्ध्व गतिवाला होता हुआ यह वीर्य सब इन्द्रियों को सबल बनाता है।

भावार्थ—जब शरीर में इस वीर्य की ऊर्ध्वगति होती है और यह रुधिर में व्याप्त होकर अदृष्ट-सा हो जाता है, तब यह जीवन को मधुर बनाता है, शरीर को दृढ़ करता है, रोगों को विनष्ट करता है, एक-एक इन्द्रिय को सशक्त करता है।

ऋषिः—**भृगुः**॥ देवता—**दर्भः**॥ छन्दः—**आर्षीपङ्क्तिः**॥

'पवित्र' दर्भमणि

त्वं भूमिमत्येष्योजसा त्वं वेद्यां सीदसि चारुरध्वरे।
त्वां पवित्रमृषयोऽभरन्त त्वं पुनीहि दुरितान्यस्मत्॥ ३॥

१. हे दर्भ (वीर्यमणे)! **त्वम्**=तू **भूमिम्**=इस शरीररूप भूमि को **ओजसा**=ओजस्विता के साथ **अति एषि**=अतिशयेन प्राप्त होता है। शरीर में प्राप्त होकर तू इसे खूब ओजस्वी बनाता है। **त्वम्**=तू **अध्वरे**=हिंसारहित यज्ञ आदि उत्तम कर्मों में **चारुः**=विचरण करनेवाला होकर **वेद्यां सीदसि**=यज्ञवेदि में आसीन होता है, अर्थात् सुरक्षित वीर्य हमें यज्ञ आदि उत्तम कर्मों में प्रेरित करता है। २. **पवित्रम्**=जीवन को पवित्र बनानेवाले **त्वाम्**=तुझको **ऋषयः अभरन्त**=तत्त्वद्रष्टा ज्ञानी पुरुष अपने में धारण करते हैं। वस्तुतः धारण किया हुआ यह वीर्य ही उन्हें 'ऋषि' बनाता है। **त्वम्**=तू **दुरितानि**=सब दुरितों को **अस्मत्**=हमसे **पुनीहि**=दूर करके हमें पवित्र बना। दुरितों का तू सफ़ाया कर डाल। इन दुरितों को नष्ट करके हमारे जीवनों को पवित्र कर दे।

भावार्थ—सुरक्षित वीर्य शरीर को ओजस्वी बनाता है, हमें यज्ञात्मक पवित्र कर्मों में प्रेरित करता है। दुरितों को दूर करके हमारे जीवनों को ऋषियों का-सा पवित्र जीवन बना देता है।

ऋषिः—**भृगुः**॥ देवता—**दर्भः**॥ छन्दः—**आस्तारपङ्क्तिः**॥

देवानाम् ओजः, अग्रे बलम्

तीक्ष्णो राजा विषासही रक्षोहा विश्वचर्षणिः।
ओजो देवानां बलमुग्रमेतत्तं ते बध्नामि जरसे स्वस्तये॥ ४॥

१. यह दर्भमणि **तीक्ष्णः**=बड़ी तीव्र है—रोगरूप शत्रुओं को बुरी तरह से नष्ट करनेवाली है। **राजा**=यह अपने रक्षक के जीवन को दीप्त बनाती है। **विषासहिः**=रोगों का विशेषरूप से पराभव करनेवाली है। **रक्षोहा**=रोगकृमियों व राक्षसीभावों का विनाश करनेवाली है। **विश्वचर्षणिः**=शरीर में सुरक्षित होने पर सब अंग-प्रत्यंगों को देखनेवाली—उनका यह ध्यान करनेवाली है। २. यह **देवानाम् ओजः**=देववृत्ति के पुरुषों का ओज है। **एतत् उग्रं बलम्**=यह बड़ा तेजस्वी बल है। **तम्**=उस दर्भ-(वीर्य)-मणि को **ते**=तुझे **बध्नामि**=बाँधता हूँ—इसे तेरे शरीर में सुरक्षित करता हूँ, जिससे तू **जरसे**=जराकाल तक दीर्घजीवन को प्राप्त करे तथा **स्वस्तये**=कल्याण का भागी हो।

भावार्थ—शरीर में सुरक्षित वीर्य शत्रुओं के लिए भयंकर है। रोगकृमियों का यह नाश करता है। यही देवों को ओजस्वी बनाता है। इसे धारण करने से कल्याणमय शतवर्ष का जीवन प्राप्त

होता है।

ऋषिः—**भृगुः**॥ देवता—**दर्भः**॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्**॥

सूर्यः इव

दर्भेण त्वं कृणवद् वीर्या ∫णि दर्भ बिभ्रदात्मना मा व्यथिष्ठाः।
अतिष्ठाया वर्चसाधान्यान्त्सूर्यइवा भाहि प्रदिशश्चतस्रः॥ ५॥

१. **दर्भेण**=शरीर में सुरक्षित इस वीर्यमणि से **त्वम् वीर्याणि कृणवत्**=तू शक्तिशाली कर्मों को करनेवाला हो। **दर्भम्**=दर्भ को **आत्मना बिभ्रत्**=अपने में धारण करता हुआ तू **मा व्यथिष्ठाः**=मत व्यथित हो। सुरक्षित वीर्य हमें रोगों से व्यथित नहीं होने देता। २. **अध**=अब **वर्चसा**=वर्चस् के द्वारा **अन्यान् अतिष्ठाय**=औरों से उन्नत स्थिति में होकर तू **चतस्रः प्रदिशा**=चारों दिशाओं को **सूर्यः इव**=सूर्य की भाँति **आभाहि**=आभासित कर डाल। तू सर्वत्र प्रकाश फैलानेवाला हो।

भावार्थ—शरीर में वीर्य को सुरक्षित करके हम शक्तिशाली कर्मों को कर पाते हैं—रोगों से व्यथित नहीं होते। जीवन संघर्ष में आगे बढ़ते हुए सूर्य की भाँति प्रकाश फैलानेवाले होते हैं।

शरीर में सुरक्षित वीर्य से अंग-प्रत्यंग में रसवाला यह 'अङ्गिराः' बनता है। अगले दो सूक्तों का ऋषि 'अङ्गिरा' ही है। यह वीर्य को 'जङ्गिड' नाम से स्मरण करता है 'जङ्गम्यते शत्रून् बाधितुम्'—रोगरूप शत्रुओं को बाधित करने के लिए शरीर में खूब गतिवाला होता है अथवा 'जंगिरति' उत्पन्न हुए-हुए रोगों को निगल जाता है। यह कहता है कि—

३४. [चतुस्त्रिंशं सूक्तम्]

ऋषिः—**अङ्गिराः**॥ देवता—**जङ्गिडो वनस्पतिः**॥ छन्दः—**अनुष्टुप्**॥

जङ्गिड

जङ्गिडो ∫ऽसि जङ्गिडो रक्षितासि जङ्गिडः।
द्विपाच्चतुष्पादस्माकं सर्वं रक्षतु जङ्गिडः॥ १॥

१. हे वीर्य! तू **जङ्गिडः**=(जंगिरति) उत्पन्न हुए-हुए रोगों को निगल जानेवाला **असि**=है। **रक्षिता असि**=तू रक्षक है। सचमुच **जङ्गिडः**=(जयति गिरति) जीतनेवाला व शत्रुओं को निगल जानेवाला है। २. यह **जङ्गिडः**=जङ्गिड नामक वीर्यमणि **अस्माकम्**=हमारे **सर्वम्**=सब **द्विपात् चतुष्पात्**=मनुष्यों व पशुओं को **रक्षतु**=रक्षित करे।

भावार्थ—वीर्य शरीर में गति करता हुआ रोगरूप शत्रुओं का बाधन करता है, उत्पन्न रोगों को नष्ट करता है। इसप्रकार यह हमारा रक्षक है। इसी से इसे 'जङ्गिड' नाम से स्मरण किया गया है।

ऋषिः—**अङ्गिराः**॥ देवता—**जङ्गिडो वनस्पतिः**॥ छन्दः—**अनुष्टुप्**॥

'रोग-शक्ति' क्षय

या गृत्स्यस्त्रिपञ्चाशीः शतं कृत्याकृतश्च ये।
सर्वान्विनक्तु तेजसोऽरसां जङ्गिडस्करत्॥ २॥

१. **याः**=जो **त्रिपञ्चाशीः**='त्रि' तीनों—शरीर, मन और बुद्धि तथा 'पञ्च'—पाँचों कर्मेन्द्रियों व ज्ञानेन्द्रियों व पाँचों प्राणों की शक्ति को '**आशीः**'=खा जानेवाली **गृत्स्यः**=(गृध् अभिकांक्षायाम्)

खाने या पीने की प्रबल कामनावाली पीड़ाएँ हैं, (जैसे भस्मक रोग में) **च**=तथा **ये**=जो **शतम्**=सैकड़ों **कृत्याकृतः**=छेदन-भेदन करनेवाली व्याधियाँ हैं, उन **सर्वान्**=सबको **जङ्गिडः**=यह शरीर में शत्रुबाधन के लिए गतिवाली वीर्यशक्ति **तेजसः विनक्तु**=तेज से पृथक् करे। उनके प्रभाव को हीन कर दे। २. यह जंगिडमणि उनको **अरसान् करत्**=रसरहित—निर्बलकर दे। इस वीर्यशक्ति के कारण उन बिमारियों का प्रभाव जाता रहे, वे निष्प्रभाव हो जाएँ।

भावार्थ—शरीर में विविध व्याधियाँ उत्पन्न हो जाती हैं। उन सबको यह वीर्यशक्ति निष्प्रभाव कर डालती है।

ऋषिः—**अङ्गिराः**॥ देवता—**जङ्गिडो वनस्पतिः**॥ छन्दः—**अनुष्टुप्**॥

कृत्रिम नाद की अरसता

अरसं कृत्रिमं नादमरसाः सप्त विस्रसः।
अपेतो जङ्गिडामतिमिषुमस्तेव शातय॥ ३॥

१. कई रोगों में हर समय कान में 'शूं शूं'-सी ध्वनि होती रहती है। उसे यहाँ 'कृत्रिम नाद' कहा गया है। वीर्यशक्ति के द्वारा **कृत्रिमं नादं अरसम्**=यह कृत्रिम नाद क्षीण हो जाता है तथा शरीर में होनेवाले **सप्त**='दो कानों, दो आँखें, दो नासिका-छिद्र तथा मुख' इन सात से होनेवाले **विस्रसः**=निष्यन्द—रसों का टपकना **अरसाः**=क्षीण हो जाए। २. **जङ्गिड**=हे वीर्यमणे! तू **इतः**=हमारे शरीर से **अमतिम्**=दुर्बुद्धि को व बुद्धि की कमी को इसप्रकार **अपशातय**=सुदूर विनष्ट कर **इव**=जैसेकि **अस्ता**=बाणों को फेंकनेवाला **इषुम्**=बाण को दूर फेंकता है।

भावार्थ—वीर्यशक्ति के सुरक्षित होने पर कानों में यों ही होनेवाली 'शूं शूं' समाप्त हो जाती है, कान आदि से प्रवाहित होनेवाले निष्यन्द रुक जाते हैं, निर्बुद्धिता दूर भाग जाती है।

ऋषिः—**अङ्गिराः**॥ देवता—**जङ्गिडो वनस्पतिः**॥ छन्दः—**अनुष्टुप्**॥

कृत्यादूषण-अरातिदूषण

कृत्यादूषण एवायमथो अरातिदूषणः।
अथो सहस्वाञ्जङ्गिडः प्र ण आयूंषि तारिषत्॥ ४॥

१. **अयम्**=यह जङ्गिडमणि **एव**=निश्चय से **कृत्यादूषणः**=छेदन-भेदन की क्रियाओं को दूषित करनेवाला है। शरीर में रोगजनित छेदन-भेदन को यह समाप्त कर देता है। **अथ उ**=और निश्चय से **अरातिदूषणः**= मन में उत्पन्न होनेवाली अदानवृत्तियों को भी दूषित करता है, अर्थात् वीर्यरक्षण से मनुष्य उदारवृत्ति का बनता है। २. **अथ उ**=अब निश्चय से यह **सहस्वान्**=शत्रुओं को कुचलने के बलवाला **जङ्गिडः**=वीर्यमणि **नः**=हमारे **आयूंषि**=जीवनों को **प्रतारिषत्**=बढ़ानेवाला हो।

भावार्थ—सुरक्षित वीर्य शरीर के रोगों को दूर करता है और मन से राक्षसीभावों को—अदानवृत्तियों को विनष्ट करता है। इसप्रकार यह आधि-व्याधियों को कुचलता हुआ हमारे जीवनों को दीर्घ बनाता है।

ऋषिः—**अङ्गिराः**॥ देवता—**जङ्गिडो वनस्पतिः**॥ छन्दः—**अनुष्टुप्**॥

'विष्कन्ध व संस्कन्ध' दूषण

स जङ्गिडस्य महिमा परि णः पातु विश्वतः।
विष्कन्धं येन सासह संस्कन्धमोज ओजसा॥ ५॥

१. **जङ्गिडस्य**=रोगरूप शत्रुओं के बाधन के लिए शरीर में गति करनेवाले जंगिड (वीर्य) की **सः**=वह **महिमा**=महिमा **नः**=हमें **विश्वतः**=सब ओर से **परिपातु**=रक्षित करे, २. **येन**=जिस महिमा से यह **ओजः**=शक्तिरूप जंगिडमणि **ओजसा**=ओजस्विता के साथ **विष्कन्धं संस्कन्धम्**=विष्कन्ध व संस्कन्ध नामक वात रोगों को **सासह**=पराभूत करता है। 'विष्कन्ध' में स्कन्ध फटते-से प्रतीत होते हैं, 'संस्कन्ध' में कन्धे जुड़-से गये प्रतीत होते हैं। वीर्यशक्ति ठीक होने पर ये रोग भाग जाते हैं।

भावार्थ—शरीर में सुरक्षित वीर्य 'विष्कन्ध व संस्कन्ध' नामक भयंकर वातरोगों को उन्मूलित कर देता है।

ऋषिः—**अङ्गिराः**॥ देवता—**जङ्गिडो वनस्पतिः**॥ छन्दः—**अनुष्टुप्**॥

'अङ्गिराः' जङ्गिडः

त्रिष्ट्वा॑ दे॒वा अ॑जनय॒न्निष्ठि॑तं भूम्या॒मधि॑।
तमु॒ त्वाङ्गि॑रा॒ इति॑ ब्राह्म॒णाः पू॒र्व्या वि॑दुः॥ ६॥

१. **भूम्याम् अधि**=इस पृथिवीरूप शरीर में **निष्ठितम्**=निश्चय से स्थित **त्वा**=तुझको, हे जंगिड! **देवाः**=देववृत्ति के पुरुषों ने **त्रिः**=(त्रिषु लोकेषु अवस्थानाय सा०) शरीर, मन व बुद्धि-रूप पृथिवी, अन्तरिक्ष व द्युलोक, इन तीनों लोकों में स्थित होने के लिए **अजनयन्**=उत्पन्न किया है। जब यह वीर्य (जंगिड) शरीर में सुरक्षित होता है तब यह मन को भी शुद्ध बनाता है और बुद्धि को भी सूक्ष्म करता है। २. हे जंगिड! **तम् उ त्वा**=उस तुझको ही निश्चय से **पूर्व्याः ब्राह्मणाः**=अपना पालन व पूरन करनेवाले ज्ञानी लोग **अङ्गिराः इति**=अंग-प्रत्यंग में रस का संचार करनेवाले के रूप में **विदुः**=जानते हैं। शरीर में सुरक्षित वीर्य सब अंगों को रसमय बनाता है। इससे शरीर में जरावस्था का शीघ्र आक्रमण नहीं होता।

भावार्थ—शरीर में सुरक्षित वीर्य 'शरीर, मन व बुद्धि' तीनों का व्यापन करता है। यह अंग-प्रत्यंग में रस का संचार करता है।

ऋषिः—**अङ्गिराः**॥ देवता—**जङ्गिडो वनस्पतिः**॥ छन्दः—**अनुष्टुप्**॥

परिपाणः सुमंगलः

न त्वा॒ पूर्वा॒ ओष॑धयो॒ न त्वा॑ तर॒न्ति॒ या नवा॑ः।
विबा॑धऽउ॒ग्रो ज॑ङ्गि॒डः प॑रि॒पाणा॑ः सुम॒ङ्ग॑लः॥ ७॥

१. **न**=न तो **त्वा**=तुझे **पूर्वाः ओषधयः**=पुरानी ओषधियाँ और **न त्वा**=न ही तुझे **याः**=जो **नवाः**=नई ओषधियाँ हैं वे **तरन्ति**=तैर पाती है। कई वस्तुएँ पुरानी होकर औषध के दृष्टिकोण से अधिक महत्त्ववाली हो जाती हैं और कईयों में ताज़ेपन में ही अधिक गुण होता है। वे ही यहाँ 'पूर्वाः तथा नवाः' शब्दों से कही गई हैं। इनमें से कोई भी जंगिड (वीर्य) की तुलना नहीं कर पाती। जंगिड इन सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण है। २. यह **विबाधः**=विशेषरूप से रोगरूप शत्रुओं का बाधन करता है। **उग्रः**=अति तेजस्वी है। **जंगिडः**=शत्रु-बाधन के लिए शरीर में खूब ही गति करता है। **परिपाणः**=यह सब ओर से रक्षित करनेवाला है और **सुमंगलः**=उत्तम मंगल का साधन है।

भावार्थ—शरीर में सुरक्षित वीर्य सर्वोत्तम औषध है। यह शत्रुओं का बाधन करता है और हमारा सर्वतः रक्षण करता है।

ऋषिः—**अङ्गिराः**॥ देवता—**जङ्गिडो वनस्पतिः**॥ छन्दः—**अनुष्टुप्**॥

उपदान

अथोपदान भगवो जङ्गिडामितवीर्य।
पुरा त उग्रा ग्रसत उपेन्द्रो वीर्यं ∫ ददौ॥ ८॥

१. **अथ**=अब हे **उपदान**=(दाप् लवने) रोगरूप शत्रुओं का छेदन करनेवाले, **भगवः**=अतिशयित ऐश्वर्यवाले! **अमितवीर्य**=अनन्तशक्तिवाले **जङ्गिड**=वीर्यमणे! **ते**=वे **उग्राः**=अतिप्रबल रोग **ग्रसते**=ग्रस लें, उससे **पुरा**=पहले ही **ते**=तुझे **इन्द्रः**=उस परमैश्वर्यशाली प्रभु ने **वीर्यम् उपददौ**=वीर्य के रूप में दिया है। २. वीर्य की शरीर में स्थापना इसी उद्देश्य से हुई है कि यह रोगों का शिकार न हो जाए।

भावार्थ—वीर्य 'उपदान' है—रोगों का लवन (छेदन) करनेवाला है। इसके सामर्थ्य से प्रबल रोग भी विनष्ट हो जाते हैं। वे रोग मनुष्य को निगल नहीं पाते।

ऋषिः—**अङ्गिराः**॥ देवता—**जङ्गिडो वनस्पतिः**॥ छन्दः—**अनुष्टुप्**॥

अमीवाः-रक्षांसि

उग्र इत्ते वनस्पत इन्द्र ओज्मानमा दधौ।
अमीवाः सर्वाश्चातयं जहि रक्षांस्योषधे॥ ९॥

१. हे जंगिड! तू **इत्**=निश्चय से **उग्रः**=तेजस्वी है। **इन्द्रः**=उस परमैश्वर्यशाली प्रभु ने, हे **वनस्पते**=वनस्पति-विकार वीर्य! **ते**=तुझमें **ओज्मानम्**=ओज को—शक्ति को **आदधौ**=स्थापित किया है। २. हे **ओषधे**=दोषों का दहन करनेवाले वीर्य! तू **सर्वाः**=सब **अमीवाः**=रोगों को **चातयन्**=नष्ट करता हुआ **रक्षांसि**=अपने रमण के लिए औरों का क्षय करनेवाले इन रोगकृमियों को **जहि**=नष्ट कर डाल।

भावार्थ—प्रभु ने वीर्य में अद्भुत शक्ति रक्खी है। यह सब रोगों व रोगकृमियों को विनष्ट कर डालता है।

ऋषिः—**अङ्गिराः**॥ देवता—**जङ्गिडो वनस्पतिः**॥ छन्दः—**अनुष्टुप्**॥

'बलास पृष्ट्यामय' विनाश

आशरीकं विशरीकं बलासं पृष्ट्यामयम्।
तक्मानं विश्वशारदमरसां जङ्गिडस्करत्॥ १०॥

१. **आशरीकम्**=शरीर को सर्वतः हिंसित करनेवाले, **विशरीकम्**=विशेषरूप से शरीर को तोड़नेवाले, **बलासम्**=बल को दूर फेंकनेवाले कफ़ आदि रोग को, **पृष्ट्यामयम्**=पसली व छाती की पीड़ा को, **तक्मानम्**=शरीर को कष्टमय बनानेवाले ज्वर को तथा **विश्वशारदम्**=सब शरीर में चकत्ते-ही-चकत्ते कर देनेवाले रोग को **जङ्गिडः**=यह वीर्यमणि **अरसान्**=निष्प्रभाव **करत्**=कर दे।

भावार्थ—शरीर में सुरक्षित वीर्य 'वात-पित-कफ़' जनित सब विकारों को दूर करता है।

३५. [पञ्चत्रिंशं सूक्तम्]

ऋषिः—**अङ्गिराः**॥ देवता—**जङ्गिडो वनस्पतिः**॥ छन्दः—**अनुष्टुप्**॥

विष्कन्ध दूषण

इन्द्रस्य नाम गृह्णन्त ऋषयो जङ्गिडं ददुः।
देवा यं चक्रुर्भेषजमग्रे विष्कन्धदूषणम्॥ १॥

१. **इन्द्रस्य नाम गृह्णन्तः**=शत्रु-विद्रावक प्रभु के नाम का ग्रहण करते हुए—नाम का उच्चारण करते हुए **ऋषयः**=तत्त्वदर्शी ज्ञानी पुरुषों ने **जङ्गिडम्**=रोगबाधन के लिए शरीर में भृशंगति करनेवाली वीर्यमणि को **ददुः**=(to restore, to return) शरीर में ही फिर स्थापित किया है। विषय-विलास में इसे नष्ट नहीं होने दिया। २. **देवाः**=देववृत्ति के पुरुषों ने **यम्**=जिस जंगिडमणि को **अग्रे**=सर्वप्रथम **विष्कन्धदूषणम्**=अंगों को तोड़नेवाले वातरोग को नष्ट करनेवाला **भेषजं चक्रुः**=औषध बनाया है।

भावार्थ—तत्त्वदर्शी ज्ञानी प्रभु-स्मरणपूर्वक वीर्यरक्षण के लिए यत्नशील होते हैं। देववृत्ति के पुरुष इस वीर्यरक्षण को ही विष्कन्ध आदि रोगों का शामक बताते हैं।

ऋषिः—**अङ्गिराः**॥ देवता—**जङ्गिडो वनस्पतिः**॥ छन्दः—**अनुष्टुप्**॥

परिपाण-अरातिहा

स नो॑ रक्षतु जङ्गि॒डो धन॑पा॒लो धने॑व।
दे॒वा यं च॒क्रुर्ब्रा॑ह्मणाः प॑रि॒पाण॑मराति॒हम्॥ २॥

१. **सः**=वह **जङ्गिडः**=वीर्यमणि **नः**=हमें **रक्षतु**=इसप्रकार रक्षित करे, **इव**=जैसेकि **धनपालः**=एक धनपाल (धनाध्यक्ष) **धना**=धनों का रक्षण करता है। २. यह जङ्गिडमणि वह है **यम्**=जिसको **देवाः ब्राह्मणाः**=देववृत्ति के ज्ञानी पुरुष **परिपाणम्**=अपना सर्वतः रक्षक तथा **अरातिहम्**=शत्रुओं का नाशक **चक्रुः**=बनाते हैं। वीर्यरक्षण का उपाय यही है कि हम देववृत्ति के बनें—यज्ञशेष का सेवन करनेवाले बनें तथा ज्ञान की रुचिवाले हों। अतिभोजन अथवा सांसारिक व्यसन वीर्य का विनाश ही करते हैं।

भावार्थ—वीर्य सर्वमहान् धन है। हम यज्ञशेष का सेवन करते हुए व ज्ञान की रुचिवाला बनते हुए इसका रक्षण करें। यह हमारा रक्षण करेगा और हमारे शत्रुओं का विनाश करेगा।

ऋषिः—**अङ्गिराः**॥ देवता—**जङ्गिडो वनस्पतिः**॥ छन्दः—**पथ्यापङ्क्तिः**॥

सुहार्द्, नकि दुर्हार्द्

दु॒र्हार्द॒ः संघो॑रं॒ चक्षु॒ः पाप॒कृत्वा॑न॒मागम॑म्।
तांस्त्वं स॑हस्रचक्षो॒ प्रतीबो॒धेन॑ नाशय प॒रि॒पाणो॑ऽसि जङ्गि॒डः॥ ३॥

१. **दुर्हार्दः**=दुष्टहृदयवाले पुरुष की **घोरं चक्षुः**=क्रूरतापूर्ण आँख को तथा **पापकृत्वानम्**=पाप को—हिंसादि कर्मों को करनेवाले को **सम् आगमम्**=मैं प्राप्त हुआ हूँ, अर्थात् मेरी वृत्ति क्रूरता व पापवाली बन गई है। २. हे **सहस्रचक्षो**=हज़ारों प्रकार से मेरा ध्यान करनेवाले (to look after) वीर्यमणे! **त्वम्**=तू **तान्**=उन अशुभवृत्तियोंवालों को **प्रतीबोधेन**=जगाने के द्वारा—ज्ञान प्राप्त कराने के द्वारा—नाशय—नष्ट कर दे। तू उन्हें ज्ञान के द्वारा 'सुहार्द् व पुण्यकृत्' बना दे। तू **परिपाणः असि**=सब ओर से रक्षित करनेवाला है। **जङ्गिडः**=(जयति गिरति) पापवृत्तियों को पराजित करनेवाला व इन अशुभ वृत्तियों को खा जानेवाला है।

भावार्थ—सुरक्षित वीर्य हमें नीरोग बनाने के साथ शुभवृत्तियोंवाला भी बनाता है। हम दुर्हार्द् से सुहार्द् बन जाते हैं, पापकृत्वा से पुण्यकृत्।

ऋषिः—**अङ्गिराः**॥ देवता—**जङ्गिडो वनस्पतिः**॥ छन्दः—**निचृत्त्रिष्टुप्**॥

सब ओर से रक्षण

परि॑ मा दि॒वः परि॑ मा पृथि॒वाः पर्य॒न्तरि॑क्षा॒त्परि॑ मा वी॒रुद्भ्यः॑।
परि॑ मा भू॒तात्परि॑ मो॒त भव्या॒द्दिशो॒दिशो॑ जङ्गि॒डः पा॑त्व॒स्मान्॥ ४॥

१. **मा**=मुझे **जङ्गिडः**=यह उपद्रवों को बाधित करनेवाला वीर्य **दिवः**=मस्तिष्करूप द्युलोक में होनेवाले उपद्रव से **परिपातु**=बचाए। इसीप्रकार **पृथिव्याः**=शरीररूप पृथिवी में होनेवाले विकार से मुझे **परि** (पातु)=बचाए। **अन्तरिक्षात्**=हृदयान्तरिक्ष में उत्पन्न हो जानेवाले वासना-विकारों से **परि**=रक्षित करे। यह **मा**=मुझे **वीरुद्भ्यः**=भोजन के रूप में ग्रहण किये गये वनस्पतियों से हो जानेवाले विकारों से **परि** (पातु)=बचाए। २. यह **मा**=मुझे **भूतात्**= उत्पन्न हो चुके विकारों से **परिपातु**=बचाए **उत**=और **मा**=मुझे **भव्यात्**=उत्पन्न हो जाने की आशंकावाले उपद्रवों से **परि**=बचाए। यह जंगिडमणि **अस्मान्**=हमें **दिशःदिशः**=सब दिशाओं से **पातु**=रक्षित करे।

भावार्थ—सुरक्षित वीर्य हमें 'मस्तिष्क, हृदय व शरीर' में सर्वत्र उत्पन्न हो जानेवाले उपद्रवों से रक्षित करता है।

ऋषिः—**अङ्गिराः**॥ देवता—**जङ्गिडो वनस्पतिः**॥ छन्दः—**अनुष्टुप्**॥

विश्वभेषजः

य ऋ॒ष्णवो॑ दे॒वकृ॑ता॒ य उ॒तो व॑वृ॒तेऽन्यः॑।
सर्वा॑स्ता॒न्विश्व॑भेषजोऽर॒सां ज॑ङ्गि॒डस्क॑रत्॥ ५॥

१. **ये**=जो **देवकृताः**=प्राकृतिक शक्तियों (देव—सूर्य, चन्द्र, वायु आदि) से उत्पन्न **ऋष्णवः**=(ऋष् to kill) उपद्रव हमारे शरीरों में हो जाते हैं, **उत**=और **यः**=जो **अन्यः**=अन्य भी कोई उपद्रव **उ**=निश्चय से **ववृते**=प्रवृत्त हो जाता है—अधिक खा लेने आदि गलतियों से उपद्रव हो जाते हैं। **तान् सर्वान्**=उन सब उपद्रवों को यह **जङ्गिडः**=वीर्यमणि **अरसान् करत्**=निष्प्रभाव कर दे। यह वीर्यमणि तो **विश्वभेषजः**=सब उपद्रवों का औषध है।

भावार्थ—शरीर में सुरक्षित वीर्य सब आधिदैविक व आध्यात्मिक कष्टों से हमें बचाता है।

शरीर, मन व मस्तिष्क के दोषों को दूर करके यह व्यक्ति 'ब्रह्मा' बनता है। यह इस वीर्यमणि को 'शतवार' मणि के रूप में स्मरण करता है—शतवर्षपर्यन्त, अर्थात् आजीवन जो वरणीय है और रोगों का निवारण करनेवाली है—

३६. [षट्त्रिंशं सूक्तम्]

ऋषिः—**ब्रह्मा**॥ देवता—**शतवारः**॥ छन्दः—**अनुष्टुप्**॥

दुर्णामचातनः

श॒तवा॑रो अनीनश॒द्यक्ष्मा॒न्रक्षां॑सि तेज॑सा।
आरो॑ह॒न्वर्च॑सा स॒ह म॒णिर्दु॑र्णाम॒चात॑नः॥ १॥

१. यह **शतवारः**=शतसंख्याक रोगों का निवारण करनेवाली 'शतवार' नाम वीर्यमणि **यक्ष्मान्**=रोगों को **अनीनशत्**=नष्ट करती है। **तेजसा**=अपने तेज से **रक्षांसि**=अपने रमण के लिए औरों का क्षय करनेवाले रोगकृमियों को नष्ट करती है। २. **आरोहन्**=शरीर में ऊर्ध्वगतिवाली होती हुई यह **मणिः**=वीर्यमणि **वर्चसा सह**=वर्चस् के साथ **दुर्णामचातनः**=अर्शस् आदि पाप रोगों को नष्ट करनेवाली है।

भावार्थ—शतसंख्याक रोगों का निवारण करने से वीर्य 'शतवार' है। यह रोगों, रोगकृमियों को नष्ट करती है। शरीर में ऊर्ध्वगतिवाला होता हुआ यह 'शतवार' बवासीर आदि पाप-रोगों को नष्ट करता है।

ऋषिः—**ब्रह्मा**॥ देवता—**शतवारः**॥ छन्दः—**अनुष्टुप्**॥

रक्षः, यातुधान्यः, यक्ष्मम्

शृङ्गाभ्यां रक्षो नुदते मूलेन यातुधान्य ऽः।
मध्येन यक्ष्मं बाधते नैनं पाप्मा तत्रति॥ २॥

१. यह 'शतवार' वीर्यमणि **शृङ्गाभ्याम्**=अपने सींगों से—अग्रभागों से **रक्षः नुदते**=रोग-कृमियों व राक्षसीभावों को परे धकेलती है। **मूलेन**=मूल से **यातुधान्यः**=पीड़ा का अधान करनेवाली बिमारियों को दूर करती है और **मध्येन**=अपने मध्यभाग से **यक्ष्मम्**=क्षयरोग को **बाधते**=बाधित करती है। २. शतवार मणि को यदि एक वृक्ष के रूप में चित्रित करें तो वह अपने अग्रभाग से मानो रोगकृमियों को, मूल से पीड़ाकर रोगों को तथा मध्य से राजरोग को दूर करती है। **एनम्**=इसको **पाप्मा**=कोई भी रोग **न अति तत्रति**=आक्रान्त नहीं कर पाता।

भावार्थ—वीर्य 'शतवार' मणि है। यह रोगकृमियों, रोगों व राजरोगों को विनष्ट करती है। रोग इसे आक्रान्त नहीं कर पाते।

ऋषिः—**ब्रह्मा**॥ देवता—**शतवारः**॥ छन्दः—**अनुष्टुप्**॥

अर्भक-महान्-शब्दी

ये यक्ष्मासो अर्भका महान्तो ये च शब्दिनः।
सर्वान्दुर्णाम्नहा मणिः शतवारो अनीनशत्॥ ३॥

१. **ये**=जो **यक्ष्मासः**=रोग **अर्भकाः**=छोटे-छोटे हैं—उत्पन्नमात्र हैं, **महान्तः**=जो बड़े हैं या बढ़ गये हैं, **च**=और **ये**=जो **शब्दिनः**=पीड़ाजनित शब्दों को उत्पन्न कराते हैं, **सर्वान्**=उन सबको यह **शतवारः**=शतसंख्याक रोगों का निवारण करनेवाली मणि **अनीनशत्**=नष्ट करती है। २. यह **मणिः**=वीर्यमणि **दुर्णामहा**=अर्शस् आदि पाप रोगों को विनष्ट करनेवाली है।

भावार्थ—सुरक्षित वीर्य छोटे-बड़े व पीड़ाकारी सब रोगों को दूर करता है। यह अर्शस् आदि पापरोगों का भी निवारक है।

ऋषिः—**ब्रह्मा**॥ देवता—**शतवारः**॥ छन्दः—**अनुष्टुप्**॥

वीरान् अजनयत्, यक्ष्मान् अपावपत्

शतं वीरानजनयच्छतं यक्ष्मानपावपत्।
दुर्णाम्नः सर्वान्हत्वाव रक्षांसि धूनुते॥ ४॥

१. यह शतवार मणि हमें **शतम्**=शतवर्षपर्यन्त—आजीवन **वीरान् अजनयत्**=वीर बनाती है। इसके रक्षण से हम सदा वीर बने रहते हैं। यह **शतं यक्ष्मान्**=सैकड़ों रोगों को **अपावपत्**=सुदूर विनष्ट करनेवाली होती है। २. **सर्वान्**=सब **दुर्णाम्नः**=श्वित्र, दद्रु, पामा आदि दुष्ट रोगों को **हत्वा**=विनष्ट करके **रक्षांसि अवधूनुते**=सब रोगकृमियों को कम्पित करके दूर करती है।

भावार्थ—सुरक्षित वीर्य हमें वीर बनाता है और रोगों को दूर करता है।

ऋषिः—**ब्रह्मा**॥ देवता—**शतवारः**॥ छन्दः—**अनुष्टुप्**॥

हिरण्यशृङ्गः ऋषभः

हिरण्यशृङ्ग ऋषभः शतवारो अयं मणिः।
दुर्णाम्नः सर्वांस्तृड्ढ्वाव रक्षांस्यक्रमीत्॥ ५॥

१. **अयम्**=यह **शतवारः मणिः**=सैकड़ों रोगों का निवारण करनेवाली मणि **हिरण्यशृंगः**=

हितरमणीय व स्वर्णवत् देदीप्यमान अग्रभागवाली है। इन्हीं शृंगों से तो यह सब राक्षसों को दूर भगाती है। वीर्य के सुरक्षित होने पर राक्षसीभाव स्वतः नष्ट हो जाते हैं। यह **ऋषभः**=सब राक्षसीभावों का संहार करनेवाली है (ऋष् to kill)। २. **सर्वान् दुर्णाम्नः**=सब दुष्ट नामवाले अर्शस् आदि रोगों को **तृड्ढ्वा**=हिंसित करके यह **रक्षांसि अवक्रमीत्**=रोगकृमियों को दूर भगा देती है।

भावार्थ—शरीर में सुरक्षित वीर्य 'दीप्त शृंगोंवाले ऋषभ' के समान है—ये इन शृंगों से सब रोगों को दूर भगा देता है।

ऋषिः—**ब्रह्मा**॥ देवता—**शतवारः**॥ छन्दः—**अनुष्टुप्**॥

गान्धर्वाप्सरसां शतम्

शतमहं दुर्णाम्नीनां गन्धर्वाप्सरसां शतम्।
शतं शश्वन्वतीनां शतवारेण वारये॥ ६॥

१. **अहम्**=मैं **दुर्णाम्नीनाम्**=कुष्ठ, दद्रू, पामा, अर्शस् आदि दुष्ट नामवाली बिमारियों के **शतम्**=सौ को **शतवारेण**=इस वीर्यरूप शतवार मणि से **वारये**=दूर करता हूँ। **गन्धर्वाप्सरसाम्**=(गां शरीरभूमिं धारयन्ति, अप्सु रेतः छणेषु सरन्ति) शरीरभूमि को पकड़ लेनेवाली—जड़ जमा लेनेवाली तथा सप्तमधातु (वीर्य) तक पहुँच जानेवाली बिमारियों के **शतम्**=सैकड़ें को इस शतवार मणि से दूर करता हूँ। २. तथा **शश्वन्वतीनाम्**=बारम्बार पीड़ा के लिए प्राप्त होनेवाली ग्रह, अपस्मार आदि व्याधियों के **शतम्**=सैकड़ों को इस मणि के द्वारा दूर करता हूँ।

भावार्थ—सुरक्षित वीर्य अर्शस् आदि रोगों को, शरीर में जड़ पकड़ लेनेवाले रोगों को, वीर्य तक पहुँच जानेवाले रोगों को तथा अपस्मार आदि रोगों को दूर कर देता है।

नीरोग बनकर यह वीर्यरक्षक पुरुष 'अथर्वा' बनता है—न डाँवाडोल होनेवाला। यही अगले सूक्त का ऋषि है—

३७. [सप्तत्रिंशं सूक्तम्]

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**अग्निः**॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्**॥

वर्चः, भर्गो, यशः, सह, ओजो, वयो, बलम्

इदं वर्चो अग्निना दत्तमागन्भर्गो यशः सह ओजो वयो बलम्।
त्रयस्त्रिंशद्यानि च वीर्या ण्यि तान्यग्निः प्र ददातु मे॥ १॥

१. **अग्निना**=उस अग्रणी प्रभु से **दत्तम्**=दिया हुआ **इदं वर्चः**=यह दीप्त तेज **आगन्**=मुझे प्राप्त हो। **भर्गः**=शत्रुओं को भून डालनेवाला तेज, **यशः**=यश, **सहः**=दूसरों को अभिभूत करनेवाला तेज **ओजः**=ओजस्विता—कार्यों को करने का उत्साह **वयः**=नित्ययौवन या गतिशीलजीवन, तथा **बलम्**=दूसरों से अभिभूत न किये जानेवाला सामर्थ्य मुझे प्राप्त हुआ है। २. **च**=और **यानि**=जो **त्रयस्त्रिंशत्**=शरीरस्थ तेतीस देवताओं में प्रत्येक में स्थित होने से तेतीस **वीर्यमणि**=बल हैं, **तानि**=उनको **मे**=मेरे लिए **अग्निः प्रददातु**=ये अग्रणी प्रभु दें।

भावार्थ—प्रभु मुझे 'वर्चस्, भर्ग, यश, सह, ओज, वय और बल' प्राप्त कराएँ। मेरे शरीरस्थ तेतीस-के-तेतीस देव वीर्यवान हों।

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**अग्निः**॥ छन्दः—**आस्तारपङ्क्तिः**॥

इन्द्रियाय, शतशारदाय

वर्च आ धेहि मे तन्वां३ सह ओजो वयो बलम्।
इन्द्रियाय त्वा कर्मणे वीर्या ∫ य प्रति गृह्णामि शतशारदाय॥ २॥

१. हे परमात्मन्! **मे तन्वाम्**=मेरे शरीर में **वर्चः आधेहि**=शत्रुओं के आवर्जक प्रताप को स्थापित कीजिए। **सहः**=शत्रुमर्षक बल को, **ओजः**=ओजस्विता को, **वयः**=नित्य यौवन व पौरुष को तथा **बलम्**=बल को धारण कीजिए। २. हे प्रभो! **त्वा**=आपको मैं **प्रतिगृह्णामि**=हृदयदेश में ग्रहण करने के लिए यत्नशील होता हूँ, जिससे **इन्द्रियाय**=मेरी सब इन्द्रियाँ ठीक से कार्य करनेवाली हों। **कर्मणे**=मैं यज्ञादि कर्मों में प्रवृत्त रहूँ। **वीर्याय**=शक्तिशाली बना रहूँ और **शतशारदाय**=पूरे सौ वर्षों के जीवनवाला होऊँ।

भावार्थ—प्रभु मुझे शक्ति प्राप्त कराएँ। प्रभु-स्मरण से मेरी इन्द्रियाँ सशक्त व पवित्र बनी रहें। मैं यज्ञ आदि कर्मों को करनेवाला बनूँ, वीर्यवान् होऊँ और दीर्घजीवन प्राप्त करूँ।

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**अग्निः**॥ छन्दः—**त्रिपदामहाबृहती**॥

अभिभूयाय-राष्ट्रभृत्याय

ऊर्जे त्वा बलाय त्वौजसे सहसे त्वा।
अभिभूयाय त्वा राष्ट्रभृत्याय पर्यूहामि शतशारदाय॥ ३॥

१. हे प्रभो! मैं **त्वा**=आपको **ऊर्जे**=बल व प्राणशक्ति के लिए **पर्यूहामि**=(परिवहामि) ग्रहण करता हूँ। **बलाय**=बल के लिए **त्वा**=आपको ग्रहण करता हूँ, **ओजसे**=ओजस्विता के लिए तथा **सहसे**=शत्रुमर्षण सामर्थ्य के लिए **त्वा**=आपका ग्रहण करता हूँ। २. **अभिभूयाय**=शत्रुओं का अभिभव करने के लिए **त्वा**=आपका ग्रहण करता हूँ, तथा **राष्ट्रभृत्याय**=अपने राष्ट्र के भरण के लिए और **शतशारदाय**=सौ वर्ष के दीर्घजीवन के लिए आपका धारण करता हूँ।

भावार्थ—प्रभु-स्मरण से 'ऊर्ज्, बल, ओज, सहस्' प्राप्त होता है। हम शत्रुओं का अभिभव करते हुए और राष्ट्र का धारण करते हुए सौ वर्ष का दीर्घजीवन प्राप्त करते हैं।

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**अग्निः**॥ छन्दः—**पुरउष्णिक्**॥

'धात्रे-विधात्रे, समृधे, भूतस्य पतये' यजे

ऋतुभ्यष्ट्वार्तवेभ्यो मादभ्यः संवत्सरेभ्यः।
धात्रे विधात्रे समृधे भूतस्य पतये यजे॥ ४॥

१. हे प्रभो! **ऋतुभ्यः**=ऋतुओं के लिए **त्वा यजे**=मैं आपका पूजन करता हूँ। आपके पूजन से मुझे ऋतुओं की अनुकूलता हो। **आर्तवेभ्यः**=ऋतुओं में उत्पन्न होनेवाले फूल-फलों के लिए मैं आपका उपासन करता हूँ। मुझे उनकी अनुकूलता प्राप्त हो। **मादभ्यः संवत्सरेभ्यः**=महीनों व वर्षों के लिए मैं आपका पूजन करता हूँ। आपका पूजन मेरे मासों व वर्षों को उत्तम व सफल बनाए। २. मैं **धात्रे**=सृष्टि का धारण करनेवाले, **विधात्रे**=सृष्टि का निर्माण करनेवाले, **समृधे**=सब प्रकार के ऐश्वर्योंवाले **भूतस्य पतये**=सब प्राणियों के स्वामी आपके लिए **यजे**=अपना अर्पण करता हूँ। आपने ही मेरे जीवन-रथ का सारथि बनकर इसे लक्ष्य-स्थान पर पहुँचाना है।

भावार्थ—प्रभु-पूजन से हमारे लिए ऋतुओं, मासों व वर्षों की अनुकूलता प्राप्त हो। हम उस प्रभु के प्रति अपना अर्पण करें जोकि 'धाता, विधाता, समृद्ध व भूतपति' है।

सूक्त का ऋषि 'अथर्वा' गुग्गुल आदि पदार्थों का यथायोग करता हुआ स्वस्थ बनता है—

३८. [अष्टात्रिंशं सूक्तम्]

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**गुल्गुलुः**॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्**॥

गुग्गुलु

न तं यक्ष्मा॒ अरु॑न्धते॒ नैनं॑ श॒पथो॑ अश्नुते।
यं भे॑ष॒जस्य॑ गुल्गु॒लोः सु॑र॒भिर्ग॒न्धो अ॑श्नु॒ते॥ १॥

१. **तम्**=उस साधक को **यक्ष्माः**=राजरोग **न अरुन्धते**=नहीं घेरते तथा **एनम्**=इसको **शपथः**=शाप व क्रोध-वचन न **अश्नुते**=नहीं व्यापता, **यम्**=जिसको **भेषजस्य**=औषधभूत (भेषं रोगभयं जयति) रोगभय को जीतनेवाले **गुल्गुलोः**=गुग्गुल का (गुज् स्तेये, गुड रक्षणे) रोगों के अपहरण द्वारा रक्षण करनेवाले इस पदार्थ का **सुरभिः गन्धः**=उत्तम गन्ध **अश्नुते**=व्यापता है (सुष्ठु रभते) यह गन्ध रोगों पर सम्यक् आक्रमण करनेवाला होता है।

भावार्थ—अग्निहोत्र में गुग्गुल की हवि सम्पूर्ण घर को उस गन्ध से व्याप्त कर देती है जोकि रोगों को आक्रान्त करके होताओं को नीरोग व शान्तचित्त बना देती है। यह तो है ही रोगापहारी (गुज स्तेये) तथा रक्षक (गुड रक्षणे)।

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**गुल्गुलुः**॥ छन्दः—**२ चतुष्पदोष्णिक्, ३ प्राजापत्याऽनुष्टुप्**॥

यक्ष्मा-विनाश

विष्व॑ञ्च॒स्तस्मा॒द्यक्ष्मा॑ मृ॒गा अश्वा॑इवेरते।
यद् गु॑ल्गु॒लु सैन्ध॒वं यद्वाप्यासि॑ समु॒द्रिय॑म्॥ २॥
उ॒भयो॑रग्र॒भं नामा॒स्मा अ॑रि॒ष्टता॑तये॥ ३॥

१. **यत्**=जो **गुल्गुलु**=गुग्गुल **सैन्धवम्**=नदी के तट पर उत्पन्न होनेवाला है, **यद् वा**=अथवा जो **समुद्रियम्**=समुद्र के किनारे **अपि असि**=भी उत्पन्न होनेवाला है। **तस्मात्**=उसके प्रयोग से **यक्ष्माः**=रोग **विष्वञ्चः**=विविध दिशाओं में गतिवाले होते हुए **अश्वाः**=मार्गों का शीघ्रता से व्यापन करनेवाले **मृगाः इव**=मृगों के समान **ईरते**=भाग खड़े होते हैं। २. **अस्मै**=इस रोगी के लिए **आरिष्टतातये**=कल्याण के विस्तार के लिए **उभयोः**=सैन्धव व समुद्रिय दोनों ही गुग्गुलों के **नाम अग्रभम्**=स्वरूप (form) को प्रतिपादित करता हूँ।

भावार्थ—गुग्गुल चाहे नदी तट पर उद्भूत हो, चाहे समुद्र तट पर, दोनों ही गुग्गुल यक्ष्मा रोग को भागने में समर्थ हैं।

अगले सूक्त में ऋषि 'भृगु अंगिराः' है—तपस्याग्नि में अपने को परिपक्व करनेवाला—अंग-प्रत्यंग में रस के संचारवाला! यह 'कुष्ठ' औषध के प्रयोग से रोगनाश का प्रतिपादन करता है—

३९. [एकोनचत्वारिंशं सूक्तम्]

ऋषिः—**भृग्वङ्गिराः**॥ देवता—**कुष्ठः**॥ छन्दः—**अनुष्टुप्**॥

कुष्ठ

एतु॑ दे॒वस्त्राय॑माणः॒ कुष्ठो॑ हि॒मव॑त॒स्परि॑।
त॒क्मान॒ं सर्वं॑ नाशय॒ सर्वा॑श्च यातुधा॒न्य॑ ऽः॥ १॥

१. यह **देवः**=रोगों को जीतने की कामनावाला **त्रायमाणः**=हमारा रक्षण करता हुआ

कुष्ठः=(कुष्णाति रोगान्) रोग को **वाहि**=निकाल फेंकनेवाला 'कुष्ठ' **हिमवतःपरि**=हिम-(बर्फ)-वाले प्रदेश से **आ एतु**=हमें प्राप्त हो। २. हे कुष्ठ! तू **तक्मानम्**=जीवन को कष्टमय बनानेवाले **सर्वम्**=सब रोगों को, **च**=और **सर्वाः**=सब **यातुधान्यः**=पीड़ा का आधान करनेवाली बीमारियों को **नाशय**=नष्ट कर दे।

भावार्थ—हिमवाले प्रदेशों से प्राप्त होनेवाला यह कुष्ठ सब ज्वरों व पीड़ाओं को दूर करनेवाला है। संस्कृत में इसके नाम ही 'व्याधिः पारिभाव्यम्' है (विगतः आधिः अनेन, परिभावे साधुः) रोग इससे दूर होता है। यह रोगों को पराजित करने में उत्तम है।

ऋषिः—**भृग्वङ्गिराः**॥ देवता—**कुष्ठः**॥ छन्दः—**पञ्चपदापथ्यापङ्क्तिः**॥

'कुष्ठ, नद्यमारः, नद्यारिषः'

त्रीणि ते कुष्ठ नामानि नद्यमारो नद्यारिषः।
नद्यायं पुरुषो रिषत्। यस्मै परिब्रवीमि त्वा सायंप्रातरथो दिवा॥ २॥

१. हे **कुष्ठ**=रोगों को बाहर निकाल फेंकनेवाले कुष्ठ! **ते**=तेरे **त्रीणि नामानि**=तीन नाम हैं। पहला नाम तो कुष्ठ है ही। दूसरा **नद्यमारः**=नदी के जलों के कारण उत्पन्न होनेवाले मलेरिया आदि रोगों को मारनेवाला तथा तीसरा **नद्यारिषः**=इन नदी-जलों के कारण उत्पन्न होनेवाले रोगों को हिंसित करनेवाला। २. हे **नद्य**=(नद्यानां मारको इति नद्यः सा०) उदकदोषोद्भव रोगों को नष्ट करनेवाले कुष्ठ! **अयं पुरुषः**=यह पुरुष तेरे प्रयोग द्वारा **रिषतः**=रोगों को हिंसित करनेवाला हो। **यस्मै**=जिस पुरुष के लिए मैं **सायंप्रातः अथ उ दिवा**=सायं-प्रातः और दिन में तीन बार **त्वा परिब्रवीमि**=तेरे प्रयोग के लिए कहता हूँ, अर्थात् जो दिन में तीन बार तेरा प्रयोग करता है वह रोगों से हिंसित नहीं होता।

भावार्थ—कुष्ठ औषध विशेषकर जल के दोषों से उत्पन्न रोगों को दूर करनेवाला है। प्रातः-सायं व दिन में इसके प्रयोग से पुरुष रोगों का हिंसन करनेवाला होता है।

ऋषिः—**भृग्वङ्गिराः**॥ देवता—**कुष्ठः**॥ छन्दः—**पञ्चपदापथ्यापङ्क्तिः**॥

जीवला-जीवन्तः

जीवला नाम ते माता जीवन्तो नाम ते पिता।
नद्यायं पुरुषो रिषत्। यस्मै परिब्रवीमि त्वा सायंप्रातरथो दिवा॥ ३॥

१. हे कुष्ठ! **ते माता**=तुझे जन्म देनेवाली यह पृथिवी माता **जीवला नाम**=जीवन देनेवाली होने से 'जीवला' नामवाली है। **ते पिता**=तेरा पालनेवाला यह सूर्य या मेघ भी **जीवन्तः नाम**=जिलानेवाला होने से 'जीवन्त' नामवाला है। २. हे **नद्य**=उदकदोषोद्भव रोगों को नष्ट करनेवाले कुष्ठ! **यस्मै**=जिस पुरुष के लिए **त्वा**=तुझे **सायंप्रातः अथ उ दिवा**=सायं-प्रातः और निश्चय से दिन में तीन बार प्रयोग के लिए **परिब्रवीमि**=कहता हूँ, **अयं पुरुषः**=यह पुरुष **रिषत्**=रोग का हिंसन करनेवाला होता है।

भावार्थ—कुष्ठ औषध की माता पृथिवी 'जीवला' है। इसका पिता मेघ व सूर्य 'जीवन्त' है। इसका तीन बार प्रयोग करनेवाला पुरुष रोगों को हिंसित करनेवाला होता है।

ऋषिः—**भृग्वङ्गिराः**॥ देवता—**कुष्ठः**॥ छन्दः—**षट्पदाजगती**॥

अनड्वान्-व्याघ्रः

उत्तमो अस्योषधीनामनड्वाञ्जगतामिव व्याघ्रः श्वपदामिव।
नद्यायं पुरुषो रिषत्। यस्मै परिब्रवीमि त्वा सायंप्रातरथो दिवा॥ ४॥

१. हे कुष्ठ! तू **ओषधीनाम् उत्तमः असि**=ओषधियों में उसी प्रकार उत्तम है, **इव**=जैसेकि **जगताम् अनड्वान्**=गतिशील गवादि पशुओं में बैल। अन्न आदि का उत्पादन करता हुआ बैल जैसे उपकारक है उसी प्रकार यह कुष्ठ भी हमारा उपकारक है। **इव**=जैसे **श्वपदाम्**=हिंसक पशुओं में **व्याघ्रः**=व्याघ्र उत्तम है, इसी प्रकार ओषधियों में कुष्ठ है। रोगों के प्रति वह भी व्याघ्र के समान क्रूर है। २. हे **नद्य**=उदकदोषोद्भव रोगों को नष्ट करनेवाले कुष्ठ! **यस्मै**=जिस पुरुष के लिए **त्वा**=तुझे **सायंप्रातः अथ उ दिवा**=सायं-प्रातः और निश्चय से दिन में तीन बार प्रयोग के लिए **परिब्रवीमि**=कहता हूँ, **अयं पुरुषः**=यह पुरुष **रिषत्**=तेरे प्रयोग से रोगों को हिंसित करता है।

भावार्थ—कुष्ठ औषध उसी प्रकार उपकारक है जैसे गवादि पशुओं में बैल। यह रोगों के प्रति उसी प्रकार क्रूर है, जैसेकि व्याघ्र। इसका प्रयोक्ता रोगों को हिंसित करनेवाला होता है।

ऋषिः—**भृग्वङ्गिराः**॥ देवता—**कुष्ठः**॥ छन्दः—**सप्तपदाशक्वरी**॥

शाम्बु, आदित्य, विश्वदेव

त्रिः शाम्बुभ्यो अङ्गिरेभ्यस्त्रिरादित्येभ्यस्परि।
त्रिर्जातो विश्वदेवेभ्यः।
स कुष्ठो विश्वभेषजः साकं सोमेन तिष्ठति।
तक्मानं सर्वं नाशय सर्वाश्च यातुधान्य ऽः॥ ५॥

१. **त्रिः**=तीन बार प्रयोग किया हुआ कुष्ठ नामक औषध **शाम्बुभ्यः**=(शम्ब् to go) गतिशील **अंगिरेभ्यः**=यज्ञादि में प्रवृत्त कर्मकाण्डियों के लिए **परिजातः**=सर्वथा होता है। यह औषध उन्हें नीरोग बनाकर उत्तम कर्मों में प्रवृत्त करता है। **त्रिः**=तीन बर प्रयोग किया हुआ **यः आदित्येभ्यः**='प्रकृति, जीव व परमात्मा' के ज्ञान का आदान करनेवाले आदित्यों के लिए होता है। उन्हें नीरोग बनाकर उत्कृष्ट ज्ञानी बनाता है यह **त्रिः**=तीन बार प्रयुक्त हुआ-हुआ **विश्वदेवेभ्यः**=सर्वदेवों के लिए **जातः**=हो जाता है। यह उन्हें नीरोग बनाकर देव बनाता है। कुष्ठ औषध का प्रयोग नीरोगता के द्वारा हमें 'क्रियाशील, ज्ञानी व देववृत्ति का' बनाता है। २. **सः कुष्ठः विश्वभेषजः**=वह कुष्ठ औषध सब रोगों की चिकित्सा है। यह **सोमेन साकं तिष्ठति**=गुणों के दृष्टिकोण से सोम के साथ स्थित होता है। जैसे शरीरस्थ सोम (वीर्य) सर्वौषध है, उसी प्रकार यह कुष्ठ भी सर्वौषध है। हे कुष्ठ! तू **सर्वतक्मानम्**=सब ज्वरों को **नाशय**=नष्ट कर **च**=और **सर्वाः यातुधान्यः**=सब पीड़ा का आधान करनेवाली बीमारियों को नष्ट कर।

भावार्थ—दिन में तीन बार प्रयुक्त हुआ 'कुष्ठ' हमें 'गतिशील, ज्ञानी व देव' बनाता है। यह हमारे 'शरीर, मस्तिष्क व मन' तीनों को नीरोग बनाता है। यह वीर्य के समान ही महिमावाला है। सब रोगों को दूर करता है।

ऋषिः—**भृग्वङ्गिराः**॥ देवता—**कुष्ठः**॥ छन्दः—**अष्टिः**॥

कुष्ठ में अमृत स्थापन

अश्वत्थो देवसदनस्तृतीयस्यामितो दिवि।
तत्रामृतस्य चक्षणं ततः कुष्ठो अजायत।
स कुष्ठो विश्वभेषजः साकं सोमेन तिष्ठति।
तक्मानं सर्वं नाशय सर्वाश्च यातुधान्य ऽः॥ ६॥

१. **इतः**=यहाँ से—पृथिवीलोक से **तृतीयस्याम्**=तीसरे स्थान में स्थित (पृथिवी-अन्तरिक्ष-द्युलोक) **दिवि**=द्युलोक में **अश्वत्थः**=आदित्य (सूर्य) की स्थिति है। **अश्वत्थ**=अग्नि का महान् आश्रय, अर्थात् सूर्य। यह आदित्य **देवसदनः**=देवों का निवासस्थान है। (पृथिवीलोक में मर्त्य, चन्द्रलोक में पितर, सूर्यलोक में देव)। **तत्र**=यहाँ सूर्य में **अमृतस्य चक्षणम्**=अमृत का दर्शन होता है। सूर्य में ही सम्पूर्ण प्राणशक्ति प्रतिष्ठित है। **ततः**=उस सूर्य से ही—सूर्य-किरणों के सम्पर्क से ही **कुष्ठः**=यह कुष्ठ नामक ओषधि **अजायत**=हुई है। २. **सः कुष्ठः विश्वभेषजः०**

भावार्थ—द्युलोकस्थ सूर्य की किरणों के द्वारा कुष्ठ में अमृत का स्थापन होता है। इसी से कुष्ठ विश्वभेषज बन जाता है।

ऋषिः—**भृग्वङ्गिराः**॥ देवता—**कुष्ठः**॥ छन्दः—**अष्टिः**॥

हिरण्यबन्धना नौः

हिरण्ययी नौरचरद्धिरण्यबन्धना दिवि।
तत्रामृतस्य चक्षणं ततः कुष्ठो अजायत।
स कुष्ठो विश्वभेषजः साकं सोमेन तिष्ठति।
तक्मानं सर्वं नाशय सर्वाश्च यातुधान्यः॥ ७॥

१. **दिवि**=द्युलोक में यह सूर्य **हिरण्ययी**=ज्योतिर्मयी **नौ**=नाव ही **अचरत्**=गति कर रही है। द्युलोक समुद्र है तो सूर्य उसमें एक चमकीली नाव है। यह नाव **हिरण्यबन्धना**=हितरमणीय वीर्य (हिरण्यं वै वीर्यम्) के बन्धनवाली है। सभी प्राणशक्ति इस सूर्य में ही है। **तत्र**=वहाँ उस सूर्य में **अमृतस्य चक्षणम्**=अमृत का दर्शन होता है—सारी जीवनीशक्ति यहाँ सूर्य में ही स्थापित है। **ततः**=उस सूर्य से ही **कुष्ठः**=यह कुष्ठ नामक औषध **अजायत**=उत्पन्न हुई है। **सः**=वह कुष्ठ भी विश्वभेषज है०

भावार्थ—द्युलोकस्थरूपी समुद्र में स्थित ज्योतिर्मय नाव के समान इस सूर्य में ही सारी प्राणशक्ति रक्खी है। कुष्ठ में यहीं से यह शक्ति आयी है, अतः कुष्ठ सर्वभेषज है।

ऋषिः—**भृग्वङ्गिराः**॥ देवता—**कुष्ठः**॥ छन्दः—**अष्टिः**॥

पर्वत शिखरों पर

यत्र नावप्रभ्रंशनं यत्र हिमवतः शिरः।
तत्रामृतस्य चक्षणं ततः कुष्ठो अजायत।
स कुष्ठो विश्वभेषजः साकं सोमेन तिष्ठति।
तक्मानं सर्वं नाशय सर्वाश्च यातुधान्यः॥ ८॥

१. **यत्र**=जहाँ **न अवप्रभ्रंशनम्**=नहीं होता नीचे गिरना, अर्थात् जहाँ पर्वतों की बहुत ऊँचाई पर बर्फ पिघलती नहीं, जमी रहती है, **यत्र**=जहाँ **हिमवतः**=इस हिमाच्छादित पर्वत का शिखर है **तत्र**=वहाँ खूब ऊँचाई पर **अमृतस्य**=किरणों में अमृत को लिए हुए सूर्य का जब **चक्षणम्**=प्रकाश होता है, अर्थात् जब उस हिमाच्छादित प्रदेश पर सूर्यकिरणें पड़ती हैं, **ततः**=तब यह **कुष्ठः**=कुष्ठ नामक ओषधि **अजायत**=उत्पन्न होती है। **सः कुष्ठः**=वह कुष्ठ सब रोगों का औषध है०

भावार्थ—कुष्ठ नामक औषध हिमाच्छादित पर्वतों के अत्युच्च शिखरों पर सूर्य प्रकाश के चमकने पर उत्पन्न होती है। यह सर्वौषध है।

ऋषिः—**भृग्वङ्गिराः**॥ देवता—**कुष्ठः**॥ छन्दः—**अनुष्टुप्**॥

'ज्ञानी-ध्यानी-कर्मी'

यं त्वा वेद पूर्व इक्ष्वाको यं वा त्वा कुष्ठ काम्य ऽः।
यं वा वसो यमात्स्यस्तेनासि विश्वभेषजः॥ ९॥

१. हे **कुष्ठ**=कुष्ठ नामक औषध! तू वह है **यम्**=जिस **त्वा**=तुझको **पूर्वः**=अपना पालन व पूरण करनेवाला **इक्ष्वाकः**=(इक्षुं ज्ञानं अकति) ज्ञान की ओर गतिवाला—ज्ञानरुचि पुरुष **वेद**=जानता है या प्राप्त करता है। हे कुष्ठ! **वा**=अथवा **यं त्वा**=जिस तुझको **काम्यः**=प्रभु-प्राप्ति की कामनावाला उत्तम पुरुष प्राप्त करता है। २. **वा**=अथवा **यम्**=जिस तुझको **वसः**=अपने निवास को उत्तम बनानेवाला पुरुष प्राप्त करता है, **यम्**=जिसको **आत्स्यः**=(अत् गमने, षोऽन्तकर्मणि) निरन्तर गति द्वारा बुराइयों का विध्वंस करनेवाला पुरुष प्राप्त करता है। **तेन**=उससे तू **विश्वभेषजः असि**=सब रोगों का औषध है।

भावार्थ—हे कुष्ठ! तेरे प्रयोग से ज्ञानी, प्रभु-प्राप्ति की कामनावाले, अपने निवास को उत्तम बनानेवाले व निरन्तर गति द्वारा पवित्रता का सम्पादन करनेवाले सभी लाभान्वित होते हैं।

ऋषिः—**भृग्वङ्गिराः**॥ देवता—**कुष्ठः**॥ छन्दः—**अनुष्टुप्**॥

'शीर्षलोक, तृतीयक, सदन्दि, हायन'

शीर्षलोकं तृतीयकं सदन्दिर्यश्च हायनः।
तक्मानं विश्वधावीर्याधराञ्चं परा सुव॥ १०॥

१. हे **विश्वधावीर्य**=सब प्रकार के पराक्रमवाले—सब रोगों को आक्रान्त करनेवाले कुष्ठ! तू उस **तक्मानम्**=जीवन को कष्टमय बनानेवाले रोग को **अधराञ्चं परासुव**=नीचे गतिवाला करके दूर भगा दे। मलशोधन के साथ उस रोग का भी सफ़ाया कर दे। २. उस रोग को दूर करदे जोकि **शीर्षलोकम्**=सिर को अपना लोक बनाता है। **तृतीयकम्**=जो ज्वर हर तीसरे दिन आने लगता है। **सदन्दिः**=(सदं दो अवखण्डने) जिसके कारण देह सदा टूटती-सी रहती है। **यः च**=और जो **हायनः**=प्रतिवर्ष नियम से आने लगता है। इन सब रोगों को तू दूर भगा दे।

भावार्थ—कुष्ठ-प्रयोग शिरोवेदना को, तृतीयक ज्वर को, सदा देहभेदक ज्वर को और वार्षिक ज्वर को दूर कर देता है।

जीवन को सर्वथा नीरोग व उत्तम बनानेवाला यह 'ब्रह्मा' है। यही अगले चार सूक्तों का ऋषि है—

४०. [चत्वारिंशं सूक्तम्]

ऋषिः—**ब्रह्मा**॥ देवता—**विश्वेदेवाः, बृहस्पतिः**॥ छन्दः—**परानुष्टुप्त्रिष्टुप्**॥

सरस्वती मन्युमन्तं जगाम

यन्मे छिद्रं मनसो यच्च वाचः सरस्वती मन्युमन्तं जगाम।
विश्वैस्तद्देवैः सह संविदानः सं दधातु बृहस्पतिः॥ १॥

१. **यत्**=जो **मे**=मेरा **मनसः**=मन का **छिद्रम्**=दोष है—मन में विद्याप्राप्ति के लिए उत्साह का न होना ही मन का सर्वमहान् दोष है **च**=और **यत्**=जो **वाचः**=वाणी का दोष है—वेदवाणी का स्वाध्याय न करना ही वाणी का सर्वमहान् दोष है। **तत्**=उस दोष को **विश्वैः देवैः सह**='माता, पिता, आचार्य' आदि सब देवों के साथ **संविदानः**=ऐकमत्य को प्राप्त हुआ-हुआ

बृहस्पतिः=ज्ञान का स्वामी प्रभु **संदधातु**=ठीक करदे। प्रभु उत्तम माता-पिता आदि को प्राप्त कराके हमारे इस दोष को दूर कर दें—छिद्र को भर दें। २. इसप्रकार निर्दोष जीवनवाले बनते हुए हम इस बात का सदा स्मरण रखें कि **सरस्वती**=ज्ञान की अधिष्ठात्री देवता **मन्युमन्तम्** (मन्यु=Sacrifice, Ardour, zeal)=त्याग व तीव्र उत्साहवाले को ही **जगाम**=प्राप्त होती है। मन्युमान् बनते हुए हम इस सरस्वती की आराधना करें। वस्तुतः यही निर्दोष बनने का मार्ग है।

भावार्थ—हमारे मन व वाणी के दोष प्रभु-कृपा से व उत्तम माता-पिता-आचार्य आदि के प्रशिक्षण से दूर हों। हम त्याग व उत्साह की वृत्तिवाले बनकर सरस्वती की आराधना करें।

ऋषिः—**ब्रह्मा**॥ देवता—**विश्वेदेवाः, बृहस्पतिः**॥ छन्दः—**पुरःककुम्मत्युपरिष्टाद्बृहती**॥

सुमेधा वर्चस्वी

मा न आपो मेधां मा ब्रह्म प्र मथिष्टन।
शुष्यदा यूयं स्यन्दध्वमुपहूतोऽहं सुमेधा वर्चस्वी॥ २॥

१. **आपः**=शरीरस्थ रेतःकणो! तुम **नः**=हमारी **मेधाम्**=बुद्धि को **मा**=मत **प्रमथिष्टन**=हिंसित होने दो और इसप्रकार **ब्रह्म**=हमारे ज्ञान को **मा**=मत नष्ट होने दो। ये रेतःकण ही तो ज्ञानाग्नि का ईंधन बनकर बुद्धि व ज्ञान का वर्धन करते हैं। २. **यूयम्**=हे रेतःकणो! तुम हमारे शरीरों में **शुष्यदा**=उत्तम प्रवाहोंवाले होकर **स्यन्दध्वम्**=प्रवाहित होओ। इन रेतःकणों की सदा ऊर्ध्वगति हो और इसप्रकार दीप्त बुद्धि बनकर **उपहूतः**=आचार्यों से उनके समीप बुलाया गया **अहम्**=मैं **सुमेधाः**=उत्तम बुद्धिवाला **वर्चस्वी**=रोगापहारक प्राणशक्तिवाला बनूँ। सुरक्षित वीर्यकण हमें मस्तिष्क में 'सुमेधाः' तथा शरीर में 'वर्चस्वी' बनाते हैं।

भावार्थ—रेतःकणों के शरीर में ही ऊर्ध्वगतिवाला होने से हमारी बुद्धि व ज्ञान हिंसित नहीं होते। हम सुमेधा व वर्चस्वी बनते हैं।

ऋषिः—**ब्रह्मा**॥ देवता—**विश्वेदेवाः, बृहस्पतिः**॥ छन्दः—**बृहतीगर्भाऽनुष्टुप्**॥

मेधा, दीक्षा, तप

मा नो मेधां मा नो दीक्षां मा नो हिंसिष्टं यत्तपः।
शिवा नः शं सन्त्वायुषे शिवा भवन्तु मातरः॥ ३॥

१. **नः**=हमारी **मेधाम्**=मेधा बुद्धि को **मा हिंसिष्टम्**=मत हिंसित करो। **नः**=हमारी **दीक्षाम्**=व्रत-संग्रह को **मा**=मत नष्ट करो और **नः**=हमारा **यत्**=जो **तपः**=तप है उसे **मा**=(हिंसिष्टम्) मत समाप्त करो। हम प्राणायाम करते हुए प्राणसाधना द्वारा 'मेधा, दीक्षा व तप' का रक्षण करें। २. ये 'मेधा, दीक्षा व तप' **नः शिवाः**=हमारे लिए कल्याणकर हों। ये **शं सन्तु**=शान्ति दें, तथा **आयुषे**=प्रशस्त जीवन के लिए हों। ये 'मेधा, दीक्षा व तप' **शिवाः भवन्तु**=कल्याणकर हों। **मातरः**=ये हमारे जीवन का निर्माण करनेवाले हों।

भावार्थ—हम प्राणसाधना द्वारा 'मेधा, दीक्षा व तप' को अपनाएँ। ये हमारे कल्याण, शान्ति, दीर्घ व प्रशस्त जीवन के लिए हों।

सूचना—प्रस्तुत मन्त्र में प्राणसाधना की भावना अगले मन्त्र में आनेवाले 'अश्विना' शब्द से ली गई है। 'हिंसिष्टं' यह द्विवचनात्मक क्रिया 'अश्विना' के 'उद्धृत' करने का संकेत कर रही है।

ऋषिः—**ब्रह्मा**॥ देवता—**विश्वेदेवाः, बृहस्पतिः**॥ छन्दः—**त्रिपदाऽऽर्षीगायत्री**॥

वह प्रेरणा

या नः पीपरद्‌श्विना ज्योतिष्मती तमस्तिरः। ताम‌स्मे रासताम‌षम्॥ ४॥

१. हे **अश्विना**=प्राणापानो! **अस्मे**=हमारे लिए **ताम्**=उस **इषम्**=हृदयस्थ प्रभु की प्रेरणा को **रासताम्**=प्राप्त कराओ, **या**=जो प्रेरणा **नः**=हमें **पीपरत्**=पार प्राप्त कराए, जिस प्रेरणा को सुनते हुए हम भवसागर से पार हो सकें। २. उस प्रेरणा को हम इस प्राणसाधना द्वारा प्राप्त करें जोकि **ज्योतिष्मती**=प्रकाशमयी है और **तमः तिरः**=अन्धकार को हमसे तिरोहित कर देती है।

भावार्थ—प्राणसाधना से अशुद्धि का क्षय होने पर हृदय परिशुद्ध होता है। इस परिशुद्ध हृदय में हम प्रभु-प्रेरणा को सुन पाते हैं। यह प्रभुप्रेरणा प्रकाशमयी होती हुई, अन्धकार को दूर करती हुई, हमें भवसागर से पार प्राप्त कराए।

४१. [एकचत्वारिंशं सूक्तम्]

ऋषिः—**ब्रह्मा**॥ देवता—**तपः**॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्**॥

तप और दीक्षा से 'राष्ट्र, बल व ओज' की उत्पत्ति

भद्रमिच्छन्त ऋषयः स्वर्विद‌स्तपो दीक्षाम‌पनिषेदुरग्रे।
ततो राष्ट्रं बल‌मोज‌श्च जात‌ं तद‌स्मै देवा उप‌संन‌मन्तु॥ १॥

१. **भद्रम् इच्छन्तः**=कल्याण चाहते हुए **ऋषयः**=तत्त्वद्रष्टा पुरुषों ने **स्वर्विदः**=प्रकाश को प्राप्त करते हुए **अग्रे**=सर्वप्रथम **तपः दीक्षाम् उपनिषेदुः**=तप और दीक्षा को प्राप्त किया। २. **ततः**=उस तप और दीक्षा से ही **राष्ट्रम्**=उत्तम राष्ट्र **बलम्**=बल **च**=और **ओजः**=ओजस्विता **जातम्**=उत्पन्न हुई। २. **देवाः**='माता, पिता, आचार्य' आदि देव **अस्मै**=इस युवक सन्तान के लिए भी **ततः**=उस तप और दीक्षा को तथा तप और दीक्षा के द्वारा 'राष्ट्र बल व ओज' को **उपसंनमन्तु**=प्राप्त कराएँ।

भावार्थ—जीवन में तप व दीक्षा के धारण से ही उत्तम राष्ट्र, बल व ओज की उत्पत्ति होती है। जिस राष्ट्र में युवक तप व दीक्षावाले होंगे, वही राष्ट्र उत्तम बनता है।

४२. [द्विचत्वारिंशं सूक्तम्]

ऋषिः—**ब्रह्मा**॥ देवता—**ब्रह्म**॥ छन्दः—**अनुष्टुप्**॥

सर्वयज्ञसाधक ब्रह्म

ब्रह्म होता ब्रह्म यज्ञा ब्रह्मणा स्वरवो मिताः।
अध्वर्युर्ब्रह्मणो जातो ब्रह्मणोऽन्तर्हितं हविः॥ १॥

१. सब पदार्थों में ब्रह्म की शक्ति ही काम करती है। सूर्यादि देवों में उस-उस देवत्व को ब्रह्म ही स्थापित करनेवाले हैं। यज्ञ के सब अंगों को ब्रह्म ही निर्मित करते हैं। ब्रह्म की शक्ति से ही होता आदि ऋत्विज् उस-उस कार्य को कर पाते हैं, अतः मन्त्र में कहते हैं कि **ब्रह्म होता**=ब्रह्म ही होतृकार्य को करनेवाले हैं। **ब्रह्म यज्ञाः**=प्रभु ही सब यज्ञ हैं। **ब्रह्मणा**=प्रभु ने ही **स्वरवः**=यज्ञस्तम्भ **मिताः**=मापपूर्वक बनाये हैं। २. **अध्वर्युः**=यह यज्ञ का प्रेणता अध्वर्यु भी **ब्रह्मणः जातः**=ब्रह्म से ही प्रादुर्भूत किया गया है। **हविः ब्रह्मणः अन्तः हितम्**=सब हवि ब्रह्म के अन्दर ही निहित है।

भावार्थ—यज्ञ के सब उपकरणों व कर्त्ताओं में प्रभु की ही शक्ति काम कर रही है।

ऋषिः—**ब्रह्मा**॥ देवता—**ब्रह्म**॥ छन्दः—**ककुम्मतीपथ्यापङ्क्तिः**॥

ब्रह्मार्पणं ब्रह्म हविः

ब्रह्म स्रुचो घृतवतीर्ब्रह्मणा वेदिरुद्धिता।
ब्रह्म यज्ञस्य तत्त्वं च ऋत्विजो ये हविष्कृतः। शमिताय स्वाहा॥ २॥

१. **घृतवती**=होमार्थ घृत से पूर्ण **स्रुचः**=जुहू, उपभृत् आदि **ब्रह्म**=ब्रह्म ही हैं—इनमें ब्रह्म की ही शक्ति कार्य कर रही है। **ब्रह्मणा**=ब्रह्म ने ही **वेदिः उद्धिता**=वेदि को ऊपर स्थापित किया है २. **च**=और **ब्रह्म**=ब्रह्म ही **यज्ञस्य तत्त्वम्**=यज्ञ का परमार्थिक रूप है। **ये हविकृतः ऋत्विजः**=जो हवि को करनेवाले ऋत्विज् हैं, वे सब ब्रह्म ही हैं—ब्रह्म की ही शक्ति से कार्य करते हैं। **शमिताय**=शान्ति प्राप्त करानेवाले प्रभु के लिए **स्वाहा**=हम अपना अर्पण करते हैं। सब कर्मों का प्रभु में आधान ही प्रभु के प्रति अर्पण है, इसी में शान्ति है। न अभिमान, न अशान्ति। अभिमान होने पर ही फल की इच्छा होती है और अशान्ति उत्पन्न होती है।

भावार्थ—सब उपकरणों व अपने में भी ब्रह्म की शक्ति को कार्य करते हुए अनुभव करके हम कर्तृत्व के अभिमान से ऊपर उठें और इसप्रकार शान्ति प्राप्त करें।

ऋषिः—**ब्रह्मा**॥ देवता—**ब्रह्म**॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्**॥

अंहोमुच्-सुत्रावा

अंहोमुचे प्र भरे मनीषामा सुत्राम्णे सुमतिमावृणानः।
इदमिन्द्र प्रति हव्यं गृभाय सत्याः सन्तु यजमानस्य कामाः॥ ३॥

१. मैं **सुमतिम्**=कल्याणी मति का **आवृणानः**=वरण करता हुआ उस **अंहोमुचे**=पापों से छुड़ानेवाले **सुत्राम्णे**=उत्तम रक्षक प्रभु के लिए **मनीषाम्**=मन का ईश बनानेवाली स्तुति को **आप्रभरे**=समन्तात् सम्पादित करता हूँ। शुभ बुद्धिवाला पुरुष सदा प्रभु-स्तवन करता है। यह प्रभु-स्तवन उसके मन का शासक बन जाता है। उसे प्रभु-स्तवन में ही आनन्द का अनुभव होता है। इस स्तोता को प्रभु पापों से मुक्त करते हैं और उसका सम्यक् त्राण (रक्षण) करते हैं। २. **इन्द्र**=हे परमैश्वर्यशालिन् प्रभो! आप **इमं हव्यं प्रतिगृभाय**=इन हव्यों को स्वीकार कीजिए। हमसे किये जानेवाले व आप में आहित किये जानेवाले ये यज्ञ हमें आपका प्रिय बनाएँ। (ब्रह्मण्याधाय कर्माणि०)। **यजमानस्य**=इस यज्ञशील पुरुष की **कामाः**=कामनाएँ **सत्यः सन्तु**=सदा सत्य हों। यह यजमान कभी असत्य कामनाओं को करनेवाला न हो।

भावार्थ—हम सुमतिवाले बनकर प्रभु-स्तवन करें। प्रभु हमें पापों से मुक्त करेंगे और हमारा रक्षण करेंगे। हम यज्ञशील बनें और सदा सत्य कामनाओंवाले हों।

ऋषिः—**ब्रह्मा**॥ देवता—**ब्रह्म**॥ छन्दः—**जगती**॥

धियः+ओजः

अंहोमुचं वृषभं यज्ञियानां विराजन्तं प्रथममध्वराणाम्।
अपां नपातमश्विना हुवे धिय इन्द्रियेण त इन्द्रियं दत्तमोजः॥ ४॥

१. मैं उस प्रभु को **हुवे**=पुकारता हूँ जोकि **अंहोमुचम्**=पाप से छुड़ानेवाले हैं, **यज्ञियानां वृषभम्**=पूजनीयों में श्रेष्ठ हैं अथवा यज्ञशील पुरुषों पर सुखों का वर्षण करनेवाले हैं, **अध्वराणां प्रथमं विराजन्तम्**=यज्ञों में सबसे प्रथम (मुख्यरूप से) देदीप्यमान होनेवाले हैं और **अपां नपातम्**=हमारे शरीरों में रेतःकणों को नष्ट न होने देनेवाले हैं। २. मैं प्रभु का उपासन करता हुआ **अश्विना हुवे**=इन प्राणापान को भी पुकारता हूँ—प्राणसाधना करता हूँ। हे प्राणापानो! आप

ते इन्द्रियेण=अपने वीर्य के साथ **धियः**=बुद्धियों को तथा **ओजः**=ओजस्विता को **दत्तम्**=दीजिए। प्राणसाधना से ही शरीर में वीर्य की ऊर्ध्वगति होती है, अतः वीर्य को 'प्राणापान का' कहा गया है।

भावार्थ—हम प्रभु-स्तवन करें और प्राणसाधना को अपनाएँ। इससे हमें वीर्य, बुद्धि व ओज प्राप्त होगा।

४३. [त्रिचत्वारिंशं सूक्तम्]

ऋषिः—**ब्रह्मा**॥ देवता—**अग्न्यादयो मन्त्रोक्ताः**॥ छन्दः—**शङ्कुमतीपथ्यापङ्क्तिः**॥

अग्नि-मेधा

यत्र ब्रह्मविदो यान्ति दीक्षया तपसा सह।
अग्निर्मा तत्र नयत्वग्निर्मेधां दधातु मे। अग्नये स्वाहा॥ १॥

१. **यत्र**=जहाँ **ब्रह्मविदः**=ब्रह्मज्ञानी पुरुष **दीक्षया तपसा सह**=व्रतसंग्रह व तप के साथ **यान्ति**=जाते हैं, अर्थात् जिस लोक को ये ब्रह्मज्ञानी प्राप्त करते हैं, **अग्नि**=वह अग्रणी प्रभु **मा**=मुझे **तत्र**=वहाँ **नयतु**=प्राप्त कराए। २. इसी दृष्टिकोण से यह अग्नि प्रभु **मे**=मेरे लिए **मेधाम् दधातु**=बुद्धियों को धारण करे। **अग्नये स्वाहा**=इस अग्नि के लिए मैं अपना अर्पण करता हूँ।

भावार्थ—अग्रणी प्रभु मुझे मेधा प्राप्त कराएँ। मैं दीक्षा व तप को अपनाता हुआ ब्रह्मज्ञानी बनूँ और उत्कृष्ट लोक को प्राप्त करूँ।

ऋषिः—**ब्रह्मा**॥ देवता—**अग्न्यादयो मन्त्रोक्ताः**॥ छन्दः—**शङ्कुमतीपथ्यापङ्क्तिः**॥

वायु-प्राण

यत्र ब्रह्मविदो यान्ति दीक्षया तपसा सह।
वायुर्मा तत्र नयतु वायुः प्राणान्दधातु मे। वायवे स्वाहा॥ २॥

१. **यत्र**=जहाँ **ब्रह्मविदः**=ब्रह्मज्ञानी पुरुष **दीक्षया तपसा सह**=व्रतसंग्रह व तप के द्वारा **यान्ति**=जाते हैं, **वायुः**=निरन्तर गति के द्वारा बुराइयों का संहार करनेवाला प्रभु (वा गतिगन्धनयोः) **मा**=मुझे तत्र **नयतु**=वहाँ प्राप्त कराए। २. इसी दृष्टिकोण से **वायुः**=यह वायुनामक प्रभु **मे**=मेरे लिए **प्राणान् दधातु**=प्राणों का धारण करें। प्राणशक्ति के बिना उत्तम लोकों ने क्या प्राप्त होना? **वायवे स्वाहा**=इस वायु नामक प्रभु के लिए हम अपना अर्पण करते हैं।

भावार्थ—वायु के समान निरन्तर गतिवाले प्रभु प्राणशक्ति दें। इस प्राणशक्ति के होने पर व्रती व तपस्वी बनकर मैं प्रभु को जानूँ और उत्तम लोक को प्राप्त करूँ।

ऋषिः—**ब्रह्मा**॥ देवता—**अग्न्यादयो मन्त्रोक्ताः**॥ छन्दः—**शङ्कुमतीपथ्यापङ्क्तिः**॥

सूर्य-चक्षु

यत्र ब्रह्मविदो यान्ति दीक्षया तपसा सह।
सूर्यो मा तत्र नयतु चक्षुः सूर्यो दधातु मे। सूर्याय स्वाहा॥ ३॥

१. **यत्र**=जहाँ **ब्रह्मविदः**=ब्रह्मज्ञानी पुरुष **दीक्षया तपसा सह**=व्रतसंग्रह व तप के साथ **यान्ति**=जाते हैं, **सूर्यः**=सूर्य के समान देदीप्यमान ज्योति वह ब्रह्म **मा तत्र नयतु**=मुझे वहाँ प्राप्त कराए। २. इसी दृष्टिकोण से **सूर्यः**=यह सूर्यसम दीप्त प्रभु **मे**=मेरे लिए **चक्षुः दधातु**=दर्शनशक्ति को धारण करें। 'चक्षु' से मार्ग को देखता हुआ, मैं मार्ग पर ही चलूँ और उत्तम लोक को प्राप्त करूँ। **सूर्याय**=इस सूर्य नामक प्रभु के लिए हम **स्वाहा**=अपना अर्पण करते हैं।

भावार्थ—सूर्यसम दीप्त प्रभु मुझे दर्शनशक्ति दें। इससे ठीक मार्ग पर चलता हुआ मैं व्रती व तपस्वी बनूँ और ब्रह्मज्ञ बनकर उत्तम लोक को प्राप्त करूँ।

ऋषिः—**ब्रह्मा**॥ देवता—**अग्न्यादयो मन्त्रोक्ताः**॥ छन्दः—**शङ्कुमतीपथ्यापङ्क्तिः**॥

चन्द्र-मन

यत्र ब्रह्मविदो यान्ति दीक्षया तपसा सह।
चन्द्रो मा तत्र नयतु मनश्चन्द्रो दधातु मे। चन्द्राय स्वाहा॥ ४॥

१. **यत्र**=जहाँ **ब्रह्मविदः**=ब्रह्मज्ञानी पुरुष **दीक्षया तपसा सह**=व्रतसंग्रह व तप के साथ **यान्ति**=जाते हैं, **चन्द्रः**=वह आह्लादमय प्रभु **मा**=मुझे **तत्र नयतु**=वहाँ प्राप्त कराएँ। २. इसी दृष्टिकोण से **चन्द्रः**=वे आनन्दमय प्रभु **मे**=मेरे लिए **मनः**=प्रसादयुक्त मन को **दधातु**=धारण करें। प्रसन्न (निर्मल) मन में प्रभु-प्रेरणा को सुनता हुआ, उसपर चलता हुआ, उत्तम लोक को प्राप्त करूँ। **चन्द्राय स्वाहा**=इस आनन्दमय प्रभु के लिए मैं अपना अर्पण करता हूँ।

भावार्थ—आनन्दमय प्रभु मुझे प्रसन्न मन को प्राप्त कराएँ। इस निर्मल मन में प्रभु-प्रेरणा को सुनता हुआ मैं उत्तम मार्ग का आक्रमण करूँ। व्रती व तपस्वी बनकर उत्तम लोक को प्राप्त करूँ। इस आनन्दमय प्रभु के प्रति मैं अपना अर्पण करता हूँ।

ऋषिः—**ब्रह्मा**॥ देवता—**अग्न्यादयो मन्त्रोक्ताः**॥ छन्दः—**शङ्कुमतीपथ्यापङ्क्तिः**॥

सोम-पय

यत्र ब्रह्मविदो यान्ति दीक्षया तपसा सह।
सोमो मा तत्र नयतु पयः सोमो दधातु मे। सोमाय स्वाहा॥ ५॥

१. **यत्र**=जहाँ **ब्रह्मविदः**=ब्रह्मज्ञानी पुरुष **दीक्षया तपसा सह**=व्रतसंग्रह व तप के साथ **यान्ति**=जाते हैं, **सोमः**=वे शान्त प्रभु **मा**=मुझे **तत्र नयतु**=यहाँ प्राप्त कराएँ। २. इसी दृष्टिकोण से **सोमः**=वे शान्त प्रभु **मे**=मेरे लिए **पयः**=आप्यायन (वृद्धि) को **दधातु**=धारण करें। वस्तुतः 'सोम' शरीर में वीर्य का नाम है। इस वीर्य के रक्षण से ही सब प्रकार की वृद्धि होती है। प्रभु वीर्य के पुञ्ज हैं—सोम हैं। इस **सोमाय**=वीर्यस्वरूप प्रभु के लिए **स्वाहा**=हम अपना अर्पण करते हैं।

भावार्थ—वे सोम प्रभु मेरा आप्यायन करें। प्रबुद्ध शक्तियोंवाला मैं व्रत व तप को अपनाता हुआ उत्तम लोक को प्राप्त करूँ।

ऋषिः—**ब्रह्मा**॥ देवता—**अग्न्यादयो मन्त्रोक्ताः**॥ छन्दः—**शङ्कुमतीपथ्यापङ्क्तिः**॥

इन्द्र-बल

यत्र ब्रह्मविदो यान्ति दीक्षया तपसा सह।
इन्द्रो मा तत्र नयतु बलमिन्द्रो दधातु मे। इन्द्राय स्वाहा॥ ६॥

१. **यत्र**=जहाँ **ब्रह्मविदः**=ब्रह्मज्ञानी पुरुष **दीक्षया तपसा सह**=व्रतसंग्रह व तप के साथ **यान्ति**=प्राप्त होते हैं, **इन्द्रः**=वह सर्वशक्तिमान् प्रभु **मा**=मुझे **तत्र नयतु**=वहाँ प्राप्त कराए। २. इसी दृष्टिकोण से **इन्द्रः**=सर्वशक्तिमान् प्रभु **मे**=मेरे लिए **बलम्**=बल को **दधातु**=धारण करें। इस **इन्द्राय**=सर्वशक्तिमान् प्रभु के लिए **स्वाहा**=हम अपना अर्पण करते हैं।

भावार्थ—सर्वशक्तिमान् प्रभु मुझे बल दें। मैं सबल होता हुआ व्रती व तपस्वी बनकर उत्तम लोक को प्राप्त करूँ।

ऋषिः—**ब्रह्मा**॥ देवता—**अग्न्यादयो मन्त्रोक्ताः**॥ छन्दः—**शङ्कुमतीपथ्यापङ्क्तिः**॥

आपः-अमृतम्

यत्र ब्रह्मविदो यान्ति दीक्षया तपसा सह।
आपो मा तत्र नयन्त्वमृतं मोप तिष्ठतु। अद्भ्यः स्वाहा॥ ७॥

१. **यत्र**=जहाँ **ब्रह्मविदः**=ब्रह्मज्ञानी पुरुष **दीक्षया तपसा सह**=व्रतसंग्रह व तप के साथ **यान्ति**=जाते हैं, **आपः**=वह सर्वव्यापक प्रभु **मा**=मुझे **तत्र नयन्तु**=वहाँ ले-चले। २. उस सर्वव्यापक प्रभु की व्यापकता के स्मरण से **अमृतम्**=अमृतत्व—विषयों के पीछे मरते न फिरना **मा उपतिष्ठतु**=मुझे प्राप्त हो। मैं **अद्भ्यः स्वाहा**=उस सर्वव्यापक प्रभु के प्रति अपना अर्पण करता हूँ।

भावार्थ—सर्वव्यापक प्रभु का स्मरण मुझे 'विषय-विलास के पीछे मरते रहने' की वृत्ति से ऊपर उठाए। मुझे दीक्षित व तपस्वी बनाए।

ऋषिः—**ब्रह्मा**॥ देवता—**अग्न्यादयो मन्त्रोक्ताः**॥ छन्दः—**शङ्कुमतीपथ्यापङ्क्तिः**॥

ब्रह्मा-ब्रह्म (ज्ञान)

यत्र ब्रह्मविदो यान्ति दीक्षया तपसा सह।
ब्रह्मा मा तत्र नयतु ब्रह्मा ब्रह्म दधातु मे। ब्रह्मणे स्वाहा॥ ८॥

१. **यत्र**=जहाँ **ब्रह्मविदः**=ब्रह्मज्ञानी पुरुष **दीक्षया तपसा सह**=व्रतसंग्रह व तप के साथ **यान्ति**=जाते हैं, **ब्रह्मा**=वह ज्ञानस्वरूप प्रभु **मा**=मुझे **तत्र नयतु**=वहाँ ले-चले। २. इसी दृष्टिकोण से **ब्रह्मा**=वे सर्वज्ञ प्रभु **मे**=मेरे लिए **ब्रह्म दधातु**=ज्ञान को धारण करें। **ब्रह्मणे स्वाहा**=उस सर्वज्ञ प्रभु के प्रति मैं अपना अर्पण करता हूँ।

भावार्थ—मैं सर्वज्ञ प्रभु के स्मरण से ज्ञानरुचि बनकर स्वाध्यायपूर्वक ज्ञान प्राप्त करूँ और दीक्षित व तपस्वी बनकर उत्तम लोक का भागी बनूँ।

४४. [चतुश्चत्वारिंशं सूक्तम्]

ऋषिः—**भृगुः**॥ देवता—**आञ्जनम्**॥ छन्दः—**अनुष्टुप्**॥

शम्+अभयम्

आयुषोऽसि प्रतरणं विप्रं भेषजमुच्यसे।
तदाञ्जन त्वं शन्ताते शमापो अभयं कृतम्॥ १॥

१. गत सूक्त के मन्त्रों के अनुसार 'दीक्षा व तप' में चलनेवाले व्यक्ति शरीर में शक्ति का रक्षण कर पाते हैं। यह वीर्यशक्ति ही यहाँ 'आञ्जन' शब्द से कही गई है। (आ अंज्=to go, to shine, to decorate) यह शरीर में चारों ओर गतिवाला होता है, शरीर में यही सर्वाधिक शोभावाली धातु है, शरीर में सुरक्षित होकर यह शरीर को 'शक्ति, पवित्रता व दीप्ति' से अलंकृत करती है। हे **आञ्जन**=वीर्यमणे! तू **आयुषः प्रतरणम् असि**=आयु का बढ़ानेवाला है। **विप्रम्**=विशेषरूप से हमारा पूरण करनेवाला है। **भेषजम् उच्यसे**=सब रोगों को दूर करने से तू औषध कहलाता है। २. **तत्**=अतः हे **शंताते**=शरीर में रोगविनाश द्वारा शान्ति का विस्तार करनेवाले (आप् व्याप्तौ) वीर्यकणों (आपःरेतो भूत्वा०) आपके द्वारा **अभयम्**=निर्भयता **कृतम्**=की गई है। शरीर में वीर्यकणों के व्याप्त होने पर रोगों का भय नहीं रहता।

भावार्थ—शरीर में सुरक्षित वीर्य आयु को बढ़ाता है, कमियों को दूर करता है, सब रोगों

का औषध है। शान्ति और अभय को प्राप्त कराता है।

ऋषिः—**भृगुः** ॥ देवता—**आञ्जनम्** ॥ छन्दः—**अनुष्टुप्** ॥

हरिमा, जायान्य, अङ्गभेद, विसल्पक

यो हरिमा जायान्योऽङ्गभेदो विसल्पकः।
सर्वं ते यक्ष्ममङ्गेभ्यो बहिर्निर्हन्त्वाञ्जनम्॥ २॥

१. **यः**=जो **हरिमा**=हरिद् (पीले-से) वर्ण का पाण्डु नामक रोग है। **जायान्यः**=(जै क्षये) क्षीणता की ओर ले-जानेवाला क्षयरोग है। **अङ्गभेदः**=वातविकार से अंगों का टूटना है। **विसल्पकः**=विविध रूप से सरणशील व्रणविशेष (ऐग्ज़िमा) है। **आञ्जनम्**=यह वीर्यमणि **सर्वं यक्ष्मम्**=सब रोगों को **ते अङ्गेभ्यः**=तेरे अंगों से **बहिः निर्हन्तु**=बाहर निकाल दे।

भावार्थ—सुरक्षित वीर्य पीलिया, क्षय, अंगभेद व त्वग्रोगों को विनष्ट करनेवाला है।

ऋषिः—**भृगुः** ॥ देवता—**आञ्जनम्** ॥ छन्दः—**अनुष्टुप्** ॥

नीरोगता, स्फूर्ति व निष्पापता

आञ्जनं पृथिव्यां जातं भद्रं पुरुषजीवनम्।
कृणोत्वप्रमायुकं रथजूतिमनागसम्॥ ३॥

१. **आञ्जनम्**=शरीर को 'शक्ति, पवित्रता व दीप्ति' से अलंकृत करनेवाली यह वीर्यमणि **पृथिव्याम्**=इस शरीररूप पृथिवी में **जातम्**=उत्पन्न होती है। **भद्रम्**=यह हमारा कल्याण करनेवाली है। **पुरुषजीवनम्**=यह हमारे जीवन को पौरुषयुक्त करती है। २. यह हमारे लिए **अप्रमायुकं कृणोतु**=अमरणशीलता करे—हम सदा रोगी न बने रहें। यह **रथजूतिम्** (कृणोतु)=शरीररूप रथ के वेग को करे, अर्थात् हमारे शरीर-रथ को स्फूर्तिसम्पन्न बनाए, **अनागसम्**=निष्पापता को करे।

भावार्थ—सुरक्षित वीर्य 'नीरोगता-स्फूर्ति व निष्पापता' का साधक होता है। यह हमारे जीवन को पौरुष-सम्पन्न करता हुआ सुखमय बनाता है।

ऋषिः—**भृगुः** ॥ देवता—**आञ्जनम्** ॥ छन्दः—**चतुष्पदाशङ्कुमत्युष्णिक्** ॥

प्राण-असु-निर्ऋति

प्राणं प्राणं त्रायस्वासो असवे मृड। निर्ऋते निर्ऋत्या नः पाशेभ्यो मुञ्च॥ ४॥

१. यह आञ्जन (वीर्य) प्राणशक्ति का रक्षक होने से यहाँ 'प्राण' कहलाया है। बुद्धि को दीप्त करने के कारण 'असु' (प्रज्ञा नि० १०.३४) कहा गया है तथा नितरां रमण करनेवाला होने से 'निर्ऋति' नामवाला हुआ है (ऋ गतौ)। हे **प्राण**=प्राणशक्ति के रक्षक वीर्य! **प्राणं त्रायस्व**=तू हमारे प्राण का रक्षण कर। **असो**=हे प्रज्ञा के सम्पादक वीर्य! तू **असवे मृड**=हमारी बुद्धि के लिए सुख देनेवाला हो। २. **निर्ऋते**=शरीर में नितरां रमण करनेवाले वीर्य! तू **नः**= हमें **निर्ऋत्याः** (नृ हिंसायाम्)=दुर्गति के **पाशेभ्यः**=पाशों से **मुञ्च**=मुक्त कर। सुरक्षित वीर्य सब दुर्गतियों को दूर करता है।

भावार्थ—सुरक्षित वीर्य प्राणशक्ति का रक्षण करता है, बुद्धि को तीव्र करता है और दुर्गतियों को दूर करता है।

ऋषिः—**भृगुः** ॥ देवता—**आञ्जनम्** ॥ छन्दः—**त्रिपदानिचृद्विषमागायत्री** ॥

'सिन्धुगर्भ, विद्युत्-पुष्प'

सिन्धोर्गर्भोऽसि विद्युतां पुष्पम्। वातः प्राणः सूर्यश्चक्षुर्दिवस्पयः ॥ ५ ॥

१. **सिन्धोः गर्भः असि**=हे आञ्जन (वीर्यमणे)! तू सिन्धु—ज्ञानसमुद्र का अपने में धारण करनेवाला है। सुरक्षित वीर्य ही ज्ञानाग्नि का ईंधन बनता है। **विद्युताम्**=विशिष्ट दीप्तियों का तू **पुष्पम्**=विकासक है। वीर्य के सुरक्षित होने पर तेजस्विता टपकती है, अंग-प्रत्यंग पुष्ट हो जाता है। २. यह सुरक्षित वीर्य **वातः**=(वा गतौ) हमें गतिशील बनाता है। **प्राणः**=यह हमारा प्राण है। **सूर्यः**=यह जीवन-गगन में ज्ञान-सूर्य का उदय करता है। **चक्षुः**=मार्गदर्शक बनता है अथवा चक्षु की शक्ति को बढ़ाता है। यह **दिवः पयः**=ज्ञान का आप्यायन करनेवाला है।

भावार्थ—सुरक्षित वीर्य ज्ञान का गर्भ है। तेजस्विता का पोषक है। यह रक्षक को गतिशील बनाता है, उसकी प्राणशक्ति को बढ़ाता है, उसमें ज्ञान-सूर्य को उदित करता है, चक्षुशक्ति को बढ़ाता है। ज्ञान का आप्यायन करनेवाला है।

ऋषिः—**भृगुः** ॥ देवता—**आञ्जनम्** ॥ छन्दः—**अनुष्टुप्** ॥

'त्रै-ककुदम्'

देवाञ्जन त्रैककुदं परि मा पाहि विश्वतः।
न त्वा तरन्त्योषधयो बाह्याः पर्वतीया उत ॥ ६ ॥

१. हे **देवाञ्जन**=दिव्य गुण-सम्पन्न वीर्यमणे! अथवा प्रभु को हृदयदेश में प्रकाशित करनेवाले आञ्जन! तू **त्रै-ककुदम्**=तीनों लोकों में सर्वश्रेष्ठ मणि है। मुझे तीनों लोकों के शिखर पर पहुँचानेवाला है। पृथिवीरूप शरीर में मुझे स्वस्थ, अन्तरिक्षरूप हृदय में मुझे पवित्र तथा द्युलोकरूप मस्तिष्क में मुझे दीप्त बनाता है। तू **मा**=मुझे **विश्वतः परिपाहि**=सब ओर से रक्षित कर। २. **त्वा**=तुझे यह **बाह्याः**=बाहर की ओषधियाँ **उत**=और **पर्वतीयाः**=पर्वतों पर होनेवाली **ओषधयः**=ओषधियाँ भी **न तरन्ति**=नहीं लाँघ सकतीं, अर्थात् तू ही सर्वोत्तम औषध है।

भावार्थ—शरीर में सुरक्षित वीर्य हृदय में प्रभु को प्रकाशित करनेवाला है। यह त्रिलोकी में सर्वश्रेष्ठ वस्तु है। यही सर्वोत्तम औषध है। कोई भी बाह्य औषध इसकी तुलना नहीं कर सकती।

ऋषिः—**भृगुः** ॥ देवता—**आञ्जनम्** ॥ छन्दः—**अनुष्टुप्** ॥

'अमीवाः-अभिभाः' (नाशयत्)

वी३दं मध्यमवासृपद्रक्षोहामीवचातनः।
अमीवाः सर्वाश्चातयन्नाशयदभिभा इतः ॥ ७ ॥

१. **इदम्**=यह शरीर को तेजस्विता से दीप्त करनेवाली 'आञ्जन-(वीर्य)-मणि' **मध्यं वि अवसृपत्**=शरीर के मध्यभाग में विशेषरूप से गतिवाली होती है। यह **रक्षोहा**=रोगकृमियों का हनन करती है, **अमीवचातनः**=रोगों को विनष्ट करती है। २. यह **सर्वाः अमीवाः चातयन्**=सब रोगों का विनाश करती हुई **इतः**=यहाँ से **अभिभाः**=हमें अभिभूत करनेवाले विषय-विकारों को **नाशयत्**=नष्ट करे। शरीर से रोगों को दूर करे, मन से वासनाओं को।

भावार्थ—शरीर में ही गतिवाला होता हुआ वीर्य शरीर के रोगों की भाँति मानस विकारों को भी नष्ट करता है।

ऋषिः—**भृगुः** ॥ देवता—**आञ्जनम्, वरुणः** ॥ छन्दः—**अनुष्टुप्** ॥

अनृत-परिमुक्ति

ब॒ह्वी३॒दं रा॑जन्वरु॒णानृ॑तमाह॒ पूरु॑षः।
तस्मा॑त्सहस्त्रवीर्य मु॒ञ्च नः॒ पर्यं॑हसः॥ ८॥

१. हे **राजन्**=जीवन को दीप्त करनेवाले तथा **वरुण**=आधि-व्याधियों का निवारण करनेवाले आञ्जन (वीर्यमणे)! **पूरुषः**=मनुष्य **इदं बहु अनृतम् आह**=प्रातः से सायं तक बहुत ही झूठों को बोल जाता है। मनुष्य का जीवन विषय-प्रलोभनों से अनृतमय हो जाता है। २. हे **सहस्त्रवीर्य**=अनन्त पराक्रमयुक्त आञ्जनमणे! शरीर में सुरक्षित हुई-हुई तू **नः**=हमें **तस्मात् अंहसः**=उस सब पाप से **परिमुञ्च**=सर्वथा मुक्त कर।

भावार्थ—सुरक्षित वीर्य जीवन को दीप्त करता है। वासनाओं का निवारण करता है। यह हमें पापों से मुक्त करे।

ऋषिः—**भृगुः** ॥ देवता—**आञ्जनम्** ॥ छन्दः—**अनुष्टुप्** ॥

'आपः, अघ्न्या, वरुण'

यदापो॒ अ॒घ्न्या इति॒ वरु॒णेति॒ तदू॑चिम।
तस्मा॑त्सहस्त्रवीर्य मु॒ञ्च नः॒ पर्यं॑हसः॥ ९॥

१. हे आञ्जन मणे (वीर्य)! तू **आपः**=शरीर में सर्वत्र व्याप्त होनेवाला है। **अघ्न्याः इति**=हे वीर्यकणो! तुम अहन्तव्य हो—न नष्ट करने योग्य हो अतः 'अघ्न्या' **इति**=इस नामवाले हो। **'वरुण इति'**=सब 'आधि-व्याधियों का निवारण करनेवाले' होने से तुम्हें वरुण नाम से **ऊचिम**=कहते हैं। २. **तस्मात्**=उस कारण से—'वरुण' होने से हे **सहस्त्रवीर्य**=अनन्त शक्तिवाली वीर्यमणे! तू **नः**=हमें **अंहसः**=पापों से **परिमुञ्च**=सर्वथा मुक्तकर।

भावार्थ—शरीर में व्याप्त होने से वीर्य 'आपः' कहलाता है। न नष्ट करने योग्य होने से यह 'अघ्न्या' है। पापों व कष्टों का निवारण करने से यह 'वरुण' है।

ऋषिः—**भृगुः** ॥ देवता—**आञ्जनम्, वरुणः** ॥ छन्दः—**अनुष्टुप्** ॥

मित्र और वरुण

मि॒त्रश्च॑ त्वा॒ वरु॑णश्चानुप्रेय॑तुराञ्जन। तौ त्वा॑नुग॒त्य॑ दू॒रं भो॒गाय॒ पुन॒रोह॑तुः॥ १०॥

१. हे **आञ्जन**=शरीर को नीरोगता व निष्पापता से अलंकृत करनेवाले वीर्य! **मित्रः च वरुणः च**=मित्र और वरुण—स्नेह व निर्द्वेषता के भाव **त्वा अनुप्रेयतुः**=तेरे पीछे गतिवाले होते हैं। वीर्य का रक्षण होने पर स्नेह व निर्द्वेषता का हमारे जीवनों में विकास होता है। २. **तौ**=वे स्नेह व निर्द्वेषता के भाव **त्वा अनुगत्य**=तेरा अनुगमन करके **दूरं भोगाय**=बहुत दूर तक वास्तविक आनन्द की प्राप्ति के लिए **पुनः आ ऊहतुः**=फिर से शरीर में समन्तात् प्राप्त कराते हैं। ये स्नेह व निर्द्वेषता के भाव वीर्यरक्षण में सहायक होते हैं। वीर्यरक्षण से ये उत्पन्न होते हैं, फिर उत्पन्न होकर ये वीर्यरक्षण के साधक बनते हैं।

भावार्थ—वीर्य का रक्षण होने पर हममें स्नेह व निर्द्वेषता के भावों का वर्धन होता है। फिर ये भाव वीर्यरक्षण में सहायक बनते हैं।

४५. [पञ्चचत्वारिंशं सूक्तम्]

ऋषिः—**भृगुः** ॥ देवता—**आञ्जनम्** ॥ छन्दः—**अनुष्टुप्** ॥

'वासना व क्रोध' का विनाश

ऋणादृणमिव संनयन्कृत्यां कृत्याकृतो गृहम्।
चक्षुर्मन्त्रस्य दुर्हार्दः पृष्टीरपि शृणाञ्जन ॥ १ ॥

१. **ऋणात्**=ऋण में से **ऋणम्**=ऋण के अंश को **इव**=जैसे **संनयन्**=कोई व्यक्ति उत्तमर्ण के घर में पहुँचाता है, उसी प्रकार **कृत्याम्**=हिंसा को **कृत्याकृतः**=हिंसा करनेवाले के घर में पहुँचाते हुए हे **आञ्जन**=हमें गतिशील बनानेवाले और सद्गुणों से हमारे जीवन को अलंकृत करनेवाले वीर्य! तू **चक्षुर्मन्त्रस्य**=आँख से—आँख के इशारों (Sidelook of glances) से मन्त्रणा करनेवाली **दुर्हार्दः**=दुष्टहृदयवाली वासना की **पृष्टीः अपि**=पसलियों को भी **शृण**=शीर्ण कर डाल। २. यह सुरक्षित वीर्य हमारे जीवन में से वासना को विनष्ट कर दे। यह हमें हिंसा को अहिंसा से जीतनेवाला बनाए। हिंसक की भी हिंसा न करते हुए हम हिंसा को उसके प्रति वापस भेज दें। हम ऐसा समझें कि हमने पूर्वजन्म में इसका कुछ हिंसन किया होगा, अतः वह ऋण ही अब चुकाया जा रहा है।

भावार्थ—सुरक्षित वीर्यवाला व्यक्ति वासना को विशीर्ण कर डालता है। क्रोध व हिंसा से दूर रहता है। हिंसक की हिंसा में भी ऋण के उतरने की भावना रखता है।

ऋषिः—**भृगुः** ॥ देवता—**आञ्जनम्** ॥ छन्दः—**अनुष्टुप्** ॥

'दुःष्वप्न्य' से दूर

यदस्मासु दुःष्वप्न्यं यद्गोषु यच्च नो गृहे।
अनामगास्तं च दुर्हार्दः प्रियः प्रति मुञ्चताम् ॥ २ ॥

१. **यत्**=जो **अस्मासु**=हमारे विषय में **दुर्हार्दः**=दुष्ट हृदयवाले पुरुष का **दुःष्वप्न्यम्**=दुष्ट स्वप्न है **यत् गोषु**=जो हमारी गौओं के विषय में **च**=और **यत् नः गृहे**=जो हमारे घर के विषय में दुष्ट स्वप्न है, उस दुष्ट स्वप्न को भी **अनामगः**=(आयो रोगः) नीरोगता की ओर गतिवाला, **प्रियः**=प्रीति का जनक यह आञ्जन (वीर्य) **तं प्रति च**=उसके ही प्रति **मुञ्चताम्**=छोड़नेवाला हो। २. यदि कोई दुष्ट हृदयवाला पुरुष हमारा अशुभ करने का स्वप्न भी लेता है तो हम वीर्यवान् बनते हुए, उसके बुरा करने का स्वप्न न लें। इस स्वप्न को उसी दुष्ट हृदयवाले के लिए छोड़ दें।

भावार्थ—सुरक्षित वीर्यवाला पुरुष कभी किसी का बुरा करने का स्वप्न नहीं लेता।

ऋषिः—**भृगुः** ॥ देवता—**आञ्जनम्** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥

'बल प्राण व ओज' का वर्धन

अपामूर्ज ओजसो वावृधानमग्नेर्जातमधि जातवेदसः।
चतुर्वीरं पर्वतीयं यदाञ्जनं दिशः प्रदिशः करदिच्छिवास्ते ॥ ३ ॥

१. **अपाम्**=प्रजाओं के **ऊर्जः**=बल व प्राणशक्ति का तथा **ओजसः**=ओज का **वावृधानम्**=निरन्तर बढ़ानेवाला **यत् आञ्जनम्**=जो यह जीवन को सद्गुणों से अलंकृत करनेवाला वीर्य है वह **ते**=तेरी **दिशः प्रदिशः**=दिशाओं व प्रदिशाओं को **शिवाः करत्**=कल्याणकर करे। सुरक्षित वीर्य हमें बलवान्, प्राणशक्तिसम्पन्न व ओजस्वी बनाता हुआ **चतुर्वीरम्**=हमारे चारों अंगों को

(मुख, बाहू, ऊरू, पाद) वीर बनाता है। **पर्वतीयम्**=हमारा पूरण करनेवाले तत्त्वों के लिए हितकर है। शरीर का पूरण करनेवाले सब तत्त्वों को हममें सम्यक् उत्पन्न करता हुआ यह हमारे लिए हित-तम है।

भावार्थ—शरीर में सुरक्षित वीर्य हमें 'बल, प्राण व ओज' प्राप्त कराता है। यह हमारे अंगों को सबल बनाता है। शरीर का पूरण करनेवाले सब तत्त्वों को सम्यक् उत्पन्न करता है। इस प्रकार यह हमारा सर्वतः कल्याण करनेवाला है।

ऋषिः—**भृगुः**॥ देवता—**आञ्जनम्**॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्**॥

'चतुर्वीर' आञ्जन

चतुर्वीरं वध्यत आञ्जनं ते सर्वा दिशो अभयास्ते भवन्तु।
ध्रुवस्तिष्ठासि सवितेव चार्यं इमा विशो अभि हरन्तु ते बलिम्॥ ४॥

१. **चतुर्वीरम्**=तेरे चारों अंगों को (मुख, बाहू, ऊरू, पाद) वीर बनानेवाला **आञ्जनम्**=तुझे सद्गुणों से अलंकृत करनेवाला यह वीर्य **ते बध्यते**=तेरे अन्दर बाँधा जाता है। **सर्वाः दिशः**=सब दिशाएँ **ते अभयाः भवन्तु**=तेरे लिए निर्भयता देनेवाली हों। २. **सविता इव**=सूर्य की भाँति तू **ध्रुवः तिष्ठासि**=मर्यादा में ध्रुवता से स्थिर होता है। वीर्यवान् पुरुष सूर्य के समान मार्ग का मर्यादित रूप में आक्रमण करता है **च**=और **आर्यः**=तू श्रेष्ठ बनता है अथवा **अर्यः**=अपना स्वामी बनता है। **इमाः विशः**=ये सब प्रजाएँ **ते बलिम् अभिहरन्तु**=तेरे लिए कर प्राप्त कराएँ। यह वीर्यवान् संयमी सूर्यवत् मर्यादित जीवनवाला पुरुष प्रजाओं का शासक बनता है। सब प्रजाएँ इसे राजपद पर प्रतिष्ठित करती हैं।

भावार्थ—वीर्यरक्षक पुरुष 'मुख, बाहू, ऊरू, पाद' इन चारों को सबल बनाता है। यह निर्भय जीवनवाला होता है। स्वयं मर्यादित जीवनवाला होता हुआ प्रजाओं का शासक बनता है। (जितेन्द्रियो हि शक्नोति वशे स्थापयितुं प्रजाः)।

ऋषिः—**भृगुः**॥ देवता—**आञ्जनम्**॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्**॥

आक्ष्व-मणिं कृष्णुष्व-स्नाहि-पिब

आक्ष्वैकं मणिमेकं कृष्णुष्व स्नाह्येकेना पिबैकमेषाम्।
चतुर्वीरं नैर्ऋतेभ्यश्चतुर्भ्यो ग्राह्या बन्धेभ्यः परि पात्वस्मान्॥ ५॥

१. **एषाम्**=इन रेतःकणों के **एकम्**=इस अद्वितीय तत्त्व को **आ अक्ष्व**=(अक्ष् व्याप्तौ) शरीर में चारों ओर व्याप्त कर। **एकम्**=इस अद्वितीय तत्त्व को **मणिं कृष्णुष्व**=तू अपनी मणि बना ले—यही तुझे अलंकृत करेगा। **एकेन**=इस अद्वितीय तत्त्व से **स्नाहि**=तू अपने को पवित्र करले। **एकम्**=इस अद्वितीय तत्त्व का **पिब**=तू अपने अन्दर पान कर। २. **चतुर्वीरम्**=हमारे चारों अंगों को वीर बनानेवाला (मुख, बाहू, ऊरू, पाद) यह वीर्य **चतुर्भ्यः नैर्ऋतेभ्यः**=चारों अंगों में होनेवाली दुर्गतियों को तथा **ग्राह्याः**=वात-विकार-जनित गठिया रोग के **बन्धेभ्यः**=बन्धनों से **अस्मान्**=हमें **परिपातु**=सुरक्षित करे।

भावार्थ—वीर्य को हम शरीर में व्याप्त करें। इसे अपने को सुभूषित करनेवाली मणि बनाएँ—इससे अपने को परिशुद्ध करें—इसे अपने अन्दर पीनेवाले बनें। यह चारों अंगों को वीर बनानेवाला वीर्य हमें चारों अंगों की पीड़ा के जनक ग्राही के बन्धनों से मुक्त रक्खेगा।

ऋषिः—**भृगुः** ॥ देवता—**अग्न्यादयो मन्त्रोक्ताः** ॥ छन्दः—**विराण्महाबृहती** ॥

अग्निः अग्निना

अग्निर्माग्निनावतु प्राणायापानायायुषे वर्चसे
ओजसे तेजसे स्वस्तये सुभूतये स्वाहा ॥ ६ ॥

१. गतमन्त्रों के अनुसार वीर्य को शरीर में धारण करने पर **अग्निः**=वह अग्रणी प्रभु **मा**=मुझे **अग्निना**=अग्नितत्त्व के द्वारा—आगे बढ़ने की भावना के द्वारा **अवतु**=रक्षित करे। २. प्रभु से अग्नितत्त्व इसलिए प्राप्त कराया जाए जिससे **प्राणाय अपानाय**=हमारी प्राणापान शक्ति ठीक बनी रहे। **आयुषे**=दीर्घजीवन प्राप्त हो। **वर्चसे**=श्रुताध्ययन से होनेवाला तेज प्राप्त हो। **ओजसे**=ओजस्विता प्राप्त हो तथा **तेजसे**=शरीर की कान्ति प्राप्त हो। **स्वस्तये**=उत्तम सत्ता के लिए तथा **सुभूतये**=उत्तम ऐश्वर्य की प्राप्ति के लिए **स्वाहा**=मैं अग्नि के प्रति अपना अर्पण करता हूँ।

भावार्थ—अग्नि नामक प्रभु मुझे अग्नितत्त्व के द्वारा—आगे बढ़ने की भावना के द्वारा रक्षित करें। मुझे प्राणापानशक्ति-दीर्घजीवन-ज्ञान का बल-ओजस्विता व शरीरकान्ति प्राप्त हो। मैं उत्तम सत्ता व उत्तम ऐश्वर्यवाला होने के लिए प्रभु के प्रति अपना अर्पण करता हूँ।

ऋषिः—**भृगुः** ॥ देवता—**अग्न्यादयो मन्त्रोक्ताः** ॥ छन्दः—**निचृन्महाबृहती** ॥

इन्द्रः-इन्द्रियेण

इन्द्रो मेन्द्रियेणावतु प्राणायापानायायुषे वर्चसे
ओजसे तेजसे स्वस्तये सुभूतये स्वाहा ॥ ७ ॥

१. **इन्द्रः**=वह परमैश्वर्यवाला प्रभु **मा**=मुझे **इन्द्रियेण**=प्रत्येक अंग के ऐश्वर्य के द्वारा **अवतु**=रक्षित करे। २. इन्द्र मुझे इन्द्रियों के ऐश्वर्य को इसलिए प्राप्त कराएँ, जिससे **प्राणाय अपानाय**। शेष पूर्ववत्।

भावार्थ—'इन्द्र' नामक प्रभु मुझे प्रत्येक अंग के ऐश्वर्य को प्राप्त कराएँ। मुझे प्राणापान शक्ति। शेष पूर्ववत्।

ऋषिः—**भृगुः** ॥ देवता—**अग्न्यादयो मन्त्रोक्ताः** ॥ छन्दः—**निचृन्महाबृहती** ॥

सोम, सौम्येन

सोमो मा सौम्येनावतु प्राणायापानायायुषे वर्चसे
ओजसे तेजसे स्वस्तये सुभूतये स्वाहा ॥ ८ ॥

१. **सोमः**=शान्त प्रभु **मा**=मुझे **सौम्येन**=शान्तस्वभाव के द्वारा **अवतु**=रक्षित करें। २. सोम प्रभु मुझे सौम्यता को इसलिए प्राप्त कराएँ जिससे **प्राणाय**। शेष पूर्ववत्।

भावार्थ—सोम नामक प्रभु मुझे सौम्यता प्राप्त कराके प्राणापानशक्तिसम्पन्न दीर्घजीवन प्राप्त कराएँ।

ऋषिः—**भृगुः** ॥ देवता—**अग्न्यादयो मन्त्रोक्ताः** ॥ छन्दः—**निचृन्महाबृहती** ॥

भगः भगेन

भगो मा भगेनावतु प्राणायापानायायुषे वर्चसे
ओजसे तेजसे स्वस्तये सुभूतये स्वाहा ॥ ९ ॥

१. **भगः**=ऐश्वर्य के पुञ्ज प्रभु **मा**=मुझे **भगेन**=सेवनीय ऐश्वर्य के द्वारा **अवतु**=रक्षित करें। २. प्रभु इसलिए मुझे इस भग को प्राप्त कराएँ जिससे **प्राणायापानाय**। शेष पूर्ववत्।

भावार्थ—ऐश्वर्य-पुञ्ज प्रभु से ऐश्वर्य को प्राप्त करके प्राणापानशक्ति का वर्धन करता हुआ मैं दीर्घजीवी बनूँ।

ऋषिः—**भृगुः** ॥ देवता—**अग्न्यादयो मन्त्रोक्ताः** ॥ छन्दः—**निचृन्महाबृहती** ॥

मरुतः गणैः

मरुतो मा गणैरवन्तु प्राणायापानायायुषे वर्चस
ओजसे तेजसे स्वस्तये सुभूतये स्वाहा॥ १०॥

१. **मरुतः**=प्राण **गणैः**=ज्ञानेन्द्रिय पञ्चक, अन्तः-करण पञ्चक (मन-बुद्धि-चित्त-अहंकार हृदय) आदि गणों के साथ **मा अवन्तु**=मेरा रक्षण करें। २. प्राणसाधना द्वारा प्राणशक्ति का वर्धन होकर मुझे दीर्घजीवन प्राप्त हो।

भावार्थ—प्राणसाधना होने पर मेरी इन्द्रियों के गण उत्तम होकर मुझे प्राणापानशक्तिसम्पन्न दीर्घजीवन प्राप्त कराएँ।

अपने जीवन में 'आयु-वर्चस्-ओज व तेज' को प्राप्त करके यह प्रजाओं का रक्षण करनेवाला 'प्रजापति' बनता है। यही अगले सूक्त का ऋषि है—

४६. [षट्चत्वारिंशं सूक्तम्]

ऋषिः—**प्रजापतिः** ॥ देवता—**अस्तृतमणिः** ॥ छन्दः—**पञ्चपदाज्योतिष्मतीत्रिष्टुप्** ॥

अस्तृत मणि

प्रजापतिष्ट्वा बध्नात्प्रथममस्तृतं वीर्या ∫य कम्।
तत्ते बध्नाम्यायुषे वर्चस ओजसे च बलाय चास्तृतस्त्वाभि रक्षतु॥ १॥

१. **प्रजापतिः**=प्रभु ने **प्रथमम्**=सर्वप्रथम **अस्तृतम् त्वा**='अस्तृत' भागवाले तुझे **बध्नात्**=शरीर में बद्ध किया। **वीर्याय**=पराक्रम के सम्पादन के लिए तथा **कम्**=सुख के लिए। शरीर में यह वीर्य ही अस्तृतमणि है—'अस्तृत' अर्थात् अहिंसित (स्तृ to kill)। वीर्य के सुरक्षित होने पर रोगों व असद् भावनाओं का आक्रमण नहीं होता। २. **तत्**=उस **ते**=तेरी अस्तृतमणि को ही मैं **बध्नामि**=अपने अन्दर बाँधता हूँ, **आयुषे**=दीर्घजीवन के लिए **वर्चस**=श्रुताध्ययन से उत्पन्न तेज के लिए **च**=और **ओजसे**=ओजस्विता के लिए **बलाय च**=तथा बल के लिए। प्रभु कहते हैं कि **अस्तृतः**=यह अस्तृतमणि **त्वा अभिरक्षतु**=तेरा 'शरीर व मन' दोनों क्षेत्रों में रक्षण करे—यह तुझे आधि-व्याधियों से बचाए।

भावार्थ—शरीर में बद्ध अस्तृत-(वीर्य)-मणि हमें 'दीर्घजीवन, वर्चस्, ओजस्विता व बल' प्रदान करती है।

ऋषिः—**प्रजापतिः** ॥ देवता—**अस्तृतमणिः** ॥ छन्दः—**षट्पदाभुरिक्शक्वरी** ॥

अस्तृतमणि की ऊर्ध्वगति

ऊर्ध्वस्तिष्ठतु रक्षन्नप्रमादमस्तृतेमं मा त्वा दभन्पणयो यातुधानाः।
इन्द्रेइव दस्यूनव धूनुष्व पृतन्यतः सर्वा छत्रून्वि षहस्वास्तृतस्त्वाभि रक्षतु॥ २॥

१. हे **अस्तृत**=अहिंसित वीर्यमणे! आप **इमम्**=इस—आपको अपने में बाँधनेवाले पुरुष को **प्रमादं रक्षन्**=प्रमादरहित होकर रक्षित करते हुए **ऊर्ध्वः तिष्ठतु**=ऊपर स्थित हों। शरीर में इस वीर्य की ऊर्ध्वगति होने पर ही सब प्रकार का रक्षण प्राप्त होता है। हे वीर्य! **यातुधानाः**=पीड़ा का आधान करनेवाले **पणयः**=(An impious man) अपवित्र वृत्तिवाले पुरुष **त्वा मा दभन्**=

तुझे हिंसित करनेवाले न हों। वस्तुतः सदा औरों को पीड़ित करनेवाले, अपवित्र आचरणवाले लोग वीर्यरक्षण नहीं कर पाते। २. **इन्द्रः इव दस्यून्**=एक जितेन्द्रिय पुरुष जैसे दास्यव वृत्तियों को दूर करता है, इसी प्रकार तू **पृतन्यतः**=उपद्रव-सैन्य से हमपर आक्रमण करनेवाले इन रोगों को **अवधूनुष्व**=सुदूर कम्पित कर। **सर्वान् शत्रून्**=सब शत्रुओं को **विषहस्व**=पराभूत कर। हे पुरुष! तू जितेन्द्रिय बन। **त्वा**=तुझ इन्द्र को यह **अस्तृतः**=अहिंसित वीर्यमणि **रक्षतु**=रक्षित करे।

भावार्थ—शरीर में वीर्यरक्षा करने पर हम सब रक्षित वीर्य के द्वारा रक्षित होते हैं।

ऋषिः—**प्रजापतिः**॥ देवता—**अस्तृतमणिः**॥ छन्दः—**पञ्चपदापथ्यापङ्क्तिः**॥

'चक्षु, प्राण व बल'

शतं च न प्रहरन्तो निघ्नन्तो न तस्तिरे।
तस्मिन्नन्द्रः पर्यदत्त चक्षुः प्राणमथो बलमस्तृतस्त्वाभि रक्षतु॥ ३॥

१. **शतं च**=सैकड़ों भी शत्रु **प्रहरन्तः**=नानाप्रकार से प्रहार करते हुए, हे अस्तृतमणे! तुझे **न तस्तिरे**=आच्छादित नहीं कर सके (स्तृञ् आच्छादने)—हिंसित नहीं कर सके (स्तृ to kill)। **निघ्नन्तः**=प्राणों से वियुक्त करते हुए भयंकर रोगरूप शत्रु भी तुझे हिंसित करने में समर्थ नहीं हुए। इसी से तो तेरा 'अस्तृत' यह नाम हुआ है। २. हे जीव! **इन्द्रः**=उस परमैश्वर्यशाली प्रभु ने **तस्मिन्**= उस अस्तृतमणि में **चक्षुः पर्यदत्त**=चक्षु को—दृष्टिशक्ति को दिया है। **प्राणम् अथ उ बलम्**= प्राणशक्ति और बल को भी इस अस्तृतमणि में स्थापित किया है। यह **अस्तृतः**=अस्तृतमणि **त्वा अभिरक्षतु**=तेरा रक्षण करे। वीर्यरक्षण करते हुए हम चक्षु, प्राण व बल को प्राप्त करते हैं।

भावार्थ—वीर्य को अस्तृतमणि कहा गया है, क्योंकि यह हमपर रोगरूप शत्रुओं का प्रहार नहीं होने देती और हमें वासनारूप शत्रुओं से हिंसित नहीं होने देती। सुरक्षित वीर्य हमारे लिए 'चक्षु, प्राण व बल' देता है।

ऋषिः—**प्रजापतिः**॥ देवता—**अस्तृतमणिः**॥ छन्दः—**चतुष्पदात्रिष्टुप्**॥

इन्द्र का वर्म

इन्द्रस्य त्वा वर्मणा परि धापयामो यो देवानामधिराजो बभूव।
पुनस्त्वा देवाः प्र णयन्तु सर्वेऽस्तृतस्त्वाभि रक्षतु॥ ४॥

१. यह अस्तृतमणि (वीर्य) शरीर में स्थापित प्रभु का कवच है। **इन्द्रस्य**=उस शत्रुविद्रावक प्रभु के **वर्मणा**=कवच से **त्वा परिधापयामः**=तुझे आच्छादित करते है। **यः**=जो इन्द्र **देवानाम्**= सब देवों का **अधिराजः बभूव**=अधिराज है। प्रभु ही सब देवों में देवत्व को स्थापित करते हैं। ये प्रभु हमें भी इस वीर्यरूप कवच को धारण कराके, रोगों व वासनाओं के आक्रमण से बचाकर, देव बनाते हैं। २. प्रभु ने तो हमें यह कवच प्राप्त कराया ही है। अब इस जीवन में **पुनः**=फिर **सर्वे देवाः**='माता-पिता व आचार्य' आदि सब देव **त्वा प्रणयन्तु**=तुझे इस कवच को प्राप्त करानेवाले हों। उनका शिक्षण इसप्रकार का हो कि तुझे इस कवच-धारण के महत्त्व को सम्यक् समझा दें। यह **अस्तृतः**=शरीर में धारण किया हुआ अस्तृतमणिरूप कवच **त्वा अभिरक्षतु**=तुझे रोगों व वासनाओं के आक्रमण से बचाए।

भावार्थ—अस्तृतमणि (वीर्य) प्रभु से दिया गया कवच है। माता-पिता-आचार्य आदि सब देव इसके महत्त्व को हमें समझाते हैं। धारित हुआ-हुआ यह कवच हमें रोगों व वासनाओं से बचाता है।

ऋषिः—**प्रजापतिः** ॥ देवता—**अस्तृतमणिः** ॥ छन्दः—**पञ्चपदातिशक्वरी** ॥

एकशतं वीर्याणि

अस्मिन्मणावेकशतं वीर्या ∫ णि सहस्रं प्राणा अस्मिन्नस्तृते।
व्याघ्रः शत्रूनभि तिष्ठ सर्वान्यस्त्वा पृतन्यादधरः सो अस्त्वस्तृतस्त्वाभि रक्षतु॥ ५॥

१. **अस्मिन् मणौ**=इस अस्तृतमणि (वीर्य) में **एकशतं वीर्याणि**=एक सौ एक वीर्य हैं। ये वीर्य-कण ही (एकशतं मृत्यवः) एक सौ एक रोगों से बचाते हैं। **अस्मिन् अस्तृते**=इस अहिंसित वीर्यमणि में **सहस्रं प्राणाः**=हज़ारों प्राणशक्तियाँ हैं। २. हे अस्तृत! **व्याघ्रः**=जैसे व्याघ्र खरगोश आदि को समाप्त कर देता है, इसीप्रकार तू **सर्वान् शत्रून् अभितिष्ठ**=सब शत्रुओं को आक्रान्त करनेवाला हो। **यः**=जो रोगरूप शत्रु **त्वा**=तुझपर **पृतन्यात्**=उपद्रव-सैन्य से आक्रमण करे, **सः**= वह **अधरः अस्तु**=पाँव तले रौंदा जाए—कुचला जाए। हे जीव! **अस्तृतः**=यह अहिंसित वीर्यमणि **त्वा अभिरक्षतु**=तेरा सब ओर से रक्षण करे।

भावार्थ—अस्तृत-(वीर्य)-मणि एक सौ एक रोगों को अपने एक सौ एक वीर्यों से कम्पित करके दूर भगाती है। इसमें अनन्त प्राणशक्ति है। यह रोगों को ऐसे कुचल देती है, जैसे शेर खरगोश को। रोगों को कुचलकर यह हमारा रक्षण करती है।

ऋषिः—**प्रजापतिः** ॥ देवता—**अस्तृतमणिः** ॥ छन्दः—**पञ्चपदोष्णिग्गर्भाविराड्जगती** ॥

शंभू-मयोभू

घृतादुल्लुप्तो मधुमान्पयस्वान्त्सहस्रप्राणः शतयोनिर्वयोधाः।
शंभूश्च मयोभूश्चोर्जस्वांश्च पयस्वांश्चास्तृतस्त्वाभि रक्षतु॥ ६॥

१. **घृतात्**=मलक्षरण व दीप्ति के हेतु से **उल्लुप्तः**=शरीर में ऊर्ध्वगति के द्वारा (उल्) **लुप्तः**= अदृष्ट किया हुआ—रुधिर में व्याप्त किया हुआ यह **अस्तृतः**=वीर्यमणि **मधुमान्**=जीवन को मधुर बनानेवाला है। **पयस्वान्**=यह शरीर की शक्तियों का आप्यायन करनेवाला है। **सहस्रप्राणः**= अनन्त प्राणशक्तिवाला है। **शतयोनिः**=शतसंवत्सरपर्यन्त चलनेवाले जीवन का उत्पत्तिस्थान है। **वयोधाः**=उत्कृष्ट जीवन को धारण करानेवाला है। २. **शम्भूः च**=सब अनिष्टों व उपद्रवों को शान्त करनेवाला है **च**=और **मयोभूः**=कल्याण का भावयिता (उत्पादक) है। यह **ऊर्जस्वान्**=बल व प्राणशक्ति को देनेवाला **च**=और **पयस्वान्**=प्रशस्त आप्यायनवाला अस्तृत (वीर्य) **त्वा अभिरक्षतु**=तुझे अभिरक्षित करे।

भावार्थ—शरीर में वीर्य की ऊर्ध्वगति होने पर यह हमारे लिए 'शंभू, मयोभू, ऊर्जस्वान्, पयस्वान् व मधुमान्' होता है। यह 'सहस्रप्राण, शतयोनि व वयोधा' है।

ऋषिः—**प्रजापतिः** ॥ देवता—**अस्तृतमणिः** ॥ छन्दः—**पञ्चपदापथ्यापङ्क्तिः** ॥

असपत्नाः-सपत्नहा

यथा त्वमुत्तरोऽसो असपत्नः सपत्नहा।
सजातानामसद्वशी तथा त्वा सविता करदस्तृतस्त्वाभि रक्षतु॥ ७॥

१. हे वीर्य का रक्षण करनेवाले पुरुष! **सविता**=वह प्रेरक प्रभु **त्वा**=तुझे तथा **करत्**=वैसा बनाए, प्रेरणा द्वारा तेरे जीवन को इसप्रकार संयमवाला बनाए कि **यथा**=जिससे **त्वम्**=तू **उत्तरः असः**=शत्रुओं के साथ संग्राम में उत्कृष्ट बने। **असपत्नः**=शत्रुरहित बने। **सपत्नहा**=सब शत्रुओं को समाप्त करनेवाला हो तथा **सजातानाम्**=समान कुल में उत्पन्न हुए-हुए अथवा समान

आयुष्यवालों का वशी **असत्**=वश में करनेवाला हो। २. शरीर में सुरक्षित **अस्तृतः**=यह हिंसित न होनेवाले वीर्यमणि **त्वा अभिरक्षतु**=तेरा रक्षण करे। इसने ही तो तुझे सब रोगों के आक्रमण से बचाना है।

भावार्थ—प्रभु अपनी प्रेरणा द्वारा हमारे जीवन को इसप्रकार संयमवाला बनाएँ कि हम उत्कृष्टतम जीवनवाले बनें। सुरक्षित वीर्य हमें नीरोग व निर्मल बनाए।

सुरक्षित वीर्य से अपने जीवन को नीरोग व निर्मल बनाकर यह ज्ञान की वाणियों के मार्ग पर चलनेवाला व्यक्ति 'गो-पथ' कहलाता है। यही अगले चार रात्रि-सूक्तों का ऋषि है—

४७. [सप्तचत्वारिंशं सूक्तम्]

ऋषिः—**गोपथः** ॥ देवता—**रात्रिः** ॥ छन्दः—**पथ्याबृहती** ॥

रात्रि अन्धकारमयी

आ रात्रि पार्थिवं रजः पितुरप्रायि धामभिः।
दिवः सदांसि बृहती वि तिष्ठस आ त्वेषं वर्तते तमः ॥ १ ॥

१. **रात्रि**=हे रात्रि! तुझसे यह **पार्थिवं रजः**=पृथिवी में होनेवाले गिरि, नदी, समुद्रादि प्रदेश, **पितुः**=अन्तरिक्षलोक के **धामभिः**=सब स्थानों के साथ **आ अप्रायि**=समन्तात् अन्धकार से भर दिया गया है, अर्थात् सब ओर अन्धकार-ही-अन्धकार है। २. **बृहती**=महती सर्वत्र व्यापी तू **दिवः सदांसि**=द्युलोक के स्थान में भी **वितिष्ठसे**=विशेषकर स्थित होती है। उस द्युलोक में भी **आ**=चारों ओर **त्वेषम्**=तारों की दीप्तिवाला **तमः**=अन्धकार **वर्तते**=है। रात्रि के समय चारों ओर अन्धकार-ही-अन्धकार हो जाता है। द्युलोक तारों से दीप्त है, परन्तु फिर भी है अन्धकार ही।

भावार्थ—रात्रि आती है और सब पार्थिव लोक अन्तरिक्ष के प्रदेशों के साथ अन्धकार से परिपूर्ण हो जाते है। तारों से चमकते हुए होने पर भी द्युलोक के प्रदेश अन्धकारमय ही होते हैं।

ऋषिः—**गोपथः** ॥ देवता—**रात्रिः** ॥ छन्दः—**पञ्चपदाऽनुष्टुब्बार्भापरातिजगती** ॥

कल्याणकारिणी रात्रि

न यस्याः पारं ददृशे न योयुवद्विश्वमस्यां नि विशते यदेजति।
अरिष्टासस्त उर्वि तमस्वति रात्रि पारमशीमहि भद्रे पारमशीमहि ॥ २ ॥

१. **यस्याः**=जिस रात्रि का **पारम्**=पर-तीर, अर्थात् अन्त **न ददृशे**=नहीं दिखता, **अस्याम्**=इस रात्रि में **विश्वम्**=यह चराचरात्मक जगत् **योयुवत् न**=विभजमान (विभक्त) न था—सारा विश्व एकाकार-सा हो गया था। **यत् एजति**=जो कुछ गति करता है, वह इसमें **निविशते**=इधर-उधर जाने में असमर्थ हुआ-हुआ उस-उस स्थान पर निद्राण हो जाता है। २. हे **उर्वि**=अतिविशाल **तमस्वति**=बहुल अन्धकारवाली **रात्रि**=रात्रिदेवि! हम **अरिष्टासः**=अहिंसित होते हुए **ते**=तेरे **पारम्**=पार को **अशीमहि**=प्राप्त करें। **भद्रे**=हे कल्याण करनेवाली रात्रि! हम **पारम् अशीमहि**=तेरे पार को प्राप्त करें।

भावार्थ—यह अनन्त फैलाववाली, जिसमें सम्पूर्ण जगत् एकाकार स्थिर-सा हो जाता है, यह अन्धकारमयी रात्रि हमारे लिए कल्याणकर हो। हम अहिंसित होते हुए रात्रि के पार को प्राप्त करें।

ऋषिः—**गोपथः**॥ देवता—**रात्रिः**॥ छन्दः—**अनुष्टुप्**॥

निन्यानवे, अट्ठासी सतत्तर

ये ते रात्रि नृचक्षसो द्रष्टारो नवतिर्नव।
अशीतिः सन्त्यष्टा उतो ते सप्त सप्ततिः॥ ३॥

१. हे **रात्रि**=रात्रिदेवि! **ये**=जो **ते**=तेरे **नृचक्षसः**=मनुष्यों को देखनेवाले, अर्थात् मनुष्यों का ध्यान करनेवाले **नवतिः नव**=नव्वे और नौ, अर्थात् निन्यानवे **द्रष्टारः**=द्रष्टा—रक्षक हैं अथवा **अष्टा अशीतिः**=अट्ठासी रक्षक हैं **उतो**=अथवा **ते**=तेरे जो **सप्त सप्ततिः**=सतत्तर रक्षक हैं। (तेभिः पायुभिः नु अद्य नः पाहि=) उन रक्षकों के द्वारा तू हमारा रक्षण कर। २. राजा राष्ट्र में रात्रि के समय राष्ट्र के विस्तार के अनुसार, निन्यानवे, अट्ठासी व सतत्तर रक्षकों को नियुक्त करता है। इनसे रक्षित प्रजा सुख की नींद सो पाती है (सुम्नयि) उनका धन सुरक्षित रहता है (रेवति) उनके अन्नों को नष्ट होने का किसी प्रकार का खतरा नहीं होता (वाजिनि)।

भावार्थ—राजा रात्रि के समय राष्ट्र के विस्तार के अनुसार निन्यानवे, अट्ठासी व सतत्तर रक्षकों की नियुक्ति करे।

ऋषिः—**गोपथः**॥ देवता—**रात्रिः**॥ छन्दः—**अनुष्टुप्**॥

छियासठ, पचपन, चवालीस व तेतीस

षष्टिश्च षट् च रेवति पञ्चाशत्पञ्च सुम्नयि।
चत्वारश्चत्वारिंशच्च त्रयस्त्रिंशच्च वाजिनि॥ ४॥

१. हे **रेवति**=लोगों के उत्तम सुरक्षित धनोंवाली रात्रि! जो तेरे **षष्टिः च षट् च**=साठ और छह, अर्थात् छियासठ रक्षक हैं। हे **सुम्नयि**=सुखवाली, निश्चन्तता के कारण सुख को प्राप्त करानेवाली रात्रि! जो तेरे **पञ्चाशत् पञ्च**=पचास और पाँच (पचपन) रक्षक हैं, अथवा हे **वाजिनि**=अन्नों की सुरक्षावाली रात्रि! जो तेरे **चत्वारः च चत्वारिंशत् च**=चार और चालीस, अर्थात् चवालीस रक्षक हैं **च**=अथवा **त्रयस्त्रिंशत्**=तेतीस रक्षक हैं, उन सबके द्वारा तू हमारा रक्षण कर। तू हमें सुरक्षित धनोंवाला, सुखवाला व उत्तम अन्नोंवाला बना।

भावार्थ—राजा रात्रि में आवश्यकतानुसार छियासठ, पचपन, चवालीस व तेतीस रक्षकों को नियुक्त करता हुआ प्रजा को सुरक्षित धनों व अन्नोंवाला बनाकर सुखी करे।

ऋषिः—**गोपथः**॥ देवता—**रात्रिः**॥ छन्दः—**अनुष्टुप्**॥

बाईस व ग्यारह

द्वौ च ते विंशतिश्च ते रात्र्येकादशावमाः।
तेभिर्नो अद्य पायुभिर्नु पाहि दुहितर्दिवः॥ ५॥

१. हे **रात्रि**=विभावरि! **ते**=तेरे **द्वौ च विंशतिः च**=दो और बीस, अर्थात् बाईस रक्षक हैं और **अवमाः**=(संख्यातः निकृष्टाः) कम-से-कम संख्यावाले **ते**=तेरे **एकदश**=ग्यारह रक्षक हैं। **तेभिः**=उन **पायुभिः**=रक्षकों के द्वारा **नु**=निश्चय से **नः**=हमें **अद्यः**=आज **पाहि**=सुरक्षित कर। २. हे **दिवः दुहितः**=द्युलोक की पुत्रीरूप रात्रि! तू हमारा रक्षण करनेवाली हो। आलोक के अभाव में रात्रि आकाश से गिरती-सी दिखती है, अतः रात्रि द्युलोक की पुत्री कही गई है। इस रात्रि में राजा प्रजा के रक्षण के लिए, राष्ट्र विस्तार के अनुपात में अधिक-से-अधिक निन्यानवे व कम-से-कम ग्यारह रक्षकों को नियुक्त करता है, जिससे सुरक्षा की भावना प्रजा को सुख की नींद सुलानेवाली हो। इस सुरक्षित राष्ट्र में ही रात्रि वस्तुतः रमयित्री बन सकती है।

भावार्थ—राजा-राष्ट्र रक्षा के लिए आवश्यक रक्षकों को नियुक्त करता हुआ प्रजा की सुख-समृद्धि का कारण बने।

ऋषिः—**गोपथः**॥ देवता—**रात्रिः**॥ छन्दः—**पुरस्ताद्बृहती**॥

'अघशंस व दुःशंस' से बचाव

रक्षा माकिर्नो अघशंस ईशत मा नो दुःशंस ईशत।
मा नो अद्य गवां स्तेनो मावीनां वृक ईशत॥ ६॥

१. हे रात्रि! **रक्ष**=तू हमारा रक्षण कर। **नः**=हमें **किः**=कोई भी **अघशंसः**=(अघेन पापेन क्रूरेण शस्त्रेण शंसति हिनस्ति) क्रूर शस्त्रों से हिंसा करनेवाला **मा ईशत**=मत शासित करनेवाला हो। **नः**=हमें **दुःशंसः**=दुवर्चन का कहनेवाला व बुरी तरह से हिंसित करनेवाला **मा ईशत**= अपने अधीन न करले। २. **अद्य**=आज कोई **गवां स्तेनः**=गौओं का अपहर्त्ता **नः**=हमें **मा ईशत**= अपने अधीन न करले। **वृकः**=आरण्य पशु भेड़िय आदि **मा अवीनाम् ईशत**=हमारी भेड़ों पर शासक न हो जाए।

भावार्थ—रात्रि में रक्षा की उत्तम व्यवस्था हो, जिससे कोई अघशंस व दुःशंस हमारा हिंसन न कर पाये। हमारी गौवों व भेड़ों का अपहरण न हो।

ऋषिः—**गोपथः**॥ देवता—**रात्रिः**॥ छन्दः—**षट्पदाजगती**॥

उत्तम रक्षण-व्यवस्था

माश्वानां भद्रे तस्करो मा नृणां यातुधान्य ऽः।
परमेभिः पथिभि स्तेनो धावतु तस्करः।
परेण दत्वती रज्जुः परेणाघायुरर्षतु॥ ७॥

१. हे **भद्रे**=सुरक्षा की व्यवस्था से सुख देनेवाली रात्रि! **तस्करः**=प्रसिद्ध अनर्थों को करनेवाला चोर **अश्वानाम्**=हमारे घोड़ों का **मा** (ईशत)=मत स्वामी बने। **यातुधान्यः**=पीड़ा का आधान करनेवाले लोग **नृणां मा**=हमारे मनुष्यों पर प्रबल न हो जाएँ। वे उन्हें पीड़ित न कर सकें। २. **तस्करः**=अनर्थ करनेवाला **स्तेनः**=धन चुरानेवाला चोर **परमेभिः पथिभिः**=अति दूर मार्गों से **धावतु**=भाग जाए। रक्षकों की व्यवस्था के कारण चोरों का भय ही न रहे। **दत्वती रज्जुः**=यह दाँतवाली रस्सी—रस्सी की भाँति लम्बे सर्प आदि डसनेवाले प्राणी **परेण**=अति दूर मार्ग से गतिवाले हों। **अघायुः**=दूसरे की हिंसा की कामनावाला दुष्ट पुरुष **परेण अर्षतु**=सुदूर मार्ग से जानेवाला हो।

भावार्थ—उत्तम रक्षण-व्यवस्था से हमारे पशुओं व वसुओं को हिंसा का भय न हो। चोर, सर्प व अघायु पुरुष समीप भी न फटकने पाएँ।

ऋषिः—**गोपथः**॥ देवता—**रात्रिः**॥ छन्दः—**अनुष्टुप्**॥

साँप, भेड़िया व चोर

अध रात्रि तृष्टधूममशीर्षाणमहिं कृणु।
हनू वृकस्य जम्भयास्तेन तं द्रुपदे जहि॥ ८॥

१. **अध**=(अद्य) अब हे **रात्रि**=रात्रिदेवि! तू **तृष्टाधूमम्**=(पिपासार्थेन तृषिणा तज्जन्या आर्तिर्विक्ष्यते) आर्तिकारी है विषज्वाला का धूम जिसका अथवा निश्वास धूम जिसका, उस परोपद्रव कारिणे विषज्वाला से परिवृत **अहिम्**=साँप को **अशीर्षाणं कृणु**=अशिरस्क कर दे—

इसके सिर को काट डाल। २. **वृकस्य**=अज आदि के अपहर्ता आरण्यश्वा (भेड़िये) के **हनू**=मुख के अन्दर स्थूलदन्तयुक्त पार्श्वों को **जम्भयाः**=हिंसित कर दे—इसके जबड़ों को तोड़ डाल। जो **स्तेन** (स्तेनः) चोर है, **तम्**=उसको **द्रुपदे**=(द्रुः सर्वतोऽभिद्रवणम्) चारों ओर गतिवाले पाँव में **जहि**=हिंसित कर। इसके पाँव काट डाल अथवा पाँव में बेड़ी डाल दे, ताकि यह इधर-उधर जा ही न सके।

भावार्थ—राजा रात्रि में इसप्रकार रक्षण-व्यवस्था रक्खे कि साँप, भेड़िये व चोर प्रजाओं में उपद्रव न कर सकें।

ऋषिः—**गोपथः**॥ देवता—**रात्रिः**॥ छन्दः—**अनुष्टुप्**॥

सुख की नींद

त्वयि॑ रात्रि॒ वसामसि॒ स्वपि॒ष्यामं॑सि जागृहि।
गोभ्यो॑ नः॒ शर्म॑ य॒च्छाश्वे॑भ्यः॒ पुरु॑षेभ्यः॥ ९॥

१. हे **रात्रि**=रात्रिदेवि! **त्वयि**=रक्षण की व्यवस्था होने पर तुझमें **वसामसि**=निवास करते हैं। तुझमें ही हम **स्वपिष्यामसि**=निद्रा करेंगे। **जागृहि**=तू हमारे रक्षण के लिए जागरित हो। तुझमें नियुक्त सब रक्षक पुरुष जागरित रहें। २. तू **नः**=हमारी **गोभ्यः**=गौओं के लिए **अश्वेभ्यः**=अश्वों के लिए **पुरुषेभ्यः**=पुरुषों के लिए **शर्म यच्छ**=सुख दे।

भावार्थ—रक्षा की व्यवस्था के उत्तम होने से हम रात्रि में आराम से सो सकें। हमारी गौवें घोड़े व सब पुरुष सुरक्षित हों।

४८. [अष्टचत्वारिंशं सूक्तम्]

ऋषिः—**गोपथः**॥ देवता—**रात्रिः**॥ छन्दः—**त्रिपदाऽऽर्षीगायत्री**॥

बाहर व अन्दर

अथो॒ यानि॑ च॒ यस्मा॑ ह॒ यानि॑ चा॒न्तः प॑रीण॒हि।
तानि॑ ते॒ परि॑ दद्मसि॥ १॥

१. **अथ उ**=अब निश्चय से **यस्मा ह यानि च**=जिस मेरे लिए, अर्थात् मेरी जो वस्तुएँ बहिःस्थ हैं—गोचर प्रदेश में वर्तमान हैं **यानि च**=और जो **परीणहि**=परितो नद्ध—चारों ओर चारदीवारीवाले घर के **अन्तः**=अन्दर है। **तानि**=उन प्रकट व अप्रकट वस्तुओं को **ते परिदद्मसि**=हे रात्रि! तेरे लिए देते हैं। २. हम उन सब वस्तुओं को रक्षा के लिए रात्रि में नियत रक्षकों को सौंपकर निश्चिन्त होकर सोते हैं।

भावार्थ—रात्रि में नियत रक्षक गोचर प्रदेशों में व घरों में चोरों से वस्तुओं का रक्षण करें।

ऋषिः—**गोपथः**॥ देवता—**रात्रिः**॥ छन्दः—**त्रिपदाविराडनुष्टुप्**॥

'रात्रिः-उषा-दिन' और फिर रात्रि

रात्रि॒ मात॑रु॒षसे॑ नः॒ परि॑ देहि।
उ॒षा नो॒ अह्ने॒ परि॑ ददा॒त्वह॒स्तुभ्यं॑ विभावरि॥ २॥

१. हे **मातः रात्रि**=मातृवत् परिपालन करनेवाली रात्रिदेवते! तू **नः**=हमें **उषसे**=अपने अनन्तर आनेवाले उषाकाल के लिए **परि देहि**=दे। रात्रि हमारा रक्षण करती हुई अपनी समाप्ति पर हमें उषाकाल के लिए सौंपे। **उषा**=उषाकाल **अह्ने**=सूर्य के प्रकाशवाले 'प्रातः संगव, मध्याह्न, अपराह्न, सायाह्न' रूप दिन के लिए **परिददातु**=दे, अर्थात् दिवस के प्रारम्भ होने तक उषा हमारा रक्षण

करे और अपनी समाप्ति पर हमारे रक्षण का भार दिन को सौंप जाए। २. हे **विभावरि**=तारों की दीप्तिवाली रात्रि! यह **अहः**=दिन अपनी समाप्ति पर **तुभ्यम्**=हमें तुम्हारे लिए सौंपकर आये। इसप्रकार आवृत्त होते हुए दिन-रात हमारा रक्षण करें।

भावार्थ—रात्रि हमें उषा के लिए, उषा दिन के लिए और दिन पुनः रात्रि के लिए सौंपे। इसप्रकार आवर्तमान यह कालचक्र हमारा रक्षण करनेवाला हो।

ऋषिः—**गोपथः**॥ देवता—**रात्रिः**॥ छन्दः—**बृहतीगर्भाऽनुष्टुप्**॥

'बाज़-साँप व व्याघ्र' से रक्षण

यत्किं चेदं पतयति यत्किं चेदं सरीसृपम्।
यत्किं च पर्वतायासत्वं तस्मात्त्वं रात्रि पाहि नः॥ ३॥

१. **यत् किञ्च**=जो कुछ **इदम्**=यह परिदृश्मान बाज़ आदि **पतयति**=आकाश में गति करता है और **यत् किञ्च**=जो कुछ **इदम्**=यह **सरीसृपम्**=भूमि पर सरकनेवाला साँप आदि प्राणिजात है और **यत् किञ्च**=जो कुछ **पर्वताया**=पर्वत-सम्बन्धी **अ-सत्वम्**=(अ-अप्रशस्त) दुष्ट व्याघ्र, सिंह आदि प्राणी हैं, हे **रात्रि**=रात्रिदेवते! **तस्मात्**=उससे **त्वम्**=तू **नः पाहि**=हमें रक्षित कर।

भावार्थ—रात्रि हमें उड़नेवाले उल्लू, बाज़ आदि पक्षियों से, रेंगनेवाले सर्प आदि से तथा दुष्ट व्याघ्रादि से रक्षित करे।

ऋषिः—**गोपथः**॥ देवता—**रात्रिः**॥ छन्दः—**अनुष्टुप्**॥

सर्वतः रक्षण व्यवस्था

सा पश्चात्पाहि सा पुरः सोत्तरादधरादुत।
गोपाय नो विभावरि स्तोतारस्त इह स्मसि॥ ४॥

१. हे **विभावरि**=तारों की दीप्तिवाली रात्रि! **सा**=वह तू **नः**=हमें **पश्चात् पाहि**=पीछे से रक्षित कर, **सा पुरः**=वह तू आगे से रक्षित कर। **सा उत्तरात्**=वह तू ऊपर से, **उत**=और **अधरात्**=नीचे से हमें **गोपाय**=रक्षित कर। २. हम **ते**=तेरे **इह**=इस रात्रि के प्रारम्भकाल में **स्तोतारः स्मसि**=स्तोता हैं।

भावार्थ—रात्रि के समय सब ओर से हमारे रक्षण की व्यवस्था हो। हम रात्रि प्रारम्भ में प्रभु-स्तवन करते हुए निद्रा की गोद में जाएँ।

ऋषिः—**गोपथः**॥ देवता—**रात्रिः**॥ छन्दः—**पथ्यापङ्क्तिः**॥

सावधान रक्षक

ये रात्रिमनुतिष्ठन्ति ये च भूतेषु जाग्रति।
पशून्ये सर्वान्रक्षन्ति ते नः आत्मसु जाग्रति ते नः पशुषु जाग्रति॥ ५॥

१. **ये**=जो **रात्रिम्**=सारी रात **अनुतिष्ठन्ति**=अर्चना व जपोपासनारूप कर्म करते हुए रक्षण का कार्य करते हैं **ये च**=और जो **भूतेषु जाग्रति**=प्राणियों के विषय में रक्षणार्थ सावधान होते हैं। **ये**=जो **सर्वान् पशून् रक्षन्ति**=सब पशुओं का रक्षण करते हैं, **ते**=वे रक्षक **नः**=हमारे **आत्मसु**=शरीरों के विषय में भी **जाग्रति**=जागते हैं—रक्षणार्थ सावधान होते हैं, **ते**=वे **नः**=हमारे **पशुषु**=पशुओं के विषय में भी **जाग्रति**=जागते हैं। हमारे पशुओं के रक्षण में भी अप्रमत्त होते हैं।

भावार्थ—रक्षापुरुषों का यह कर्त्तव्य है कि अप्रमत्त होकर रात्रि में प्रभु का स्मरण करते हुए रक्षणकार्य में जागरित रहें।

ऋषिः—**गोपथः**॥ देवता—**रात्रिः**॥ छन्दः—**अनुष्टुप्**॥

घृताची (रात्रि)

वेद॒ वै रा॑त्रि॒ ते नाम॑ घृ॒ताची॒ नाम॒ वा अ॑सि।
तां त्वा भ॒रद्वा॑जो वेद॒ सा नो॑ वि॒त्तेऽधि॑ जाग्रति॥ ६॥

१. हे **रात्रि**=रात्रिदेवि! हम **वै**=निश्चय से **ते नाम वेद**=तेरे नाम को जानते हैं। तू **वा**=निश्चय से **'घृताची' नाम**=घृताची नामवाली **असि**=है। 'घृतम् अञ्चति' (घृ क्षरणदीप्तयोः) मलक्षरण व दीप्ति को प्राप्त करानेवाली है। रात्रि में शरीर में मलों का क्षरण होकर शरीर सबल बनाता है तथा मन क्रोध आदि के हेतुओं को भूलकर दीप्त हो उठता है, अतः रात्रि 'घृताची' कही गई है। २. **ताम्**=उस **त्वा**=तुझको **भरद्वाज**=भरद्वाज **वेद**=जानता है। रात्रि में मनुष्य के अन्दर फिर से शक्ति का भरण-सा होता है। एवं रात्रि हमें 'भरद्वाज' बनाती है। **सा**=वह रात्रि **नः**=हमारे **वित्ते**=तेजस्विता-निर्मलता व ज्ञानरूप धन में **अधिजाग्रति**=अधिक अप्रमत्ता करती है। यह हमारे वित्तों का रक्षण करती है।

भावार्थ—रात्रि घृताची है। यह हमारे मलों का क्षरण करती हुई तेजस्विता की दीप्ति प्राप्त कराती है। यह हममें शक्ति का भरण करती हुई हमें भरद्वाज बनाती है। हमारे शक्ति आदि धनों का रक्षण करती है।

४९. [एकोनपञ्चाशं सूक्तम्]

ऋषिः—**गोपथः**॥ देवता—**रात्रिः**॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्**॥

'संभृतश्रीः' रात्री

इ॒षि॒रा योषा॑ युव॒तिर्दमू॑ना॒ रात्री॑ दे॒वस्य॑ सवि॒तुर्भगा॑स्य।
अ॒श्व॒क्षभा सुहवा॒ संभृ॑तश्रीरा॑ पप्रौ॒ द्यावा॑पृथि॒वी म॑हि॒त्वा॥ १॥

१. रात्रि में सूर्य तो अस्त हो चुका होता है। सूर्य की किरणों से प्रकाशित हुआ-हुआ चन्द्रमा रात्रि को विभा-(प्रकाश)-वाला करता है। यह 'विभा' हमारे लिए सन्तापशून्य प्रकाश को प्राप्त कराती है, अतः कहते हैं कि **सवितुः देवस्य**=सबके प्रेरक—सबको उठकर कार्य-प्रवृत्त होने की प्रेरणा देनेवाले सूर्य—प्रकाशमय सूर्य के **भगस्य**=ऐश्वर्य का **योषा**=अपने में मेल करनेवाली **रात्री**=यह रात्रिदेवता **महित्वा**=अपनी महिमा (फैलाव) से **द्यावापृथिवी**=सारे द्युलोक व पृथिवीलोक को **आपप्रौ**=भर लेती है—सर्वत्र द्यावापृथिवी में अन्धकार का राज्य हो जाता है। २. यह रात्रि **इषिरा**=एष्टव्या है—सबसे प्रार्थनीय है—चाहने योग्य है। यही थके हुए प्राणी की थकावट को दूर करके उसे पुनः तरोताज़ा करती है। अथवा अपनी गति से सर्वत्र व्याप्त हो रही है। **युवतिः**=सदा यौवनवाली है—सृष्टि के प्रारम्भ से अन्त तक एक-सी ही आती-जाती रहती है। **दमूनाः**=सबका दमन करनेवाली है—सबको अभिभूत करनेवाली है। **अश्वक्षभा**=(अश्वान् क्षायति भा दीप्तिर्यस्याः) इन्द्रियों को अभिभूत करनेवाली दीप्तिवाली है। रात्रि के समय सब इन्द्रियाँ कार्य से उपरत हो जाती हैं। यह रात्रि **सुहवा**=सुष्ठु ह्वातव्य—सबसे पुकारने योग्य है। सबसे चाहने योग्य है, **संभृतश्रीः**=यह फिर से हमारे अन्दर श्री का संभरण करने आती है। सब इन्द्रियों को पुनः सशक्त बना देती है।

भावार्थ—रात्रि सारे आकाश को अन्धकार से आपूरित कर देती है। इसमें सब इन्द्रियाँ थककर सो जाती हैं। यह उनमें पुनः शक्ति भरनेवाली होती है। इसी से यह सबसे चाहने योग्य है।

ऋषिः—**गोपथः**॥ देवता—**रात्रिः**॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्**॥

गम्भीर-श्रविष्ठ

अति॒ विश्वा॑न्यरुहद्रम्भी॒रो वर्षि॑ष्ठमरुहन्त॒ श्रवि॑ष्ठाः।
उ॒श॒ती रात्र्यनु॒ सा भ॒द्राभि ति॑ष्ठते मि॒त्रइ॑व स्व॒धाभिः॥ २॥

१. **गम्भीरः**=एक गम्भीर वृत्तिवाला पुरुष **विश्वानि**=सब विघ्नों को **अति अरुहत्**=लाँघकर ऊपर चढ़ता है—उन्नत होता है। इसीप्रकार **श्रविष्ठाः**=ज्ञानी पुरुष **वर्षिष्ठम्**=विशालतम लोक, अर्थात् ब्रह्मलोक को **अरुहन्त**=आरूढ़ होते हैं—ये ब्रह्मलोक को प्राप्त करनेवाले होते हैं। २. **उशती**=इन गम्भीर श्रविष्ठ पुरुषों के हित की कामना करती हुई, **सा रात्री**=वह रात्रि **अनु-भद्रा**=इन गम्भीर श्रविष्ठ पुरुषों के लिए अनुकूलता से कल्याण करती हुई उस प्रकार **अभितिष्ठते**=स्थित होती है, **इव**=जैसेकि **मित्रः**=सूर्य **स्वधाभिः**=अपनी धारणशक्तियों के साथ स्थित होता है। जैसे दिन में इन गम्भीर श्रविष्ठ पुरुषों का सूर्य कल्याण करता है—इनके अन्दर प्राणशक्ति का संचार करता है, इसी प्रकार रात्रि मलक्षरण व दीप्ति के द्वारा इनके लिए कल्याणकर होती है।

भावार्थ—हम मनों में गम्भीर व मस्तिष्क में श्रविष्ठ बनें। तब रात्रि व दिन का सूर्य दोनों ही हमारे लिए कल्याणकर होंगे।

ऋषिः—**गोपथः**॥ देवता—**रात्रिः**॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्**॥

'वर्या वन्दा सुभगा सुजाता'

व॒र्ये॑ वन्दे॒ सुभ॑गे॒ सुजा॑त॒ आज॑गन्रात्रि॒ सुम॑ना॒ इ॒ह स्या॑म्।
अ॒स्मांस्त्रा॑यस्व॒ नर्या॑णि जा॒ता अथो॒ यानि॒ गव्या॑नि पु॒ष्ट्या॥ ३॥

१. हे **वर्ये**=वरणीय—अनिरुद्ध प्रभाववाली, **वन्दे**=स्तुत्य, **सुभगे**=उत्तम भग को प्राप्त करानेवाली **सुजाते**=उत्तम शक्ति के प्रादुर्भाववाली **रात्रि**=रात्रिदेवि! **आजगन्**=तू आयी है। मैं **इह**=यहाँ तुममें **सुमनाः स्याम्**=उत्तम मनवाला होऊँ। रात्रि में सो जाने पर सब क्रोध आदि के भाव समाप्त हो जाते हैं। २. **अस्मान् त्रायस्व**=तू हमारा रक्षण कर तथा **जाता**=उत्पन्न हुई **नर्याणि**=नर- हितकारी वस्तुओं को भी रक्षित कर। **अथ उ**=और निश्चय से **यानि**=जो **गव्यानि**=गौओं के लिए हितकारी वस्तुएँ हैं, उन्हें भी **पुष्ट्या**=हमारी पुष्टि के हेतु रक्षित कर।

भावार्थ—रात्रि वस्तुतः वरणीय है। इसमें सुखमयी नींद को प्राप्त करने से हमारे क्रोध आदि दुर्भाव नष्ट हो जाते हैं और हम 'सुमना' बनते हैं। यह रात्रि हमारे लिए हितकर सब वस्तुओं का रक्षण करे। गौवों के लिए हितकर वस्तुओं का भी रक्षण करे, जिससे हमें उनसे उचित पोषण प्राप्त हो।

ऋषिः—**गोपथः**॥ देवता—**रात्रिः**॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्**॥

सिंह आदि के तेज का अपहरण

सिं॒हस्य॒ रात्र्यु॑श॒ती पी॑ंषस्य॑ व्या॒घ्रस्य॑ द्वी॒पिनो॒ वर्च॒ आ द॑दे।
अश्व॑स्य॒ ब्रध्नं॑ पुरु॒षस्य॑ मा॒युं पुरु॑ रू॒पाणि॑ कृणुषे॒ विभा॑ती॥ ४॥

१. **उशती**=सबके हित की कामना करती हुई, रक्षा की उत्तम व्यवस्थावाली **रात्री**=रात्रिदेवता **सिंहस्य**=शेर के **पींषस्य**=पीस डालनेवाले गजयूथ के **व्याघ्रस्य**=व्याघ्र के और **द्वीपिनः**=चीते के **वर्चः**=तेज को **आददे**=अपहृत कर लेती है। रक्षा की उत्तम व्यवस्था होने पर ये हिंस्र प्राणी प्रजाओं व गवादि पशुओं को हानि नहीं पहुँचा सकते। २. यह रात्री **अश्वस्य**=घोड़े के **ब्रध्नम्**=

मूल को, अर्थात् वेग को (वेग ही घोड़े का मौलिक गुण है) अपहृत कर लेती है, अर्थात् अन्धकार के कारण घोड़ों का आवागमन रुक जाता है। **पुरुषस्य मायुम्**=पुरुष के शब्द को भी अपहृत कर लेती है। सब पुरुषों के निद्रावशीभूत हो जाने पर वाग्-व्यवहार रुक ही जाता है। इसप्रकार हे रात्रि! **विभाती**=तारों से चमकती हुई तू **पुरु रूपाणि**=नानाविध रूपों को **कृणुषे**=करती है।

भावार्थ—रात्रि में रक्षा की उत्तम व्यवस्था होने पर सिंहादि के तेज का अपहरण-सा हो जाता है, वे हानि नहीं कर पाते। अश्वों की गति रुक जाती है। पुरुषों का वाग्-व्यापार थम जाता है, एवं रात्रि के विविध रूप दृष्टिगोचर होते हैं।

ऋषिः—**गोपथः**॥ देवता—**रात्रिः**॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्**॥

रात्रि के प्रारम्भ व अन्त में प्रभु-वन्दन

शिवां रात्रिमनुसूर्यं च हिमस्य माता सुहवा नो अस्तु।
अस्य स्तोमस्य सुभगे नि बोध येन त्वा वन्दे विश्वासु दिक्षु॥ ५॥

१. मैं **शिवां रात्रिम्**=इस कल्याणकारिणी रात्रि को **च**=और **अनु सूर्यम्**=रात्रि की समाप्ति पर उदित होनेवाले सूर्य को **वन्दे**=नमस्कार करता हूँ—इनका स्तवन करता हूँ—इनके गुणों का स्मरण करता हूँ। यह **हिमस्य माता**=तुहिन (अवश्याय-ओस) का निर्माण करनेवाली रात्रि **नः**=हमारे लिए **सुहवा अस्तु**=सुगमता से पुकारने योग्य हो। २. हे **सुभगे**=उत्तम शक्तिरूप ऐश्वर्य को प्राप्त करानेवाली रात्रि! तू हमारे **अस्य स्तोमस्य**=इस स्तोम को **निबोध**=जाननेवाली हो, **येन**=जिस स्तोम से **विश्वासु दिक्षु**=सब दिशाओं में व्याप्त **त्वा**=तुमको **वन्दे**=मैं नमस्कार करता हूँ।

भावार्थ—हम रात्रि के गुणों का स्तवन करते हुए और उचित व्यवहार करते हुए रात्रि से पूर्ण लाभ उठानेवाले हों। रात्रि के प्रारम्भ में हम प्रभु-वन्दन करके सोएँ। रात्रि समाप्ति पर सूर्योदय के समय पुनः प्रभु-वन्दन करनेवाले हों।

ऋषिः—**गोपथः**॥ देवता—**रात्रिः**॥ छन्दः—**आस्तारपङ्क्तिः**॥

बल व ज्ञान

स्तोमस्य नो विभावरि रात्रि राजेव जोषसे।
असाम सर्ववीरा भवाम सर्ववेदसो व्युच्छन्तीरनूषसः॥ ६॥

१. हे **विभावरि**=तारों के प्रकाशवाली **रात्रि**=रात्रिदेवते! तू **नः**=हमारे **स्तोमस्य**=स्तोत्र का इसप्रकार **जोषसे**=प्रीतिपूर्वक सेवन कर, **इव**=जैसेकि **राजा**=एक राजा किसी विद्वान् से किये गये स्तोत्र का सेवन करता है। २. हम रात्रि के महत्त्व को समझें और उसमें ठीक प्रकार से निद्रा का अनुभव करके **व्युच्छन्तीः**=अन्धकार को दूर करती हुई **उषसः अनु**=उषाकालों के साथ, अर्थात् इन उषाकालों में प्रबुद्ध होकर **सर्ववीराः**=वीरतापूर्ण सब अंगोंवाले **भवाम**=हों तथा **सर्ववेदसः**=सब वस्तुओं के ज्ञानवाले **भवाम**=हों। अथवा सब आवश्यक धनों के कमानेवाले बनें। रात्रि में निद्रा शरीर व मन की थकावट को दूर कर देती है। मनुष्य अपने को तरोताज़ा अनुभव करता है। शरीर के अंग सबल बन जाते हैं और बुद्धि ठीक से विषयों का ग्रहण करने लगती हैं।

भावार्थ—रात्रि के महत्त्व को ठीक प्रकार समझकर यदि हम निद्रा में उसका ठीक प्रयोग करेंगे तो प्रातः अपने को सबल व स्फूर्तियुक्त बुद्धिवाला अनुभव करेंगे।

ऋषिः—**गोपथः**॥ देवता—**रात्रिः**॥ छन्दः—**पथ्यापङ्क्तिः**॥

शम्या

शम्या॑ ह॒ नाम॑ दधिषे मम॒ दिप्स॑न्ति॒ ये धना॑।
रात्री॒हि तान्त्सु॒तपा॑ य स्ते॒नो न वि॒द्यते॒ यत्पुन॒र्न वि॒द्यते॑॥ ७॥

१. हे **रात्रि**=रात्रि! तू **ह**=निश्चय से **शम्या** (शत्रुशमनसमर्था)=शत्रुओं के शमन में समर्थ होने से 'शम्या' इस नाम को **दधिषे**=धारण करती है। हे रात्रि! **ये**=जो **मम धना**=मेरे धनों को **दिप्सन्ति**=(दम्भितुमिच्छन्ति) हिंसित करना चाहते हैं, **तान् असु तपा**=उनके प्राणों को सन्तप्त करनेवाली तू **इहि**=प्राप्त हो। रात्रि में रक्षण की उत्तम व्यवस्था होने से कोई भी चोर आदि हमारे धनों का उपहरण नहीं कर पाते। २. **यः स्तेनः**=जो चोर है **न विद्यते**=हमारे राष्ट्र में वह नहीं रह पाता। ये रक्षक पुरुष चोरों को इसप्रकार दण्डित करें **यत्**=कि **पुनः न विद्यते**=फिर यह चोर रह ही नहीं जाए। राष्ट्र में रक्षण-व्यवस्था व दण्ड-व्यवस्था इसप्रकार की हो कि चोरी आदि अपराध समाप्त ही हो जाएँ।

भावार्थ—राज्य में दण्ड-व्यवस्था व रक्षण-व्यवस्था इसप्रकार उत्तम हो कि चोरी इत्यादि का भय समाप्त ही हो जाए।

ऋषिः—**गोपथः**॥ देवता—**रात्रिः**॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्**॥

भद्रा

भ॒द्रासि॑ रात्रि च॒मसो॒ न वि॒ष्टो विष्व॑ङ्गो॒रूप॑ युव॒तिर्बि॑भर्षि।
चक्षु॑ष्मती मे उश॒ती वपूं॑षि॒ प्रति॒ त्वं दि॒व्या न क्षाम॑मुक्थाः॥ ८॥

१. हे **रात्रि**=रात्रिदेवते! तू **विष्टः चमसः न**=परोसे हुए पात्र की भाँति **भद्रा असि**=कल्याण करनेवाली है। **युवतिः**=बुराइयों को हमसे पृथक् करती हुई तथा अच्छाइयों को हमसे मिलाती हुई तू **विष्वङ्**=चारों ओर गति करनेवाले **गोरूपं बिभर्षि**=गोरूप को धारण करती है। गवादि पशुओं का तू धारण करनेवाली होती है। इन्द्रियों को पुनः रूपवाला, शरीर को सौन्दर्यवाला कर देती है। २. **मे उशती**=मेरे हित की कामना करती हुई **चक्षुष्मती**=हमारे रक्षण के लिए अनुग्रहबुद्धि से हमें देखती हुई **त्वम्**=तू **वपूंसि**= हमारे शरीरों को, **दिव्या**=मस्तिष्करूप द्युलोक की शक्तियों को तथा **क्षाम्**=इस निवासस्थानभूत अन्नमयकोश को—स्थूलशरीर को **न प्रति अमुक्थाः**=न छोड़नेवाली हो। तू हमारे शरीरों—मस्तिष्कों व अन्नमयकोश को भी ठीक बनानेवाली हो।

भावार्थ—रात्रि में रक्षण की व्यवस्था ठीक होने पर गवादि पशु सुरक्षित रहते हैं। निद्रा के ठीक आने पर हमारे शरीर, मस्तिष्क व अन्नमयकोश ठीक रहते हैं।

ऋषिः—**गोपथः**॥ देवता—**रात्रिः**॥ छन्दः—**अनुष्टुप्**॥

स्तेन व अघायु को वधदण्ड

यो अ॒द्य स्ते॒न आय॑त्यघा॒युर्मर्त्यो॑ रि॒पुः।
रात्री॒ तस्य॑ प्र॒तीत्य॒ प्र ग्री॒वाः प्र शिरो॑ हनत्॥ ९॥

१. **अद्य**=अब—रक्षा की सुव्यवस्था होने पर **यः स्तेनः आयति**=जो चोर आता है अथवा **अघायुः**=पाप की कामनावाला **मर्त्यः रिपुः**=मनुष्य के रूप में शत्रु आता है, **रात्रि**=यह रात्रि-देवता **तस्य प्रतीत्य**=उसके परोपद्रवकारीभाव को जानकर **ग्रीवाः**=उसकी गर्दनों को **प्रहनत्**=छिन्न

कर देती है तथा **शिरः**=उसके सिर को भी **प्र** (हनत्) छिन्न कर डालती है।

भावार्थ—रात्रि के समय रक्षण की व्यवस्था उत्तम हो। चोरियों व अन्य पापों के होने का सम्भव कम-से-कम कर दिया जाए। इन चोरों व अघायु पुरुषों को समाप्त कर देना ही ठीक है।

ऋषिः—**गोपथो भरद्वाजश्च**॥ देवता—**रात्रिः**॥ छन्दः—**षट्पदाजगती**॥

चोर के शव को वृक्ष पर बाँधना

प्र पादौ॒ न यथा॑यति॒ प्र हस्तौ॒ न यथाशि॑षत्।
यो म॑लिम्लु॒रुपा॑यति॒ स संपि॑ष्टो॒ अपा॑यति।
अपा॑यति॒ स्वपा॑यति॒ शुष्के॑ स्था॒णावपा॑यति॥ १०॥

१. **पादौ प्र** (हनत्)=गतमन्त्र में वर्णित स्तेन व अघायु के पाँवों को छिन्न कर दिया जाए **यथा**=जिससे **न आयति**=यह गति ही न कर सके। **हस्तौ प्र** (हनत्)=इसके हाथों को काट दिया जाए **यथा**=जिससे **न अशिषत्**=(शिष् to heart, to kill) यह किसी को मार न सके। २. **यः**=जो **मलिम्लुः**=चोर **उपायति**=हमारे समीप प्राप्त होता है, **सः**=वह **संपिष्टः**=पिसा हुआ **अपायति**=दूर विनष्ट हो जाता है। **अपायति**=दूर विनष्ट होता है और **सु अपायति**=अच्छी प्रकार सुदूर विनष्ट हो जाता है। यह **शुष्के स्थाणौ अपायति**=सूखे ठूँठरूप वृक्ष पर **अपायति**=विनष्ट होता है। इसे वधदण्ड देकर इसके शव को स्थाणु पर बाँधा जाए, ताकि सब लोग उसके इसप्रकार अन्त को देखकर इन अशुभ कर्मों को न करने का निश्चय करें।

भावार्थ—चोरों को पादच्छेद व हस्तछेद का दण्ड दिया जाए। इनका वध करके इनके शव को शुष्क स्थाणु पर लटका दिया जाए, जिससे औरों को चोरी न करने की प्रेरणा मिले।

५०. [पञ्चाशं सूक्तम्]

ऋषिः—**गोपथः**॥ देवता—**रात्रिः**॥ छन्दः—**अनुष्टुप्**॥

'तृष्टधूम अहि व वृक' विनाश

अध॑ रात्रि तृ॒ष्टधू॑ममशी॒र्षाण॒महिं॑ कृणु।
अ॒क्षौ वृ॒कस्य॒ निर्ज॑ह्या॒स्तेन॒ तं द्रु॑प॒दे ज॑हि॥ १॥

१. हे **रात्रि**=रात्रिदेवते! **अध**=अब **तृष्टधूमम्**=आर्तिजनक व बड़ी प्यास लगानेवाली विष-ज्वाला के धूमवाले **अहिम्**=इस सर्प को **अशीर्षाणम्**=छिन्न शिरवाला **कृणु**=कर दे। इस **वृकस्य**=भेड़िये की आँखों को भी **निर्जह्याः**=निर्युक्त कर दे—निकाल दे और जो **स्तेन** (स्तेनः)=चोर है **तम्**=उसको **द्रुपदे जहि**=गति के साधनभूत पाँव में हिंसित कर, अर्थात् इसके पाँवों को छिन्न कर डाल।

भावार्थ—रात्रि में उचित रक्षणव्यवस्था द्वारा 'सर्प, वृक व चोर' सभी के भयों से प्रजा को मुक्त किया जाए।

ऋषिः—**गोपथः**॥ देवता—**रात्रिः**॥ छन्दः—**अनुष्टुप्**॥

उत्तम-वृषभ

ये ते॑ रात्र्यनड्वा॒हस्तीक्ष्ण॑शृङ्गाः स्वा॒शवः॑।
तेभि॑र्नो॒ अद्य पा॑र॒याति॑ दु॒र्गाणि॑ वि॒श्वहा॑॥ २॥

१. हे **रात्रि**=रात्रिदेवते! **ये**=जो **ते**=तेरे **स्वाशवः**=उत्तम तीव्र गतिवाले **तीक्ष्णशृङ्गाः**=तेज

सींगोंवाले **अनड्वाहः**=बैल हैं, **तेभिः**=उनके द्वारा **नः**=हमें **अद्य**=आज और **विश्वहा**=सदा (विश्वेषु अहःसु) **दुर्गाणि**=कष्टमय स्थितियों से दुस्तर नदी आदि से **अति पारय**=पार करा। २. जैसे बैल दुस्तर नदी आदि को पार कराने में हमारे सहायक होते हैं, इसीप्रकार राजा हमें शत्रुकृत अरिष्टों से पार कराए।

भावार्थ—नदी आदि को पार कराने के लिए शीघ्रगतिवाले तीक्ष्णशृंग बैलों की उत्तम व्यवस्था की जाए।

ऋषिः—**गोपथः** ॥ देवता—**रात्रिः** ॥ छन्दः—**अनुष्टुप्** ॥

विघ्न-संतरण

रात्रिंरात्रिमरिष्यन्तस्तरेम तन्वा ∫ वयम्।
गम्भीरमप्लवाइव न तरेयुरर्तयः ॥ ३ ॥

१. **वयम्**=हम **रात्रिंरात्रिम्**=प्रत्येक रात्रि में **तन्वा**=शरीर से **अरिष्यन्तः**=हिंसित न होते हुए **तरेम**=सब विघ्नों व रोगों को तैर जाएँ। प्रत्येक रात्रि हमें फिर से सशक्त बनानेवाली हो। २. **अरातयः**=अदान की वृत्तिवाले कृपण लोग रोगों व विघ्नों को इसप्रकार **न तरेयुः**=तैरनेवाले न हों, **इव**=जैसेकि **अप्लवाः**=बेड़े (raft) से रहित पुरुष **गम्भीरम्**=गहरे जल को पार नहीं कर पाते। कृपणता हमारे जीवन को अयज्ञिय बना देती है और इसप्रकार दीर्घजीवन सम्भव नहीं रहता।

भावार्थ—हम कृपणता आदि शत्रुभूत वृत्तियों से ऊपर उठकर प्रति रात्रि शक्ति-सम्पन्न बनते हुए रोगों व विघ्नों को तैर जाएँ।

ऋषिः—**गोपथः** ॥ देवता—**रात्रिः** ॥ छन्दः—**अनुष्टुप्** ॥

अपवान् शाम्याक की भाँति

यथा शाम्याकः प्रपतन्नपवान्नानुविद्यते।
एवा रात्रि प्र पातय यो अस्माँ अभ्यघायति ॥ ४ ॥

१. **यथा**=जैसे **शाम्याकः**=धान्यविशेष **प्रपतन्**=पक कर गिरता हुआ **अपवान्**=अपकर्षवाला दुर्बल, निःसार हुआ-हुआ **न अनु विद्यते**=अवस्थिति को प्राप्त नहीं करता—नहीं उपलब्ध होता—नष्ट हो जाता है, २. **एवा**=इसीप्रकार हे **रात्रि**=रात्रिदेवते! तू **प्रपातय**=उसे नष्ट कर दे **यः**=जो शत्रु **अस्मान्**=हमें **अभि अघायति**=लक्ष्य करके हिंसारूप पापकर्म करना चाहता है।

भावार्थ—रात्रि हमारे प्रति हिंसावाले को इसप्रकार नष्ट कर दे जैसेकि पका हुआ शाम्याक धान्य साररहित होने पर उड़-उड़ा जाता है।

ऋषिः—**गोपथः** ॥ देवता—**रात्रिः** ॥ छन्दः—**अनुष्टुप्** ॥

स्तेनों व तस्करों का अपसारण

अप स्तेनं वासो गोअजमुत तस्करम्। अथो यो अर्वतः शिरोऽभिधाय निनीषति ॥ ५ ॥

१. **वासः**=वस्त्रों को, **गो अजम्**=गौओं व बकरियों को जो **निनीषति**=उठाकर ले-जाना चाहता है, उस **स्तेनम्**=चोर को **अप** (सारय)=दूर कर। २. उस **तस्करम्**=उस-उस दुष्टकार्य को करनेवाले तस्कर को भी **अथ उ**=अब निश्चय से दूर कर **यः**=जो **अर्वतः**=घोड़ों को **शिरः अभिधाय**=सिर को बाँधकर—सिर पर, न पहचाने जाने के लिए कपड़ा आदि बाँधकर, **निनीषति**=ले-जाना चाहता है।

भावार्थ—राजा रात्रि में इसप्रकार रक्षण-व्यवस्था करे कि 'वस्त्रों, गौवों, बकरियों व घोड़े' आदि का अपहरण न होता रहे।

ऋषिः—**गोपथः**॥ देवता—**रात्रिः**॥ छन्दः—**अनुष्टुप्**॥

अयः वसु

यद्‌द्या रात्रि सुभगे वि॒भज॒न्त्यो॒ वसु॑। यदे॒तद॒स्मान्भोज॒य॒ यथे॒द॒न्यानु॑पा॒यसि॑॥ ६॥

१. हे **सुभगे**=उत्तम ऐश्वर्योंवाली—ऐश्वर्यों की रक्षक **रात्रि**=रात्रिदेवते! **यत्**=जिसकी लोहा आदि धातुओं से बनी वस्तुओं तथा **वसु**=सुवर्णादि धन को **अद्य**=इस समय **विभजन्ति**=(विश्लेषयन्ति) हमसे पृथक् करते हैं, अर्थात् चुरा ले-जाते हैं। **यत् एतत्**=जो यह धन है उसे **अस्मान् भोजय**=हमें ही भोगनेवाला बनाइए। इस धन को हमसे कोई पृथक् न कर पाए। २. हे राजन्! आप रात्रि में इसप्रकार रक्षण-व्यवस्था करें कि **यथा**=जिससे **इत्**=निश्चयपूर्वक **अन्यान्**=वस्त्र, गौ, अज व अश्व आदि अन्य शत्रुओं से अपहृत पदार्थों को भी **उपावसि**=हमें पुनः प्राप्त कराते हैं।

भावार्थ—रात्रि में रक्षण-व्यवस्था इस प्रकार उत्तम हो कि लोहे आदि धातुओं से बनी वस्तुओं का तथा सुवर्ण आदि का अपहरण न हो सके। अपहृत वस्तुओं को भी ढूँढकर पुनः उनके स्वामी को प्राप्त कराया जाए।

ऋषिः—**गोपथः**॥ देवता—**रात्रिः**॥ छन्दः—**अनुष्टुप्**॥

कालचक्र में आगे और आगे

उ॒षसे॑ नः॒ परि॑ देहि॒ सर्वा॒न्रात्र्य॑नागसः। उ॒षा नो॒ अह्ने॒ आ भ॑जा॒दह॒स्तुभ्यं॑ विभावरि॥ ७॥

१. हे **रात्रि**=रात्रिदेवते! तू **नः सर्वान्**=हम सब **अनागसः**=निष्पापों को ही **उषसे परिदेहि**=उषाकाल के लिए दे, अर्थात् हम रात्रि में किन्हीं भी चोरों आदि के उपद्रवों से आक्रान्त न हों। २. **उषाः**=उषा **नः**=हमें **अह्ने आभजात्**=दिन के लिए देनेवाली हो और **विभावरि**=तारों की दीप्तिवाली रात्रिदेवते! **अहः**=दिन हमें फिर **तुभ्यम्**=तेरे लिए प्राप्त कराए।

भावार्थ—हम सुरक्षितरूप से ही रात्रि से उषा में, उषा से दिन में तथा दिन से पुनः रात्रि में पग रखनेवाले हों। 'रात्रि-उषा-दिन-रात्रि' इसप्रकार क्रम से कालचक्रों में चलते हुए हम दीर्घजीवनवाले हों।

यह निष्पाप (अनागाः) जीवनवाला व्यक्ति 'ब्रह्मा' बनता है और कहता है कि—

५१. [एकपञ्चाशं सूक्तम्]

ऋषिः—**ब्रह्मा**॥ देवता—**आत्मा**॥ छन्दः—**एकपदाब्राह्म्यनुष्टुप्**॥

अनिन्दित जीवनवाला 'ब्रह्मा'

अयु॑तोऽहमयु॑तो म आ॒त्मायु॑तं मे॒ चक्षु॒रयु॑तं मे॒ श्रोत्र॒मयु॑तो
मे प्रा॒णोऽयु॑तो मेऽपा॒नोऽयु॑तो मे व्या॒नोऽयु॑तो॒ऽहं सर्वः॑॥ १॥

१. (यु निन्दायाम्) **अयुतः अहम्**=अनिन्दित जीवनवाला मैं होऊँ। **मे आत्मा अयुतः**=मेरा मन अनिन्दित हो। **मे चक्षुः अयुतम्**=मेरी आँख अनिन्दित हो—इससे मैं भद्र को ही देखूँ। **मे श्रोत्रं अयुतम्**=मेरा कान अनिन्दित हो—इससे मैं भद्र को ही सुनूँ। २. **मे प्राणः अयुतः**=मेरा प्राण अनिन्दित हो। **मे अपानः अयुतः**=मेरा अपान भी अनिन्दित हो। **मे व्यानः अयुतः**=प्राणापान सन्धिरूप मेरा व्यानवायु भी अनिन्दित हो। **अहं सर्वः अयुत्**=मैं सारे-का-सारा अनिन्दित होऊँ।

भावार्थ—हम निष्पाप जीवनवाले बनकर अनिन्दित जीवनवाले हों।

ऋषिः—**ब्रह्मा**॥ देवता—**आत्मा**॥ छन्दः—**त्रिपदायवमध्योष्णिक्**॥

प्रभु की अनुज्ञा में

देवस्य त्वा सवितुः प्रसवेऽश्विनोर्बाहुभ्यां पूष्णो हस्ताभ्यां प्रसूत आ रभे॥ २॥

१. यह ब्रह्मा जब किसी भी कार्य को प्रारम्भ करता है या किसी भी वस्तु का उपयोग करता है तब कहता है कि मैं **सवितुः देवस्य**=प्रेरक, प्रकाशमय प्रभु की **प्रसवे**=अनुज्ञा में—प्रेरणा में **त्वा आरभे**=तुझे प्रारम्भ करता हूँ (Undertake) अथवा ग्रहण करता हूँ (grasp)। **अश्विनोः बाहुभ्याम्**=प्राणापान के प्रयत्नों से मैं तुझे ग्रहण करता हूँ। अपने पुरुषार्थ से अर्जित धन का ही उपयोग करना चाहिए। २. **पूष्णः हस्ताभ्याम्**=पोषक के हाथों से, **प्रसूतः**=उस प्रभु से अनुज्ञा दिया हुआ मैं तुझे ग्रहण करता हूँ। हमें भौतिक वस्तुओं का प्रयोग पोषण के दृष्टिकोण से ही करना है, नकि स्वाद व सौन्दर्य के दृष्टिकोण से।

भावार्थ—संसार में हम प्रभु की अनुज्ञा में, प्राणापान के प्रयत्न से, पोषण के दृष्टिकोण से ही प्रत्येक वस्तु का ग्रहण करें। यही 'ब्रह्मा' बनने का मार्ग है।

अगले सूक्त का ऋषि भी ब्रह्मा ही है—

५२. [द्विपञ्चाशं सूक्तम्]

ऋषिः—**ब्रह्मा**॥ देवता—**कामः**॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्**॥

कामः=मनसाः प्रथमं रेतः

कामस्तदग्रे समवर्तत मनसो रेतः प्रथमं यदासीत्।
स काम कामेन बृहता सयोनी रायस्पोषं यजमानाय धेहि॥ १॥

१. **तत् अग्रे**=इस सृष्टि के प्रारम्भ में (प्रलय की समाप्ति पर) **कामः समवर्तत**=काम-सिसृक्षा हुआ। प्रभु ने सृष्टि को उत्पन्न करने की कामना की (सोऽकामयत बहु स्यां प्रजायेय) **यत्**=जो काम **मनसः**=मन का **प्रथमं रेतः**=सर्वमुख्य तेज **आसीत्**=था। काम से ही सम्पूर्ण सृष्टि का निर्माण होता है, मानो यह काम ही सृष्टि का बीज (रेतः) हो। २. हे **काम**=काम! तू **बृहता कामेन**=उस महान् काम—कान्त प्रभु के साथ **सयोनिः**=समान निवासवाला होता हुआ **यजमानाय**=यज्ञशील पुरुष के लिए **रायस्पोषं धेहि**=धन की पुष्टि को स्थापित कर। हृदय में प्रभु के साथ निवासवाला काम पवित्र ही होता है (धर्माविरुद्धः कामोऽस्मि भूतेषु भरतर्षभ) यह धर्माविरुद्ध काम हम यज्ञशीलों को धन का पोषण प्राप्त कराए।

भावार्थ—'काम' मन की सर्वमुख्य शक्ति है। 'धर्माविरुद्ध काम' प्रभु का ही रूप है। यह हम यज्ञशील पुरुषों को आवश्यक समृद्धि से युक्त करे।

ऋषिः—**ब्रह्मा**॥ देवता—**कामः**॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्**॥

सहः ओजः

त्वं काम सहसासि प्रतिष्ठितो विभुर्विभावा सख आ सखीयते।
त्वमुग्रः पृतनासु सासहिः सह ओजो यजमानाय धेहि॥ २॥

१. हे **काम**=मानसशक्ते! **त्वम्**=तू **सहसा**=शत्रुधर्षण सामर्थ्य के साथ **प्रतिष्ठितः असि**=हममें प्रतिष्ठित हुआ है। **विभुः**=समर्थ और **विभावा**=विशिष्ट दीप्तिवाला तू है। **सखे**=हे सखि-(मित्र)-वत् हितकारिन् काम! **आ सखीयते**=सखिवत् आचरण करनेवाले के लिए—प्रभु-मित्र बनने की

प्रबल कामनावाले के लिए तू शक्ति देनेवाला (विभु) व दीप्ति प्राप्त करानेवाला होता है (विभावा) २. **त्वम् उग्रः**=तू उद्गूर्ण—प्रबल है। **पृतनासु सासहिः**=शत्रु-संग्रामों में शत्रुओं का मर्षण करनेवाला है। तू **यजमानाय**=यज्ञशील पुरुष के लिए **सहः ओजः**=शत्रु-धर्षण समर्थ बल **धेहि**=धारण कर।

भावार्थ—काम ही सामर्थ्य व दीप्ति देनेवाला है। प्रभु की प्राप्ति की कामनावाले के लिए यह सच्चा मित्र होता है। उसे शत्रु-धर्षण समर्थ धन व बल प्राप्त कराता है।

ऋषिः—**ब्रह्मा**॥ देवता—**कामः**॥ छन्दः—**चतुष्पदोष्णिक्**॥

'स्वः' जय

दूराच्चकमानाय प्रतिपाणायाक्षये।
आस्मा अशृण्वन्नाशाः कामेनाजनयन्त्स्व ऽः॥ ३॥

१. **दूरात् चकमानाय**=दूरविषयक—अत्यन्त दुर्लभ फल को चाहनेवाले **अस्मै**=इस मेरे लिए **प्रतिपाणाय**=सर्वतः रक्षण के लिए और **अक्षये**=क्षयराहित्य के निमित्त **आशाः**=सब दिशाओं में **आशृण्वन्**=फल देने के लिए स्वीकार किया है। केवल स्वीकार ही नहीं किया अपितु **कामेन**=अभिमत फल-विषयक कामना के द्वारा **स्वः अजनयन्**=सुख को उत्पन्न किया है।

भावार्थ—प्रबल संकल्प होने पर दुर्लभ वस्तुएँ भी सुलभ हो जाती हैं और सुख की प्राप्ति होती है।

ऋषिः—**ब्रह्मा**॥ देवता—**कामः**॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्**॥

प्रेम की पारस्परिकता

कामेन मा काम आगन्हृदयाद्धृदयं परि।
यदमीषामदो मनस्तदैतूप मामिह॥ ४॥

१. **कामेन**=इच्छा से **कामः**=इच्छा **मा**=मुझे **आगन्**=प्राप्त हुई है। वह इच्छा जोकि **हृदयात्**=एक हृदय से **हृदयं परि**=दूसरे हृदय के प्रति हुआ करती है। दूसरा व्यक्ति मुझे चाहता है तो मैं भी उसे चाहनेवाला बनता हूँ। उसकी कामना ने मुझमें भी कामना को पैदा किया है। वस्तुतः प्रेम पारस्परिक ही हुआ करता है। २. **यत्**=जो **अमीषाम्**=उनका—मुझसे दूर स्थित ज्ञानियों का **अदः मनः**=मुझ से दूर गया हुआ मन है **तत् माम् इह उप आ एतु**=वह मुझे यहाँ समीपता से प्राप्त हो। मैं ज्ञानियों का प्रिय बनूँ।

भावार्थ—प्रेम पारस्परिक हुआ करता है। मैं ज्ञानियों का प्रिय बनूँ—मुझे ज्ञानी प्रिय हों।

ऋषिः—**ब्रह्मा**॥ देवता—**कामः**॥ छन्दः—**उपरिष्टाद्बृहती**॥

यज्ञ=इष्टकामधुक्

यत्काम कामयमाना इदं कृण्मसि ते हविः।
तन्नः सर्वं समृध्यतामथैतस्य हविषो वीहि स्वाहा॥ ५॥

१. हे **काम**='काम' (आशे) **यत्**=जिस फल को **कामयमानाः**=चाहते हुए हम **ते**=तेरे **इदं हविः कृण्मसि**=इस हवि को करते हैं, अर्थात् जिस फल की कामना से हम यज्ञ करते हैं—हमारी **तत् सर्वम्**=वह सब इच्छा **समृध्यताम्**=समृद्ध हो—फूले-फले। २. **अथ**=अब हे काम! **एतस्य**=इस दी हुई **हविषः**=हवि का तू **वीहि**=भक्षण कर। यह हवि **स्वाहा**=तेरे लिए सुहुत हो। हम जब किसी कामना से यज्ञ करें तब उसे सम्यक् करनेवाले बनें।

भावार्थ—मन से प्रेरित होकर ही मनुष्य यज्ञादि उत्तम कर्मों को किया करता है। सदा किया जाता हुआ हमारा यह यज्ञ फल से समृद्ध हो। (काम्यो हि वेदाधिगमः कर्मयोगश्च वैदिकः)

अगले तीन सूक्तों में 'भृगु' ऋषि हैं—ये ज्ञानाग्नि में आपने को परिपक्व करके प्रभु को 'काल' नाम से स्मरण करते हैं—

५३. [त्रिपञ्चाशं सूक्तम्]

ऋषिः—**भृगुः**॥ देवता—**कालः**॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्**॥

'सर्वजगत् कारणभूतः कालरूपः' परमात्मा

कालो अश्वो वहति सप्तरश्मिः सहस्राक्षो अजरो भूरिरेताः।
तमा रोहन्ति कवयो विपश्चितस्तस्य चक्रा भुवनानि विश्वा॥ १॥

१. **कालः**=सबका संख्यान करनेवाला (मृत्यु) **अश्वः**=भूत, भविष्यत्, वर्तमानकाल की सब वस्तुओं का व्यापन करनेवाला, **सप्तरश्मिः**=सात छन्दोमयी वेदवाणीरूप सात रश्मियोंवाला यह प्रभु **वहति**=अपने पर आरोहण करनेवालों को अभिमत स्थान में प्राप्त कराता है। यह प्रभु **सहस्राक्षः**=अनन्त आँखोंवाला है—सर्वत्र दृष्टिशक्तिवाला है। **अजरः**=कभी जीर्ण न होनेवाले वे प्रभु **भूरिरेताः**=प्रभूत जगत् सर्जनसमर्थशक्ति-सम्पन्न है। २. **विपश्चितः कवयः**=अधिगत परमार्थ ज्ञानी लोग **तम् अरोहन्ति**=उस प्रभु का आरोहण करते हैं। **तस्य**=उस प्रभु के **चक्रा**=(चङ्क्रमणात् चक्रम् नि० ४.२१) गन्तव्य स्थान **विश्वा भुवनानि**=सब भुवन हैं—वे प्रभु सब लोक-लोकान्तरों में व्याप्त हैं।

भावार्थ—प्रभु 'काल, अश्व, सप्तरश्मि, सहस्राक्ष, अजर, व भूरिरेताः' हैं। तत्त्वद्रष्टा पुरुष ही इन प्रभु को प्राप्त करते हैं। प्रभु सब लोक-लोकान्तरों में गये हुए—व्याप्त हैं।

ऋषिः—**भृगुः**॥ देवता—**कालः**॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्**॥

कर्ता-संहर्ता

सप्त चक्रान्वहति काल एष सप्तास्य नाभीरमृतं न्वक्षः।
स इमा विश्वा भुवनान्यञ्जत्कालः स ईयते प्रथमो नु देवः॥ २॥

१. **एषः कालः**=यह सबका संकलन करनेवाला प्रभु **सप्त चक्रान्**=सात चक्राकार में गति करनेवाले लोकों को **वहति**=धारण करता है। 'भूः, भुवः, स्वः, महः, जनः, तपः, सत्यम्'—इन व्याहृति शब्दों में इन सात लोकों का प्रतिपादन हुआ है। **सप्त**=सात ही **अस्य**=इस प्रभु के **नाभिः**=(नह् बन्धने) बन्धन के साधन हैं। सात छन्दोमयी वेदवाणियाँ हमें उस प्रभु को प्राप्त करानेवाली होती हैं। इन वेदवाणियों का **अक्षः**=अध्यक्ष प्रभु **नु**=निश्चय से **अमृतम्**=अमृत है। २. **सः**=वह अमृत प्रभु ही **इमा विश्वा भुवनानि**=इन सब लोकों को **अञ्जत्**=व्यक्त करता हुआ—इनकी सृष्टि करता हुआ **सः** (षोऽन्तकर्मणि स्यति इति) अन्त करनेवाला है। **कालः**=वह इन सबका फिर से संकलन कर लेता है। **नु**=निश्चय वह **प्रथमः देवः**=सर्वप्रथम देव प्रभु **ईयते**=तत्त्वज्ञों से जाना जाता है। तत्त्वज्ञ पुरुष उसे सृष्टिकर्त्ता व संहर्त्ता के रूप में देखते हैं।

भावार्थ—वे प्रभु ही सातों लोकों का धारण करते हैं। वे ही इनको प्रकट करते हैं और अन्ततः इन्हें प्रलीन करनेवाले होते हैं। तत्त्वज्ञ लोग ही प्रभु को इस रूप में देखते हैं।

ऋषिः—**भृगुः** ॥ देवता—**कालः** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥

नानारूपों में—परमानन्दरूप में

पूर्णः कुम्भोऽधि काल आहितस्तं वै पश्यामो बहुधा नु सन्तः।
स इमा विश्वा भुवनानि प्रत्यङ् कालं तमाहुः परमे व्यो ∫ मन्॥ ३॥

१. **पूर्णः कुम्भः**=यह सम्पूर्ण संसारघट—ब्रह्माण्डरूपी घट **काले अधि आहितः**=उस सब जगत् के कारणभूत, नित्य, अनवच्छिन्न परमात्मा में स्थापित है। ब्रह्माण्डरूपी घट का आधार वह प्रभु ही है। **तम्**=उस जन्यकाल के आधारभूत परमात्मा को **वै**=निश्चय से **बहुधा सन्तः**=नाना रूपों में प्रकट होते हुए को (बुद्धिमानों में बुद्धि के रूप में, बलवानों में बल के रूप में) **पश्यामः**=हम देखते हैं। **सः**=वह 'काल' नाम प्रभु ही **इमा विश्वा भुवनानि**=इन सब दृश्यमान भूतजातों को **प्रत्यङ्**=चारों ओर से व्याप्त करनेवाले हैं। **तं कालम्**=उस काल प्रभु को **परमे**=उत्कृष्ट **व्योमन्**=आकाशवत् निर्लेप, सर्वगत, विविध रूप से रक्षक (वि अव् रक्षणे) परमानन्दप्रदायक स्व-स्वरूप में वर्तमान **आहुः**=कहते हैं।

भावार्थ—सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड के आधार वे प्रभु हैं। वे सारे ब्रह्माण्ड में नानारूपों में रह रहे हैं। सब भुवनों में व्याप्त हैं। अपने आकाशवत् निर्लेप परमानन्दस्वरूप में स्थित हैं।

ऋषिः—**भृगुः** ॥ देवता—**कालः** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥

पिता सन्नभवत्पुत्रः एषाम्

स एव सं भुवनान्याभरत्स एव सं भुवनानि पर्यैत्।
पिता सन्नभवत्पुत्र एषां तस्माद्वै नान्यत्परमस्ति तेजः॥ ४॥

१. **सः एव**=वे काल नामक प्रभु ही **भुवनानि**=सब भुवनों का **सम् आभरत्**=सम्यक् भरण (पानल) कर रहे हैं। **सः एव**=वे ही **भुवनानि संपर्यैत्**=सब भुवनों को सम्यक् व्याप्त कर रहे हैं। २. **पिता सन्**=वे प्रभु पिता—उत्पादक होते हुए **एषां पुत्रः अभवत्**=इन लोकों के पुत्र—(पुनाति त्रायते) सबके पवित्र करनेवाले व रक्षण करनेवाले हैं। **तस्मात्**=उस काल नामक प्रभु से **परम्**=उत्कृष्ट **अन्यत् तेजः**=और तेज **वै न अस्ति**=निश्चय से नहीं है। उस प्रभु के तेज से ही तो ये सब लोक-लोकान्तर तेजस्वी हो रहे हैं।

भावार्थ—प्रभु ही सब भुवनों का पोषण करते हैं। वे इन सबमें व्याप्त हैं। इनके वे उत्पादक हैं, पवित्र करनेवाले और रक्षण करनेवाले हैं। उससे अधिक और कोई तेज नहीं है।

ऋषिः—**भृगुः** ॥ देवता—**कालः** ॥ छन्दः—**निचृत्पुरस्ताद्बृहती** ॥

जनिता—धाता

कालेऽमूं दिवमजनयत्काल इमाः पृथिवीरुत।
काले ह भूतं भव्यं चेषितं ह वि तिष्ठते॥ ५॥

१. **कालः**=वह काल नामक प्रभु ही **अमूं दिवम्**=उस विप्रकृष्ट द्युलोक को **अजनयत्**=उत्पन्न करते **उत**=और **कालः**=वे काल नामक प्रभु ही **इमाः पृथिवीः**=इन 'अवमा, मध्यम, व परमा' पृथिवियों को पैदा करते हैं। २. **काले**=उस काल नामक प्रभु में **ह**=ही **भूतम्**=भूतकालावच्छिन्न, भव्यम् भविष्यत्कालावच्छिन, **च**=और **इषितम्**=इष्ट—इष्यमाण यह वर्तमानकालावच्छिन्न जगत् निश्चय से **वितिष्ठते**=विशेषेण आश्रित है।

भावार्थ—प्रभु ही द्युलोक व पृथिवी को पैदा करते हैं। वे ही भूत, भविष्य व वर्तमान लोकों

के आधार हैं।

ऋषिः—**भृगुः**॥ देवता—**कालः**॥ छन्दः—**अनुष्टुप्**॥

'सब विभूतियों के स्त्रोत' प्रभु

कालो भूतिमसृजत काले तपति सूर्यः।
काले ह विश्वा भूतानि काले चक्षुर्वि पश्यति॥ ६॥

१. **कालः**=वे काल नामक प्रभु ही **भूतिम्**=इस संसार की विविध विभूतियों को—ऐश्वर्यों को **असृजत**=उत्पन्न करते हैं। **काले**=उस काल नामक प्रभु के आधार में ही **सूर्यः तपति**=सूर्य दीप्त हो रहा है (तस्य भासा सर्वमिदं विभाति) २. **काले ह**=निश्चय से उस काल में—प्रभु के आधार में ही **विश्वा भूतानि**=सब भूत स्थित हैं—रह रहे हैं। **काले**=उस प्रभु के आधार में ही **चक्षुः विपश्यति**=आँख आदि इन्द्रियाँ दर्शनादि कर्मों को करती हैं।

भावार्थ—सम्पूर्ण विभूति को जन्म देनेवाले वे प्रभु ही हैं। प्रभु की दीप्ति से ही सूर्य आदि दीप्त हो रहे हैं। सब भूतों के आधार वे प्रभु हैं। प्रभु ही आँख आदि में दर्शनादि शक्तियों को रखते हैं।

ऋषिः—**भृगुः**॥ देवता—**कालः**॥ छन्दः—**अनुष्टुप्**॥

'मन-प्राण-नाम-समृद्धि'

काले मनः काले प्राणः काले नाम समाहितम्।
कालेन सर्वा नन्दन्त्यागतेन प्रजा इमाः॥ ७॥

१. उस काल नामक प्रभु में **मनः**=सब प्राणियों के मन **समाहितम्**=आश्रित हैं। **काले**='काल' प्रभु में ही **प्राणः**=पञ्चवृत्तिक प्राण समाहित हैं। **काले**=उस काल प्रभु में ही **नाम**=सब संज्ञाएँ **समाहितम्**=समाहित हैं। सब वस्तुओं के रूपों का निर्माण करके उनके नामों को भी प्रभु ही व्यवहृत करते हैं। २. **आगतेन**=आये हुए—'वसन्त' आदि के रूप में प्राप्त हुए-हुए काल से ही **इमाः सर्वाः प्रजाः**=ये सब प्रजाएँ **नन्दन्ति**=अपने-अपने कार्य की सिद्धि के द्वारा समृद्ध होती हैं—आनन्द का अनुभव करती है।

भावार्थ—उस काल नामक प्रभु से हमें 'मन-प्राण-नाम तथा सब समृद्धियाँ' प्राप्त होती हैं।

ऋषिः—**भृगुः**॥ देवता—**कालः**॥ छन्दः—**अनुष्टुप्**॥

'तप-ज्येष्ठ-ब्रह्म'

काले तपः काले ज्येष्ठं काले ब्रह्म समाहितम्।
कालो ह सर्वस्येश्वरो यः पितासीत्प्रजापतेः॥ ८॥

१. **काले**=उस काल नामक प्रभु में **तपः**=जगत् सर्जन-विषयक पर्यालोचन (तप् पर्यालोचने) **समाहितम्**=समाहित है। **काले**=उस काल में ही **ज्येष्ठम्**=सबसे प्रथम उत्पन्न होनेवाला 'महत्' तत्त्व समाहित है। **काले**=उस काल में ही **ब्रह्म**=ज्ञान समाहित है। २. यह काल ही **सर्वस्य ईश्वरः**= सबका स्वामी है। वह काल **यः**=जोकि **प्रजापतेः**=ब्रह्मा का भी **पिता आसीत्**=पिता है। सात्त्विक सृष्टि के प्रमुख इस ब्रह्मा को भी प्रभु ही जन्म देते हैं।

भावार्थ—काल नाम प्रभु में ही 'तप-ज्येष्ठ-ब्रह्म' की स्थिति है। ये ही सबके स्वामी हैं। ये ही ब्रह्मा को जन्म देते हैं।

ऋषिः—**भृगुः**॥ देवता—**कालः**॥ छन्दः—**अनुष्टुप्**॥

'ब्रह्म' द्वारा 'ब्रह्मा' का धारण

तेनेषितं तेन जातं तदु तस्मिन्प्रतिष्ठितम्।
कालो ह ब्रह्म भूत्वा बिभर्ति परमेष्ठिनम्॥ १॥

१. **तेन**=उस काल से ही **इषितम्**=सम्पूर्ण स्रष्टव्य संसार चाहा जाता है (इष्टं=कामितम्) (सो अकामयत०)। **तेन जातम्**=उस काल नामक प्रभु से ही यह उत्पन्न किया गया है **उ**=और **तत्**=वह उत्पन्न जगत् **तस्मिन् प्रतिष्ठितम्**=उस काल में ही प्रतिष्ठित है। २. **कालः**=काल ही **ब्रह्म भूत्वा**=सञ्चित सुखरूप अबाध्य परमार्थ तत्त्व होकर **परमेष्ठिनम्**=सर्वोच्च स्थिति में स्थित ब्रह्मा को **बिभर्ति**=धारण करता है। कर्मानुसार सर्वोच्च उत्तम सात्त्विक स्थितिवाला जीव ही ब्रह्मा है। यह उस काल नामक प्रभु से ही धारण किया जाता है।

भावार्थ—प्रभु ही सृष्टि की कल्पना करते हैं, इसको उत्पन्न करके इसका धारण करते हैं। 'ब्रह्म' होते हुए ये प्रभु 'ब्रह्मा' (सर्वोच्च सात्त्विक गतिवाले जीव) का धारण करते हैं।

ऋषिः—**भृगुः**॥ देवता—**कालः**॥ छन्दः—**अनुष्टुप्**॥

'प्रजा-प्रजापति-कश्यप व तप' का निर्माता प्रभु

कालः प्रजा असृजत कालो अग्रे प्रजापतिम्।
स्वयंभूः कश्यपः कालात्तपः कालादजायत॥ १०॥

१. **कालः**=वह 'काल' प्रभु ही **प्रजाः असृजत**=सब प्रजाओं को उत्पन्न करता है। **कालः**=काल ही **अग्रे**=सृष्टि के आदि में **प्रजापतिम्**=ब्रह्मा को जन्म देता है। २. सात लोकों के सात सूर्य 'आरोगो, भ्राजः, पटरः, पतंगः, स्वर्णरो, ज्योतिषीमान्, विभासः' (तै० आ० १.७.१) हैं। अष्टम ये कश्यप है (कश्यपोऽष्टमो स महामेरुं न जहाते—तै० आ० १.७.१) यह (कश्यपः पश्यको भवति, यत् सर्वं परिपश्यति इति सौक्ष्म्यात्—तै०आ० १.८.८) सारे ब्रह्माण्ड को प्रकाशमय करता है। यही स्वयंभूः स्वयं होनेवाला है। इस सूर्य को किसी अन्य सूर्य से दीप्ति नहीं प्राप्त होती, परन्तु यह **स्वयम्भूः कश्यपः**=स्वयं होनेवाला सर्वद्रष्टा सूर्य भी **कालात्**=उस काल नामक प्रभु से ही होता है। **तपः**=इस सूर्य का सन्तापक तेज भी **कालात् अजायत**=उस काल नामक प्रभु से ही हुआ है।

भावार्थ—प्रभु ही प्रजाओं को व प्रजापति को उत्पन्न करते हैं। प्रभु ने ही अष्टम सूर्य (कश्यप) को व उसके सन्तापक तेज को उत्पन्न किया है। इस कश्यप का तेज अन्य सातों सूर्यों को दीप्त करता है।

५४. [चतुष्पञ्चाशं सूक्तम्]

ऋषिः—**भृगुः**॥ देवता—**कालः**॥ छन्दः—**अनुष्टुप्**॥

'आपः, ब्रह्म, तपो, दिशः'

कालादापः समभवन्कालाद् ब्रह्म तपो दिशः।
कालेनोदेति सूर्यः काले नि विशते पुनः॥ १॥

१. **कालात्**=उस काल नामक प्रभु से **आपः** (आपो नारा इति प्रोक्ता आपो वै नरसूनवः) सब प्रजाएँ **समभवन्**=उद्भूत हुई। **कालात्**=उस काल से ही **ब्रह्म**=ज्ञान उद्भुत हुआ। उससे ही **तपः दिशः**=सब तप व अन्य कर्मों के निर्देश दिये गये। प्रभु ने प्रजाओं को रचकर मनुष्यों

को वेदज्ञान दिया और वेदज्ञान द्वारा तप व अन्य कर्मों के निर्देश दिये। २. इन कर्मों के करने के लिए उस काल नामक प्रभु ने ही दिन-रात की व्यवस्था की। इस व्यवस्था के लिए **कालेन**=इस काल से ही **सूर्यः उदेति**=सूर्य उदय को प्राप्त होता है और पुनः फिर **काले**=उस काल में ही **निविशते**=विलीन हो जाता है—अस्त हो जाता है।

भावार्थ—प्रभु प्रजाओं को जन्म देकर वेदज्ञान द्वारा तप व अन्य कर्मों का निर्देश देते हैं। उन कर्मों को कर सकने के लिए वे सूर्योदय व सूर्यास्त से दिन-रात की व्यवस्था करते हैं।

ऋषिः—**भृगुः**॥ देवता—**कालः**॥ छन्दः—**त्रिपदाऽऽर्षीगायत्री**॥

'वात, पृथिवी, द्यौः'

कालेन वातः पवते कालेन पृथिवी मही।
द्यौर्मही काल आहिता॥ २॥

१ उस **कालेन**=काल नामक प्रभु की व्यवस्था से **वातःपवते**=वायु बहती है (भीषाऽस्माद् वातः पवते। तै०आ० ८.८.१)। **कालेन**=इस काल से ही **मही पृथिवी**=यह महत्त्वपूर्ण पृथिवी-लोक **आहिता**=दृढ़ता से स्थापित हुआ है। २. यह **मही द्यौः**=महत्त्वपूर्ण द्युलोक भी **काले**=उस काल नामक प्रभु में ही (आहिता) स्थापित है।

भावार्थ—'वायु (अन्तरिक्ष), पृथिवी व द्युलोक' इनका धारण करनेवाला वह काल नामक प्रभु ही है।

ऋषिः—**भृगुः**॥ देवता—**कालः**॥ छन्दः—**अनुष्टुप्**॥

ऋचः+यजुः

कालो ह भूतं भव्यं च पुत्रो अजनयत्पुरा।
कालादृचः समभवन्यजुः कालादजायत॥ ३॥

१. **कालः ह**=वह काल नामक प्रभ ही **भूतम्**=भूतकालाविच्छन्न जगत् को, **अजनयत्**=जन्म देता है। वह काल ही **पुरा**=सृष्टि के प्रारम्भिक काल में **पुत्रः** (पुनाति त्रायते) इन प्रजाओं को पवित्र करता है और रक्षित करता है। उस समय अभी माता-पिता का क्रम नहीं चला होता, अतः उन प्रारिम्भक प्रजाओं का प्रभु ही ध्यान करते हैं। **कालात्**=उस काल से ही **ऋचः**=पादबद्ध मन्त्र **समभवन्**=उत्पन्न हुए और **यजुः**=प्रश्लिष्ट पाठरूप मन्त्र भी **कालात्**=उस काल नामक प्रभु से ही **अजायत**=प्रादुर्भूत हुए।

भावार्थ—प्रभु ही भूत, भव्य व वर्तमान जगतों के निर्माता हैं। प्रभु ही प्रत्येक सृष्टि के प्रारम्भ में पादबद्ध (पद्य) व प्रश्लिष्टपाठ-(गद्य)-रूप मन्त्रों को प्रादुर्भूत करते हैं।

ऋषिः—**भृगुः**॥ देवता—**कालः**॥ छन्दः—**अनुष्टुप्**॥

यज्ञ—देवों के लिए अक्षित भाग

कालो यज्ञं समैरयद्देवेभ्यो भागमक्षितम्।
काले गन्धर्वाप्सरसः काले लोकाः प्रतिष्ठिताः॥ ४॥

१. **कालः**=उस काल प्रभु ने ही **यज्ञम्**=यज्ञ को **सम् ऐरयत्**=सम्यक् प्रेरित किया है जोकि **देवभ्यः**=देवों के लिए **अक्षितम् भागम्**=क्षयरहित—क्षीण न होने देनेवाला भाग है—भजनीय कर्म है। देव यज्ञ करते हैं, अतः क्षीणशक्तिवाले नहीं होते। यज्ञशेष का सेवन करते हुए ये देव अमृत का ही सेवन कर रहे होते हैं। २. **काले**=उस काल नामक प्रभु में ही **गन्धर्वाप्सरसः**=

(गां वेदवाचं धारयन्ति, अप्सु कर्मसु सरन्ति) ज्ञान की वाणियों को धारण करनेवाले ज्ञानी पुरुष तथा यज्ञादि उत्तम कर्मों में प्रवृत्त कर्मकाण्डी लोग **प्रतिष्ठिताः**=प्रतिष्ठित होते हैं। वस्तुतः **काले**=उस प्रभु में ही **लोकाः** (प्रतिष्ठिताः) सब लोक प्रतिष्ठित (आधारित) हैं।

भावार्थ—काल नामक प्रभु देवों के लिए यज्ञ का विधान करते हैं। इस यज्ञ के द्वारा ही ये देव अक्षीणशक्ति बने रहते हैं। सब ज्ञानी व कर्मकण्डी तथा अन्य भी सब लोक इस काल नामक प्रभु में ही प्रतिष्ठित हैं।

ऋषिः—**भृगुः**॥ देवता—**कालः**॥ छन्दः—**षट्पदाविराडष्टिः**॥

अथर्वा तथा अङ्गिरा का अधिष्ठान वह 'काल'

कालेऽयमङ्गिरा देवोऽथर्वा चाधि तिष्ठतः।
इमं च लोकं परमं च लोकं पुण्यांश्च लोकान्विधृतीश्च पुण्याः।
सर्वाँल्लोकानभिजित्य ब्रह्मणा कालः स ईयते परमो नु देवः॥ ५॥

१. **अयम्**=यह **अङ्गिराः देवः**=अंग-अंग में उद्भूत रसवाला—पूर्ण स्वस्थ, देववृत्ति का पुरुष **च**=तथा **अथर्वा**=(अथ अर्वाङ् एनम् एतास्वेतासु अन्विच्छ। गो० ब्रा० १.१.४) ऊर्ध्वरेता बनकर प्रभु को अपने अन्दर ही देखनेवाला पुरुष **काले**=उस प्रभु में ही **अधितिष्ठतः**=अधिष्ठित होते हैं। २. **इमं च लोकम्**=इस कर्मों के अर्जनस्थानभूत भूमिलोक को, **परमं च लोकम्**=उस फलभोग स्थानभूत उत्कृष्ट स्वर्गलोक को, **पुण्यान् च लोकान्**=और अन्य भी पुण्यकर्मार्जित लोकों को, **पुण्याः च विधृतीः**=दुःखलेश से असंस्पृष्ट पवित्र लोकों के धारक **सर्वान् लोकान्**=सभी लोकों को **ब्रह्मणा अभिजित्य**=ज्ञान से जीतकर—ज्ञान द्वारा इन लोकों का विजय कर लेने पर **सः कालः**=वह काल नामक प्रभु **ईयते**=जाना जाता है—पाया जाता है। **नु**=निश्चय से **परमःदेवः**=वह प्रभु ही सर्वोत्कृष्ट देव है।

भावार्थ—हम अंगिरा व अथर्वा बनकर प्रभु में स्थित हों। ज्ञान द्वारा सब लोकों का विजय कर लेने पर ही प्रभु की प्राप्ति होती है।

अथ सप्तमोऽनुवाकः।

५५. [पञ्चपञ्चाशं सूक्तम्]

ऋषिः—**भृगुः**॥ देवता—**अग्निः**॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्**॥

रायस्पोषेण-इषा

रात्रिंरात्रिमप्रयातं भरन्तोऽश्वायेव तिष्ठते घासमस्मै।
रायस्पोषेण समिषा मदन्तो मा ते अग्ने प्रतिवेशा रिषाम॥ १॥

१. **रात्रिंरात्रिम्**=सदा—सब कालों में—प्रत्येक रात, अर्थात् प्रतिदिन **अप्रयातम्**=विना विच्छेद के (प्रयात=dead) **अस्मै**=इस अग्नि के लिए **भरन्तः**=हवि देते हुए, **इव**=जैसेकि **तिष्ठते अश्वाय**=घर में ठहरनेवाले घोड़े के लिए **घासम्**=घास को देते हैं, उसी प्रकार अग्नि के लिए हवि देते हुए हम **मा रिषाम**=मत हिंसित हों। २. हे यज्ञ-अग्ने! हम **रायः पोषेण**=धन के पोषण से तथा **इषा**=उत्तम अन्नों से **मदन्तः**=आनन्दित होते हुए **ते प्रतिवेशाः**=तेरे पड़ोसी होते हुए हिंसित न हो। यह यज्ञाग्नि का सान्निध्य हमें हिंसा से बचाए।

भावार्थ—हम प्रतिदिन बिना विच्छेद के अग्निहोत्र करें। यह अग्निहोत्र हमें उचित धनों का पोषण व उत्तम अन्न प्राप्त करोनवाला हो।

ऋषिः—**भृगुः** ॥ देवता—**अग्निः** ॥ छन्दः—**आस्तारपङ्क्तिः** ॥

अग्नि की भेदक शक्ति

या ते वसोर्वात इषुः सा त एषा तया नो मृड।
रायस्पोषेण समिषा मदन्तो मा ते अग्ने प्रतिवेशा रिषाम्॥ २॥

१. हे अग्ने! **वसोः ते**=हमारे निवासों को उत्तम बनानेवाले तेरी **या**=जो **वाते इषुः**=वायु में प्रेरणा है, अर्थात् जो तू वायु में गति प्राप्त कराती है, **सा एषा**=वह यह गति **ते**=तेरी ही है, अर्थात् तू ही वायु में इस गति को पैदा करके उसे शुद्ध कर डालती है। **तया नो मृड**=वायु में पैदा की गई गति के द्वारा तू हमें सुखी कर। वायुशुद्धि के द्वारा तू हमें नीरोगता देनेवाली हो। २. हे **अग्ने**=यज्ञाग्ने! हम **रायः पोषेण**=धन के पोषण से तथा **इषा**=उत्तम अन्नों से **मदन्तः**= आनन्दित होते हुए **ते प्रतिवेशाः**=तेरे पड़ोसी होते हुए **मा रिषाम**=मत हिंसित हों। न हम यज्ञाग्नि से दूर हों और ना ही हिंसित हों।

भावार्थ—यज्ञाग्नि वायु में अपनी भेदक शक्ति से स्वच्छता उत्पन्न करती है। यह हमारे उत्तम निवास का कारण बनती है।

ऋषिः—**भृगुः** ॥ देवता—**अग्निः** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्**॥

'सायं' अग्निहोत्र से शरीर-पुष्टि

सायंसायं गृहपतिर्नो अग्निः प्रातःप्रातः सौमनसस्य दाता।
वसोर्वसोर्वसुदान एधि वयं त्वेन्धानास्तन्वं पुषेम॥ ३॥

१. **सायंसायम्**=प्रत्येक सायंकाल **नः गृहपतिः**=हमारे घरों का रक्षक यह **अग्निः**=यज्ञ का अग्नि **प्रातःप्रातः**=प्रत्येक प्रातःकाल में भी **सौमनसस्य दाता**=प्रसन्नमनस्कता (सुख) देनेवाला हो। प्रातः-सायं अग्निहोत्र करते हुए आरोग्यतापूर्ण जीवनवाले हम आनन्द का अनुभव करें। २. हे अग्ने! तू **वसोः**=निवास के साधनभूत सब वसुओं (धनों) का **वसुदानः एधि**=धनदाता हो। **वयम्**=हम **त्वा इन्धानाः**=तुझे प्रातः-सायं दीप्त करते हुए **तन्वं पुषेम**=अपने शरीरों का पोषण करें। यह यज्ञाग्नि हमारे शरीरों की शक्तियों का विस्तार करनेवाली हो।

भावार्थ—सायं-प्रातः हवियों से दीप्त किया गया यज्ञाग्नि हमें प्रसन्नमनस्कता प्राप्त कराता है। सब वसुओं को देता हुआ यह हमारे शरीरों का पोषण करता है। सायंकाल का अग्निहोत्र प्रातःकाल तक सौमनस्य का देनेवाला है।

ऋषिः—**भृगुः** ॥ देवता—**अग्निः** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्**॥

'सायं-प्रातः' अग्निहोत्र से दीर्घजीवन

प्रातःप्रातर्गृहपतिर्नो अग्निः सायंसायं सौमनसस्य दाता॥
वसोर्वसोर्वसुदान एधीन्धानास्त्वा शतंहिमा ऋधेम॥ ४॥

१. **प्रातःप्रातः**=प्रत्येक प्रातःकाल में **गृहपतिः**=हमारे घरों का रक्षक यह **अग्निः**=यज्ञाग्नि **सायंसायम्**=प्रत्येक सायंकाल में भी **सौमनसस्य दाता**=प्रसन्नमनस्कता को देनेवाला हो। २. **वसोःवसोः वसुदानः एधि**=निवास के लिए आवश्यक प्रत्येक वसु का देनेवाला हो। हे अग्ने! **त्वा**=तुझे **इन्धानाः**=हवियों से दीप्त करते हुए **शतंहिमाः ऋधेम**=सौ वर्ष तक हम समृद्ध हों। यह अग्निहोत्र हमें नीरोगता, शक्तियों का पोषण व सौमनस को देता हुआ शतवर्ष की आयुष्य को प्राप्त कराए।

भावार्थ—हम प्रातः-सायं अग्निहोत्र करते हुए सौमनस व वसुओं को प्राप्त करके शतवर्ष

के आयुष्य को प्राप्त करें। प्रातःकाल का अग्निहोत्र सायं तक सौमनस्य देता है

ऋषिः—**भृगुः** ॥ देवता—**अग्निः** ॥ छन्दः—**विराट्पुरउष्णिक्** ॥

अपश्चा दग्धान्नस्य

अपश्चा दग्धान्नस्य भूयासम्।
अन्नादायान्नपतये रुद्राय नमो अग्नये।
सभ्यः सभां मे पाहि ये च सभ्याः सभासदः ॥ ५ ॥

१. अग्निहोत्र में एक व्यक्ति घृत व अन्न को अग्नि में आहुत करता है। वह अन्न दग्ध होता प्रतीत होता है। मैं **दग्धान्नस्य**=इस अग्निहोत्र में दग्ध अन्न के **अपश्चा**=पीछे न रहनेवाला **भूयासम्**=बनूँ, अर्थात् खूब ही अग्निहोत्र करूँ। **अन्नादाय**=इस अन्न का अदन करनेवाले **अन्नपतये**=अन्नों के स्वामी (पर्जन्यादन्नसंभवः, यज्ञाद्भवति पर्जन्यः) **रुद्राय**=रोगों का द्रावण करनेवाले **अग्नेय**=अग्नि के लिए **नमः**=मैं आदरपूर्वक अन्न अर्पित करता हूँ (नमः=अन्न, आदर)। २. यह **सभ्यः**=हमारी सभा में—हमारे गृहों में होनेवाला अग्नि हो, अर्थात् हम सदा घरों में अग्निहोत्र करनेवाले हों। हे अग्ने! **मे सभां पाहि**=मेरे घर का रक्षण कर, **च**=और **ये**=जो **सभासदः**=गृह में आसीन होनेवाले सभासद् हैं, उनका भी रक्षण कर।

भावार्थ—हम खूब ही अग्निहोत्र करनेवाले हों। अग्नि हमें अन्न देता हुआ व हमारे रोगों का द्रावण करता हुआ हमारा रक्षण करे।

ऋषिः—**भृगुः** ॥ देवता—**अग्निः** ॥ छन्दः—**निचृदनुष्टुप्** ॥

यज्ञों द्वारा प्रभु-पूजन व पूर्णजीवन की प्राप्ति

त्वमिन्द्रा पुरुहूत विश्वमायुर्व्य ∫ श्नवम्।
अहरहर्बलिमित्ते हरन्तोऽश्वायेव तिष्ठते घासमग्ने ॥ ६ ॥

१. हे **इन्द्र**=परमैश्वर्यशालिन्! **पुरुहूत**=पालक व पूरक है आह्वान (प्रार्थना) जिसकी, ऐसे प्रभो! **त्वम्**=आप **विश्वम्**=सम्पूर्ण **आयुः**=जीवन को **व्यश्नवत्**=(प्रापय। पुरुषव्यत्ययः लेटि रूपम्) प्राप्त कराइए। २. हे **अग्ने!**=यज्ञाग्ने! **तिष्ठते अश्वाय घासम् इव**=गृह में स्थित घोड़े के लिए जैसे प्रेम से घास प्राप्त कराते हैं, इसी प्रकार हम **ते**=तेरे लिए **अहरहः**=प्रतिदिन **इत्**=निश्चय से **बलिम्**=बलि को—अन्नभाग को **हरन्तः**=प्राप्त कराते हुए हों।

भावार्थ—हम यज्ञों के द्वारा प्रभु-पूजन करें। प्रभु हमें शतवर्ष के पूर्णजीवन को प्राप्त कराएँगे।

यज्ञों में प्रवृत्त व्यक्ति अपने जीवन को नियमित बनाता है, अतः 'यम' होता है। यह यम ही अगले दो सूक्तों का ऋषि है—

५६. [षट्पञ्चाशं सूक्तम्]

ऋषिः—**यमः** ॥ देवता—**दुःष्वप्ननाशनम्** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥

'धीर' स्वप्न

यमस्य लोकादध्या बभूविथ प्रमदा मर्त्यान्प्र युनक्षि धीरः।
एकाकिना सरथं यासि विद्वान्त्स्वप्नं मिमानो असुरस्य योनौ ॥ १ ॥

१. हे स्वप्न! तू **यमस्य लोकात् अधि**=यम के लोक से **आबभूविथ**=प्रकट हुआ है, अर्थात्

स्वप्न की उत्पत्ति ही मानो मृत्युलोक से होती है—यह शीघ्रमृत्यु का कारण बनता है। हे दुःष्वप्न! तू आकर **धीरः**=(धियम् ईरयति) बुद्धि को काम्पित कर देनेवाला होता हुआ, अर्थात् किसी से भी भयभीत न होता हुआ **प्रमदाः**=स्त्रियों को **मर्त्यान्**=और पुरुषों को **प्रयुनक्षि**=अपने से जोड़ता है। २. अब **विद्वान्**=नानाप्रकार की बातों को जानता हुआ तू (स्वप्न में न जाने कब के संस्कार जाग उठते हैं) **एकाकिना**=अकेले उस स्वप्नद्रष्टा पुरुष के साथ **सरथं यासि**=इस समान शरीररूप रथ में गति करता है। हे दुःस्वप्नाभिमानिन् देव! तू **असुरस्य**=(असुः प्राणः, तद्वान् असुरः) प्राणवान् आत्मा के **योनौ**=उपलब्धि स्थान हृदय में **स्वप्नम्**=कष्टमय, अनिष्टफलप्रद स्वप्न को **मिमानः**=निर्मित करता हुआ है। यह दुःस्वप्न की देवता इस स्वप्नद्रष्टा को यमलोक में ले-जाती है।

भावार्थ—स्वप्न हमारी बुद्धियों को कम्पित कर देता है। हृदय में भय पैदा करता हुआ यह शीघ्र मृत्यु का कारण बनता है।

ऋषिः—**यमः**॥ देवता—**दुःष्वप्ननाशनम्**॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्**॥

बन्धः+विश्वचयाः

बन्धस्त्वाग्रे विश्वचया अपश्यत्पुरा रात्र्या जनितोरेके अह्नि।
ततः स्वप्नेदमध्या बभूविथ भिषग्भ्यो रूपमपगूहमानः॥ २॥

१. हे **स्वप्न**=स्वप्न! **बन्धः**=शरीर में मल के बन्धवाला **विश्वचयाः**=नानाप्रकार की अवाञ्छनीय बातों का अपने में चयन करनेवाला व्यक्ति **त्वाम् अग्रे**=तुझे नींद के प्रारम्भ में, गाढ़ी नींद आने से पूर्व, **अपश्यत्**=देखता है। **पुरा रात्र्याः जनितोः**=रात्रि के प्रादुर्भाव से पहिले ही कई बार स्वप्न आने लगते हैं। **एके अह्नि**=कई तो दिन में ही स्वप्न देखने लगते हैं। वस्तुतः स्वप्न के मुख्यकारण दो ही हैं। एक तो शरीर में मलसञ्चय, दूसरा मन में व्यर्थ की बातों (भावों) का सञ्चय। २. **ततः**=तभी हे स्वप्न! तू **इदम्**=इस शरीर को **अधि आबभूविथ**=व्याप्त कर लेता है। तेरा इस शरीर पर राज्य-सा हो जाता है, और तू इसमें नाना रोगों की उत्पत्ति का कारण बनता है। **भिषग्भ्यः**=वैद्यों से तू **रूपम् अपगूहमानः**=अपने रूप को छिपाये रहता है, अर्थात् वैद्य तेरी चिकित्सा नहीं कर पाते। यह स्वप्नरूप रोग वैद्यों के क्षेत्र से बाहर का है।

भावार्थ—स्वप्न का कारण शरीर में मलबन्ध व हृदय में व्यर्थ की बातों का समावेश है। तभी स्वप्न हमें आ घेरते हैं। ये नानाप्रकार के रोगों का कारण बनते हैं। ये रोग वैद्यों की चिकित्सा के विषय नहीं बनते।

ऋषिः—**यमः**॥ देवता—**दुःष्वप्ननाशनम्**॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्**॥

'असुर व दिव्य' विविध स्वप्न

बृहद्गावासुरेभ्योऽधि देवानुपावर्तत महिमानमिच्छन्।
तस्मै स्वप्नाय दधुराधिपत्यं त्रयास्त्रिंशासः स्व ∫ रानशानाः॥ ३॥

१. **बृहद्गावा** (बृहतः=दुष्प्रधर्षान् अपि गाते)=बड़े शक्तिशाली पुरुषों को भी प्राप्त होनेवाला यह स्वप्न **असुरेभ्यः**=अपने ही प्राणों में रमण करनेवाले विलासी पुरुषों से **देवान् उपावर्तत**=देववृत्ति के पुरुषों को प्राप्त हुआ। मानो, यह स्वप्न भी **महिमानम् इच्छन्**=महत्त्व की कामनावाला हो, स्वप्न यह नहीं चाहता कि यह कहा जाए कि 'स्वप्न असुरों को ही आते हैं, सुरों को नहीं'। २. **त्रयस्त्रिंशासः**=तेतीस के तेतीस **स्वः आनशानाः**=स्वर्ग को व प्रकाश को व्याप्त करते हुए

देव **तस्मै स्वप्नाय**=उस स्वप्न के लिए **आधिपत्यं दधुः**=आधिपत्य को स्थापित करते हैं। स्वप्न को ये देव सभी का अधिपति बनाते हैं। अन्तर इतना ही है कि असुरों को आसुर (बुरे) स्वप्न आते हैं और देवों को दिव्य (उत्तम) स्वप्न आया करते हैं। 'स्वप्नज्ञानालम्बनं वा' इस योगसूत्र के अनुसार वे देव प्रभु का भी स्वप्न में ही तो दर्शन करते हैं। ये स्वप्न सचमुच महिमावाले होते हैं।

भावार्थ—स्वप्न असुरों व देवों दोनों को ही प्राप्त होते हैं। असुरों के स्वप्न आसुरपन को लिये हुए होते हैं तो देवों को स्वप्न दिव्यतावाले हुआ करते हैं। ये दिव्यस्वप्न भी महिमाशाली होते हैं।

ऋषिः—**यमः**॥ देवता—**दुःष्वप्ननाशनम्**॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्**॥

स्वप्नों का न आना, या उत्कृष्ट स्वप्नों का आना

नैतां विदुः पितरो नोत देवा येषां जल्पिचरत्यन्तरेदम्।
त्रिते स्वप्नमदधुराप्त्ये नर आदित्यासो वरुणेनानुशिष्टाः॥ ४॥

१. **एताम्**=इस स्वप्नवृत्ति को **पितरः**=रक्षणात्मक कार्यों में लगे हुए लोग **न विदुः**=नहीं जानते। इन पितरों को अशुभ स्वप्न नहीं आते **उत**=और **वे देवाः**=देव भी इस स्वप्नवृत्ति को नहीं जानते, **येषाम्**=जिन देवों की **इदम् अन्तरा**=इस हृदयाकाश में **जल्पिः**=प्रभु से वार्त्तालाप **चरति**=होता है। २. ये **वरुणेन अनुशिष्टाः**=पापों के निवारक प्रभु से अनुशिष्ट हुए-हुए **आदित्यासः**=सब अच्छाइयों का आदान करनेवाले **नरः**=उन्नति-पथ पर चलनेवाले लोग पहले तो स्वप्नों को देखते ही नहीं, देखते भी हैं तो **आप्त्ये**=प्रभु को प्राप्त करनेवालों में उत्तम **त्रिते**=काम, क्रोध, लोभ को तैर जानेवाले चित्त के विषय में **स्वप्नम् अदधुः**=स्वप्न को धारण करते हैं। इन्हें स्वप्न में 'त्रित आप्त्य' का ही दर्शन होता है। ये उस-जैसा बनने का ही स्वप्न लेते हैं।

भावार्थ—हृदयाकाश में प्रभु से बात करनेवाले पितर व देव अशुभ स्वप्नों को नहीं देखते। इन्हें 'त्रित आप्त्यों' के विषय में ही स्वप्न आते हैं और ये वैसा ही बनने का स्वप्न लेते हैं।

ऋषिः—**यमः**॥ देवता—**दुःष्वप्ननाशनम्**॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्**॥

दुष्कृत को क्रूर स्वप्न, सुकृत को पुण्यस्वप्न

यस्यं क्रूरमभजन्त दुष्कृतोऽस्वप्नं सुकृतः पुण्यमायुः।
स्व ∫र्मदसि परमेण बन्धुना तप्यमानस्य मनसोऽधि जज्ञिषे॥ ५॥

१. **दुष्कृतः**=दुष्कर्म (पापकर्म) करनेवाले लोग **यस्य**=जिस दुःस्वप्न के **क्रूरम् अभजन्त**=भयंकर अनिष्ट फल को प्राप्त करते हैं, इसके विपरीत **सुकृतः**=पुण्यकर्मा लोग **अस्वप्नेन**=स्वप्नों के अभाव के कारण **पुण्यम् आयुः**=पुण्य जीवन को प्राप्त करते हैं। २. हे स्वप्न! **तप्यमानस्य**=खूब तपस्या में प्रवृत्त मनुष्य के **मनसः अधिजज्ञिषे**=मन से जब तू प्रकट होता है, तब **परमेण बन्धुना**=उस परम बन्धु परमात्मा के साथ बातचीत में **स्वः मदसि**=ज्ञान के प्रकाश से आनन्द का अनुभव करता है, अर्थात् तपस्वी स्वप्न में प्रभु के साथ बात करता है और ज्ञान के प्रकाश को प्राप्त करता हुआ आनन्दित होता है।

भावार्थ—दुष्कृत् को अशुभ स्वप्न पीड़ा पहुँचाता है और तपस्वी सुकृत् को प्रभु-दर्शन का स्वप्न प्रकाशमय जीवनवाला करता है।

ऋषिः—**यमः**॥ देवता—**दुःष्वप्ननाशनम्**॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्**॥

द्वेष आदि के स्वप्नों से दूर

विद्मा ते सर्वाः परिजाः पुरस्ताद्विद्म स्वप्न यो अधिपा इहा ते।
यशस्विनो नो यशसेह पाह्याराद् द्विषेभिरप याहि दूरम्॥ ६॥

१. हे **स्वप्न**=स्वप्न! हम **ते**=तेरे **पुरस्तात् सर्वाः परिजाः**=पुरस्ताद्गामी सब परिजनों को (काम, क्रोध, लोभ को) **विद्म**=जानते हैं। तू इन काम-क्रोध आदि के कारण ही उत्पन्न होता है। हे स्वप्न! **इह**=यहाँ **यः**=जो **ते**=तेरा **अधिपाः**=स्वामी है—जिसके कारण तू अभिभूत रहता है—दबा रहता है, किसी प्रकार का अशुभ नहीं कर पाता, उसे भी **विद्म**=जानते हैं। प्रभु ही वे अधिपा हैं। प्रभु-स्मरण करने पर अनिष्टकर स्वप्न आते ही नहीं। २. **यशस्विनः**=यशस्वी कर्मों के कारण यश को प्राप्त करनेवाले **नः**=हम लोगों को **इह**=इस जीवन में **यशसा**=यश से **आरात्**=प्रभु के समीप में **पाहि**=सुरक्षित कर। हम कभी अशुभ स्वप्न न देखें। हे स्वप्न! **द्विषेभिः**=सब द्वेष की वृत्तियों के साथ तू हमसे **दूरम् अपयाहि**=सुदूर देश में चला जा। हमें द्वेष आदि के स्वप्न न आते रहें।

भावार्थ—काम-क्रोध आदि से दूर होकर हम अशुभ स्वप्नों से बचें। यशस्वी कर्मों को करते हुए यशवाले स्वप्नों को ही देखें। हम कभी स्वप्न में द्वेष आदि दुर्भावों से पीड़ित न हों।

५७. [सप्तपञ्चाशं सूक्तम्]

ऋषिः—**यमः**॥ देवता—**दुःष्वप्ननाशनम्**॥ छन्दः—**अनुष्टुप्**॥

दुःष्वप्न्य का अप्रिय पुरुषों में संनयन

यथा कलां यथा शफं यथर्णं संनयन्ति।
एवा दुःष्वप्न्यं सर्वमप्रिये सं नयामसि॥ १॥

१. **यथा कलाम्**=जैसे एक-एक कला—सोलहवाँ भाग करके, अथवा **यथा शफम्**=(गवादि पशुओं के चार पाँव, प्रत्येक पाँव के दो भाग) जैसे एक-एक शफ—आठवाँ भाग—करके **ऋणम्**=सारे ऋण को यथा **संनयन्ति**=जैसे उत्तमर्ण के लिए लौटा देते हैं, **एव**=इसी प्रकार **सर्वं दुःष्वप्न्यम्**=सब अशुभ स्वप्नों के कारणभूत वसुओं को (शरीर में मलबन्ध व मन में व्यर्थ की बातों के समावेश को) **अप्रिये**=प्रीतिरहित शत्रुभूत लोगों में **संनयामसि**=प्राप्त कराते हैं।

भावार्थ—हम सतत प्रयत्न करके—निरन्तर थोड़ा-थोड़ा करते हुए सब अशुभ स्वप्नों के कारणभूत तत्त्वों को अपने से दूर करें। ये तत्त्व अप्रिय लोगों को प्राप्त हों।

ऋषिः—**यमः**॥ देवता—**दुःष्वप्ननाशनम्**॥ छन्दः—**पङ्क्तिः**॥

संगृहीत दुःष्वप्न्य को द्विषत् में प्रसूत करना

सं राजानो अगुः समृणान्यगुः सं कुष्ठा अगु सं कला अगुः।
समस्मासु यदुःष्वप्न्यं निर्द्विषते दुःष्वप्न्यं सुवाम॥ २॥

१. जैसे **राजानः**=राजा लोग **सम् अगुः**=युद्ध-काल में एक-एक करके बहुत-से एकत्र हो जाते हैं। **ऋणानि सम् अगुः**=ऋण भी जुड़ते-जुड़ते बहुत-से एकत्र हो जाते हैं। **कुष्ठाः**=कुत्सित त्वचा के रोग भी **समगुः**=अचिकित्सित होने पर बढ़ते जाते हैं। **कलाः सम् अगुः**=कलाएँ जुड़ती-जुड़ती चन्द्रमा में पूर्णतया संगत हो जाती हैं। इसीप्रकार **अस्मासु**=हममें **यत्**=जो **दुःष्वप्न्यम्**=अशुभ स्वप्नों का कारणभूत तत्त्व **सम्** (अगात्)=संगत हो गया है, उस सब

दुःष्वप्न्यम्=अशुभ स्वप्नों के कारणभूत तत्त्व को **द्विषते**=द्वेष करनेवाले पुरुष के निमित्त **निःसुवाम**=अपने से बाहर प्रेरित करते हैं।

भावार्थ—थोड़ा-थोड़ा करके वे तत्त्व हममें संगृहीत हो जाते हैं, जोकि अशुभ स्वप्नों के कारण बना करते हैं। हम उन्हें अपने से पृथक् करके द्वेष करनेवाले पुरुषों के लिए प्रेरित करते हैं।

ऋषिः—**यमः**॥ देवता—**दुःष्वप्ननाशनम्**॥ छन्दः—**षट्पदात्रिष्टुप्**॥

'भद्र व अभद्र' स्वप्न

देवानां पत्नीनां गर्भं यमस्य कर यो भद्रः स्वप्न।
स मम यः पापस्तद् द्विषते प्र हिण्मः।
मा तृष्टानामसि कृष्णशकुनेर्मुखम्॥ ३॥

१. हे **देवानां पत्नीनां गर्भ**=देवशक्तियों को अपने में धारण करनेवाले! अथवा **यमस्य कर**=यम के हस्तभूत **स्वप्न**=स्वप्न! **यः**=जो तो **भद्र!**=कल्याणकर स्वप्न है **सः मम**=वह मेरा हो। **यः पापः**=जो पाप (अशुभ) स्वप्न है **तत्**=उसको **द्विषते**=हमसे अप्रीति करनेवाले के लिए **प्रहिण्मः**=भेजते हैं। २. स्वप्न दो प्रकार के होते हैं—एक शुभ और दूसरे अशु। शुभ स्वप्न मानो अपने अन्दर दिव्यशक्तियों को धारण किये हुए हैं—ये हमें प्रभु का दर्शन करानेवाले होते हैं—ज्ञान का प्रकाश देनेवाले होते हैं। अशुभ स्वप्न हमें मृत्यु की ओर ले-जाते हैं। हम स्वप्नों में पाप कर बैठते हैं। हे स्वप्न! तू हमारे लिए **तृष्टानाम्**=वैषयिक तृष्णाओं का तथा **कृष्णशकुनेः**=काले शक्तिशाली घोर पाप का **मुखम्**=प्रवर्तक **मा असि**=मत हो। हम स्वप्न में लोभ-प्रवृत्त होकर घोर अशुभ कार्यों को करनेवाले न बन जाएँ। स्वप्न में इसप्रकार के पाप हमसे न हो जाएँ।

भावार्थ—स्वप्न शुभ व अशुभ दो प्रकार के हैं। हमें शुभ स्वप्न ही प्राप्त हों अशुभ नहीं। हम स्वप्न में भी प्रभु का दर्शन करें। स्वप्न में लोभवश अशुभ कर्म न कर रहे हों।

ऋषिः—**यमः**॥ देवता—**दुःष्वप्ननाशनम्**॥ छन्दः—**षट्पदोष्णिग्बृहतीगर्भाविराट्शक्वरी**॥

'देवपीयु-पियारु' अशुभस्वप्न

तं त्वा स्वप्न तथा सं विद्म स त्वं स्वप्नाश्वइव कायमश्वइव नीनाहम्।
अनास्माकं देवपीयुं पियारुं वप यदस्मासु दुःष्वप्न्यं यद्गोषु यच्च नो गृहे॥ ४॥

१. हे **स्वप्नः**=स्वप्न! **तं त्वा**=उस तुझको हम **तथा संविद्म**=उस प्रकार सम्यक् समझ लें, जिससे कि **सः त्वम्**=वह तू, हे स्वप्न! **इव**=जैसे **अश्वः**=एक घोड़ा **कायम्**=अपने रजोधूसर शरीर को कम्पित करता है, अथवा **इव**=जैसे **अश्वः**=घोड़ा **नीनाहम्**=पल्याणकवच (काठी), आदि को दूर फेंक देता है। इसी प्रकार हे स्वप्न! तू भी **अनास्माकम्**=हमारा हित न करनेवाले, **देवपीयुम्**=दिव्यगुणों का हिंसन करनेवाले **पियारुम्**=शारीरिक शक्तियों के विघातक **दुःष्वप्न्यम्**=अशुभ स्वप्नों के कारणभूत मल को **वप**=हमसे छिन्न करके दूर कर। २. **यत्**=जो भी **अस्मासु**=हममें **दुःष्वप्न्यम्**=अशुभ स्वप्नों का कारणभूत मल है, **यत् गोषु**=जो भी हमारी इन्द्रियों में दोष है, **यत् च**=और जो **नः**=हमारे **गृहे**=घर में—शरीररूप गृह में—दुःष्वप्न्य है, उस सबको दूर कर।

भावार्थ—हम प्रयत्न करें कि हमें अशुभ स्वप्न न आएँ। ये हमारे लिए हितकर न होकर हमारी उत्तम प्रवृत्तियों व शरीर की शक्तियों के विध्वंस का कारण बनते हैं।

ऋषिः—**यमः**॥ देवता—**दुःष्वप्ननाशनम्**॥ छन्दः—**पञ्चपदापरशाक्वराऽतिजगती**॥

'अनास्माकं' दुःष्वप्न्य

अनास्माकस्तद्देवपीयुः पियारुर्निष्कमिव प्रति मुञ्चयताम्।
नवारत्नीनपमया अस्माकं ततः परि।
दुःष्वप्न्यं सर्वं द्विषते निर्दयामसि॥ ५॥

१. दुष्ट स्वप्नों का कारणभूत मल **अनास्माकः**=हमारा अहितकर है। **तत्**=यह **देवपीयुः**=दिव्यगुणों का हिंसक है। **पियारुः**=शारीरिक शक्तियों का विनाशक है। यह दुःष्वप्न्य हमें इसप्रकार **प्रतिमुञ्चयताम्**=छोड़ दे (quit, leave, abandon) **इव**=जैसेकि **निष्कम्**=एक स्नानार्थी को गले का हार छोड़ देता है। वह जैसे हार को उतार कर अलग रख देता है, इसीप्रकार यह दुःष्वप्न्य हमसे पृथक् हो जाए। हे स्वप्न! इस दुःष्वप्न्य को **अस्माकम्**=हमारे **ततः परि**=उन इन्द्रियों व शरीरगृहों से पृथक् करके अब **नव अरत्नीन्**=नौ हाथ **अपमयाः**=दूर ले-जा (मय गतौ) न दुःष्वप्न्य होगा, न अशुभ स्वप्न आएँगे। २. **सर्वं दुःष्वप्न्यम्**=सब दुःष्वप्नों के कारणभूत मलों को **द्विषते**=शत्रु के लिए **निर्दयामसि**=अपने से बाहर भेजते हैं। यह दुःष्वप्न्य हमें छोड़कर द्विषत् पुरुषों को प्राप्त हो।

भावार्थ—दुःष्वप्न्य हमसे दूर हो, यह द्विषन् पुरुषों को प्राप्त हो।

सब दुःष्वप्न्यों को दूर करके और परिणामतः अपने से 'देवपीयुत्व व पियारु' को भी दूर करता हुआ अपने देवत्त्व का वर्धन करता हुआ यह 'ब्रह्मा' बनता है। यही अब इस काण्ड में अन्त तक सूक्तों का ऋषि है—

५८. [अष्टपञ्चाशं सूक्तम्]

ऋषिः—**ब्रह्मा**॥ देवता—**मन्त्रोक्ताः**॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्**॥

'घृतस्य जूतिः समना सदेवा'

घृतस्य जूतिः समनाः सदेवाः संवत्सरं हविषा वर्धयन्ती।
श्रोत्रं चक्षुः प्राणोऽच्छिन्नो नो अस्त्वच्छिन्ना वयमायुषो वर्चसः॥ १॥

१. **घृतस्य**=(घृ दीप्तौ) उस दीप्त सर्वोत्कृष्ट तेज परमात्मा का **जूतिः**=ज्ञान (**मतिर्मनीषा जूतिः स्मृतिः संकल्पः क्रतुरसुः कामो वश इति सर्वाण्येवैतानि प्रज्ञानस्य नामधेयानि भवन्ति** ऐ० आ० २.६.१) **समना**=(सम् अना) हमें सम्यक् प्राणित करनेवाला है। **सदेवाः**=यह ज्ञान दिव्यगुणों से युक्त है—हमें दिव्यगुणसम्पन्न बनानेवाला है। यह ज्ञान **संवत्सरम्**=हमारे जीवनकाल को **हविषा**=दानपूर्वक अदन से व यज्ञों से **वर्धयन्ती**=बढ़ाता है। प्रभु का ज्ञान हमें यज्ञमय जीवनवाला बनाता है। २. इस ज्ञान के द्वारा **नः**=हमारा **श्रोत्रं चक्षुः प्राणः**=श्रोत्र, चक्षु व प्राण **अच्छिन्नः अस्तु**=अच्छिन्न हो। **वयम्**=हम **आयुषः**=आयु से **वर्चसः**=वर्चस् से **अच्छिन्नः**=अच्छिन्न हों, अर्थात् दीर्घजीवनवाले व वर्चस्वी बनें।

भावार्थ—प्रभु का ज्ञान हमें उत्तम प्राणशक्तिवाला व दिव्यगुणोंवाला बनाता है। यह हमें यज्ञशील बनाता हुआ दीर्घजीवी करता है। इससे हमें इन्द्रियों की शक्ति, प्राणशक्ति, दीर्घजीवन व वर्चस् प्राप्त हो।

ऋषिः—**ब्रह्मा**॥ देवता—**मन्त्रोक्ताः**॥ छन्दः—**पुरोऽनुष्टुप्**॥

प्राण+वर्चस्

उपास्मान्प्राणो ह्वयतामुप वयं प्राणं हवामहे।
वर्चो जग्राह पृथिव्यन्तरिक्षं वर्चः सोमो बृहस्पतिर्विधर्त्ता॥ २॥

१. **अस्मान्**=मानसयज्ञ (प्रभु-ध्यान) के प्रवर्तक हम लोगों को **प्राणः उपह्वयताम्**=शरीरधारक पञ्चवृत्तिक वायु चिरकाल के जीवन के लिए अनुज्ञा दे। **वयम्**=हम **प्राणम्**=प्राण को **उपहवामहे**=चिरकाल तक हमारे शरीरों में रहने के लिए प्रार्थित करते हैं। २. **पृथिवी**=यह हमारा शरीररूप पृथिवीलोक तथा **अन्तरिक्षम्**=हृदयान्तरिक्ष **वर्चः जग्राह**=तेजस्विता को स्वीकार करता है। **सोमः**=सौम्यता, **बृहस्पतिः**=ज्ञान, **विधर्त्ता**=विशेषरूप से धारण करनेवाला अग्नितत्त्व—ये सब **वर्चः**=तेज को धारण करते हैं।

भावार्थ—हम प्राणशक्ति-सम्पन्न बनें। हमारा शरीर व हृदय वर्चस्वाला हो। 'सौम्यता, ज्ञान व अग्नितत्त्व' हमें वर्चस्वी बनाएँ।

ऋषिः—**ब्रह्मा**॥ देवता—**मन्त्रोक्ताः**॥ छन्दः—**षट्पदात्रिष्टुप्**॥

यशस्वी जीवन

वर्चसो द्यावापृथिवी संग्रहणी बभूवथुर्वर्चो गृहीत्वा पृथिवीमनु सं चरेम।
यशसा गावो गोपतिमुप तिष्ठन्त्यायतीर्यशो गृहीत्वा पृथिवीमनु सं चरेम॥ ३॥

१. **द्यावापृथिवी**=मेरा मस्तिष्करूप द्युलोक तथा शरीररूप पृथिवीलोक दोनों **वर्चसः**=वर्चस् के **संग्रहणी बभूवथुः**=ग्रहण करनेवाले हों। मस्तिष्क व शरीर दोनों ही वर्चस्वी हों। हम **वर्चः गृहीत्वा**=वर्चस् को ग्रहण करके **पृथिवीम् अनुसंचरेम**=इस पृथिवी पर विचरण करें। हमारी प्रत्येक क्रिया-शक्ति को लिये हुए हो। २. ये **आयतीः**=चारों ओर गति करती हुई—इधर-उधर विषयों में भटकती हुई **गावः**=इन्द्रियाँ **यशसं गोपतिम्**=यशस्वी, इन्द्रियों के स्वामी के **उपतिष्ठन्ति**=समीप उपस्थित होती हैं। वस्तुतः जितेन्द्रियता के कारण ही एक व्यक्ति यशस्वी बनता है। हम **यशः**=यश को **गृहीत्वा**=ग्रहण करके ही **पृथिवीम् अनुसंचरेम**=इस पृथिवी पर विचरण करें।

भावार्थ—मेरा मस्तिष्क व शरीर दोनों वर्चस्वी हों। हम वर्चस्वी बनकर ही इस पृथिवी पर विचरें। जितेन्द्रिय बनकर हम यशस्वी हों।

ऋषिः—**ब्रह्मा**॥ देवता—**मन्त्रोक्ताः**॥ छन्दः—**षट्पदोष्णिग्बृहतीगर्भाविराट्शक्वरी**॥

व्रजं कृणुध्वम्, वर्म सीव्यध्वम्

व्रजं कृणुध्वं स हि वो नृपाणो वर्मा सीव्यध्वं बहुला पृथूनि।
पुरः कृणुध्वमायसीरधृष्टा मा वः सुस्रोच्चमसो दृंहता तम्॥ ४॥

१. हे इन्द्रियो! **व्रजं कृणुध्वम्**=मानसयज्ञ (प्रभु-ध्यान) के अधिष्ठानभूत इस शरीर में संघात को करो—तुम यहाँ ही संघीभूत होकर स्थित होओ। **सः हि**=वह देह ही **वः नृपाणः**=अपने-अपने विषय में प्रवर्तमान (नेतृभूत) तुम्हारा रक्षक है। **बहुला**=बहुत तथा **पृथूनि**=विस्तृत **वर्मा सीव्यध्वम्**=कवचों को सीओ। ज्ञानरूप कवचों को सीकर तुम अपना रक्षण करो। यह ज्ञानकवच ही वासनाओं के आक्रमण से सुरक्षित करता है। २. **पुरः**=इन शरीर-नगरियों को **आयसीः**=लोहे की बनी हुइयों को **अधृष्टाः कृणुध्वम्**=रोगरूप शत्रुओं से अधर्षणीय बना डालो। **वः**=तुम्हारा

यह **चमसः**=शरीररूप पात्र **मा सुस्रोत्**=स्रवित न हो। इसमें वीर्यरूप जल स्थिर होकर रहे। **दृंहता तम्**=उस शरीररूप पात्र को दृढ़ बनाओ।

भावार्थ—हम मानस यज्ञ में प्रवृत्त हों, जिससे इन्द्रियाँ इधर-उधर न भटककर अन्दर ही स्थित हों। हम ज्ञानकवच को धारण करके वासनारूप शत्रुओं का शिकार न हो पाएँ। हमारे शरीर मानो लोहे के बने हों। शक्ति शरीर में ही सुरक्षित रहे।

ऋषिः—**ब्रह्मा**॥ देवता—**मन्त्रोक्ताः**॥ छन्दः—**भुरिक्त्रिष्टुप्**॥

वाचा श्रोत्रेण मनसा

यज्ञस्य चक्षुः प्रभृतिर्मुखं च वाचा श्रोत्रेण मनसा जुहोमि।
इमं यज्ञं विततं विश्वकर्मणा देवा यन्तु सुमनस्यमानाः॥ ५॥

१. वे प्रभु **यज्ञस्य चक्षुः**=यज्ञ के चक्षु हैं—प्रदर्शक हैं। **प्रभृतिः**=वे ही इसके धारण करनेवाले हैं **च**=और **मुखम्**=प्रतिपादक हैं। वेदों के द्वारा प्रभु ने इन यज्ञों का उपदेश किया है। **कर्म ब्रह्मोद्भवं विद्धि।** मैं इस यज्ञ को **वाचा**=वाणी से **श्रोत्रेण**=कानों से व **मनसाः**=मन से **जुहोमि**=आहुत करता हूँ। २. **विश्वकर्मणा**=सब कर्मों को करनेवाले प्रभु से **विततम्**=विस्तृत किये गये **इमं यज्ञम्**=इस यज्ञ को **देवाः**=देववृत्ति के पुरुष **यन्तु**=प्राप्त हों और **सुमनस्यमानाः**=सौमनस्य को प्राप्त करनेवाले हों।

भावार्थ—प्रभु ही यज्ञों के प्रदर्शक, धारक व प्रतिपादक हैं। इन यज्ञों को हम वाणी से मन्त्र बोलते हुए, कानों से प्रभु-महिमा को सुनते हुए, हृदय में प्रभु-स्मरण करते हुए करते हैं। वस्तुतः प्रभु द्वारा ही इन यज्ञों का विस्तार हुआ है। हम देव व सौमनस्यवाले बनकर इन यज्ञों में प्रवृत्त हों।

ऋषिः—**ब्रह्मा**॥ देवता—**मन्त्रोक्ताः**॥ छन्दः—**स्वराट्त्रिष्टुप्**॥

यज्ञशीलता व आनन्द

ये देवानामृत्विजो ये च यज्ञिया येभ्यो हव्यं क्रियते भागधेयम्।
इमं यज्ञं सह पत्नीभिरेत्य यावन्तो देवास्तविषा मादयन्ताम्॥ ६॥

१. **ये**=जो **देवानाम्**=देववृत्ति के पुरुषों में **ऋत्विजः**=समय-समय पर यज्ञ करनेवाले हैं, **ये च**=और जो **यज्ञियाः**=यज्ञशीलों में उत्तम हैं, **येभ्यः**=जिनके लिए **हव्यम्**=हव्य ही **भागधेयम् क्रियते**=भाग नियत किया जाता है, अर्थात् जो यज्ञों को ही अपने जीवन में प्रमुख स्थान देते हैं, वे **मादयन्ताम्**=आनन्द का अनुभव करें। २. अतः **यावन्तः देवाः**=जितने भी तुम देव हो वे सब **इमं यज्ञम्**=इस यज्ञ को **पत्नीभिः सह एत्य**=अपने जीवन की संगिनियों के साथ प्राप्त होकर **तविषाः**=शक्तिशाली होते हुए (मादयन्ताम्) आनन्दित होओ।

भावार्थ—हम देववृत्ति के बनकर यज्ञशील हों, यज्ञशीलों में उत्तम बनें, यज्ञ ही हमारा भाग हो—सेव्य वस्तु हो। गृहों में हम सपत्नीक यज्ञों को करते हुए शक्ति को बढ़ाएँ और आनन्दित हों।

५९. [एकोनषष्टितमं सूक्तम्]

ऋषिः—**ब्रह्मा**॥ देवता—**अग्निः**॥ छन्दः—**गायत्री**॥

व्रतपाः-ईड्यः

त्वमग्ने व्रतपा असि देव आ मर्त्येष्वा। त्वं यज्ञेष्वीड्यः॥ १॥

१. हे **अग्ने**=अग्रणी प्रभो! **त्वम्**=आप ही **व्रतपाः असि**=व्रतों का रक्षण करनेवाले हैं। आपके अनुग्रह से ही हम अपने यज्ञ आदि उत्तम कर्मों व व्रतों का रक्षण कर पाएँगे। आप ही **मर्त्येषु**=इन मरणधर्मा प्राणियों में **आ**=समन्तात् **देवः**=जाठराग्निरूपेण व ज्ञानाग्निरूपेण दीप्त होनेवाले हैं। जाठराग्नि रूपेण दीप्त होकर आप ही 'बल' प्राप्त कराते हैं और ज्ञानाग्निरूपेण दीप्त होने पर आप ही हमारे जीवनों को ज्ञानोज्ज्वल करते हैं। २. आप ही **यज्ञेषु**=सब यज्ञों में, उत्तम कर्मों में, **ईड्यः**=उपासनीय हैं। आपकी कृपा से ही ये सब यज्ञपूर्ण होते हैं और इन यज्ञों के द्वारा ही आपकी वास्तविक अर्चना होती है।

भावार्थ—प्रभु 'व्रतपाः' हैं, 'देव' हैं, 'ईड्य' हैं। प्रभु-कृपा से ही हमारे व्रत पूर्ण होते हैं, प्रभु ही हमारे जीवनों को शक्ति व ज्ञान से द्योतित करते हैं, प्रभु ही यज्ञों के द्वारा उपासनीय हैं।

ऋषिः—**ब्रह्मा**॥ देवता—**अग्निः**॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्**॥

प्रभु के अनुग्रह से व्रपालनसामर्थ्य की प्राप्ति

यद्वो॑ व॒यं प्र॑मि॒नाम॑ व्र॒तानि॑ वि॒दुषां॑ देवा॒ अवि॑दुष्टरासः।
अ॒ग्निष्टद्विश्वादा पृ॑णातु वि॒द्वान्त्सोम॑स्य॒ यो ब्रा॑ह्म॒णाँ आ॑वि॒वेश॑॥ २॥

१. हे **देवाः**=विद्वानो! **विदुषां वः**=ज्ञानवाले आपके **व्रतानि**=कर्मों को **अविदुष्टरासः**=कर्ममार्ग को अतिशयेन न जानते हुए **वयम्**=हम **यत् प्रमिनाम**=जो हिंसा कर बैठते हैं। हे विद्वानो! 'माता, पिता, आचार्य व अतिथिरूप देवो!' हमें आपके प्रति कुछ कर्त्तव्यकर्म करने होते हैं। अज्ञानवश उन कर्मों में हम ग़लती कर बैठते हैं। २. हमारी प्रार्थना यह है कि **अग्निः**=वह अग्रणी प्रभु **तत् आपृणातु**=उस लुप्तकर्म को पूर्ण करें। प्रभु-कृपा से हमें उस कर्म की अपूर्णता को दूर करने का सामर्थ्य प्राप्त हो। वे प्रभु हमारे इन कर्मों को पूर्ण करें जोकि **विश्वात्**=सम्पूर्ण संसार में गतिवाले हैं (विश्व+अत्)। **सोमस्य विद्वान्**=हमारी सौम्यता को जानते हैं—हमने जानबूझकर अभिमान से व्रतों को तोड़ा हो, ऐसी बात नहीं है। वे प्रभु हमारे इन व्रतों को पूर्ण करें **यः**=जोकि **ब्राह्मणान् आविवेश**=ज्ञानी पुरुषों के हृदयों में आविष्ट होते हैं।

भावार्थ—हम अज्ञानवश 'माता, पिता, आचार्य व अतिथि' आदि के विषय में कर्त्तव्यकर्मों को पूर्ण न कर सकें तो वे प्रभु हमें सामर्थ्य दें कि हम इन्हें पूर्ण कर सकें। वस्तुतः प्रभु-कृपा से ही हम इन्हें पूर्ण कर पाएँगे।

ऋषिः—**ब्रह्मा**॥ देवता—**अग्निः**॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्**॥

देवों के मार्ग पर

आ दे॒वाना॒मपि॒ पन्था॑मगन्म॒ यच्छ॒क्नवा॑म॒ तद॑नुप्रवो॒ढुम्।
अ॒ग्निर्वि॒द्वान्त्स य॑जा॒त्स इद्धोता॒ सो ऽ॑ध्व॒रान्त्स ऋ॒तून्क॑ल्पयाति॥ ३॥

१. हम **देवानाम्**=देवों के—ज्ञानियों के **पन्थाम्**=मार्ग को **अपि**=ही **आ आगन्म**=सर्वथा प्राप्त हों। **यत् शक्नवाम**=जिस कर्म को करने में समर्थ हों, **तत्**=उस कर्म को **अनु प्रवोढुम्**=अनुक्रम से वहन करने के लिए विद्वानों के मार्ग का ही अनुसरण करें। शक्ति होने पर भी, ज्ञानियों का संपर्क न होने पर, हम ग़लत कर्म कर बैठेंगे। वे **अग्निः**=अग्रणी प्रभु **विद्वान्**=ज्ञानी हैं। **सः यजात्**=उनका हमारे साथ संगतिकरण हो। प्रभु के मेल से ही तो हमें सामर्थ्य प्राप्त होगा। **सः इत् होता**=वे प्रभु ही सब-कुछ देनेवाले हैं। **सः**=वे प्रभु ही **अध्वरान्**=यज्ञों को **कल्पयाति**=करते हैं—हमारे माध्यम से प्रभु ही यज्ञों को करते हैं। **सः ऋतून्**=वे प्रभु ही यज्ञों के लिए अवसरों

को देते हैं।

भावार्थ—देवों के मार्ग पर चलते हुए हम शक्ति को यज्ञों की पूर्ति में ही लगाएँ। प्रभु के सम्पर्क में स्थित होकर शक्ति प्राप्त करें। प्रभु को ही यज्ञों का करनेवाला जानें। प्रभु ही यज्ञों के लिए अवसरों को प्राप्त कराते हैं।

६०. [षष्टितमं सूक्तम्]

ऋषिः—**ब्रह्मा**॥ देवता—**वागादिमन्त्रोक्ताः**॥ छन्दः—**पथ्याबृहती**॥

सशक्त अङ्ग

वाङ् म आसन्नसोः प्राणश्चक्षुरक्ष्णोः श्रोत्रं कर्णयोः।
अपलिताः केशा अशोणा दन्ता बहु बाह्वोर्बलम्॥ १॥

१. प्रभु-कृपा से **मे आसन्**=मेरे मुख में **वाक्**=बोलने की शक्ति हो, **नसोः प्राणः**=नासिका-छिद्रों में प्राणशक्ति हो, **अक्ष्णोः**=आँखों में **चक्षुः**=दर्शनशक्ति हो और **कर्णयोः श्रोत्रम्**=कानों में सुनने की शक्ति हो। ३. मेरे **केशाः**=केश **अ-पलिताः**=क्षोभ आदि व जीर्णता से पलित (भूरे-से) न हो जाएँ। **दन्ताः अशेणाः** (शोण गतौ)=दाँत हिल न जाएँ अथवा मलिन होकर रक्त-से वर्ण के न हो जाएँ। मेरी **बाह्वोः**=भुजाओं में **बहु बलम्**=बहुत बल हो।

भावार्थ—मैं सर्वांग व अजीर्ण-शक्ति होता हुआ यज्ञादि उत्तम कर्म करता रहूँ।

ऋषिः—**ब्रह्मा**॥ देवता—**वागादिमन्त्रोक्ताः**॥ छन्दः—**ककुम्मतीपुरउष्णिक्**॥

सोत्साह मन

ऊर्वोरोजो जङ्घयोर्जवः पादयोः प्रतिष्ठा। अरिष्टानि मे सर्वात्मानिभृष्टः॥ २॥

१. **ऊर्वोः**=मेरे ऊरू प्रदेशों में (Thigh)—घुटने से ऊपर जाँघों में **ओजः**=ओज हो। **जङ्घयोः जवः**=घुटने से नीचे टाँगों में (Shanks) **जवः**=वेग हो। **पादयोः प्रतिष्ठाः**=पाँवों में जमाव (दृढ़ता) हो। २. **मे**=मेरे **सर्वा**=सब अंग **अरिष्टानि**=अहिंसित हों। **आत्मा**=मन भी **अनिभृष्टः** (भृश अधःपतने)=नीचे गिरा हुआ—उत्साहशून्य—न हो। मेरा मन सदा सोत्साह बना रहे। **भृश्यति** (to fall down) मैं कभी निरुत्साहित न हो जाऊँ।

भावार्थ—मेरे ऊरूप्रदेश ओजवाले हों, जाँघें वेगवाली हों, पाँव जमकर पड़ें। सब अंग बड़े ठीक हों और मेरा मन सदा उत्साह से युक्त हो।

६१. [एकषष्टितमं सूक्तम्]

ऋषिः—**ब्रह्मा**॥ देवता—**ब्रह्मणस्पतिः**॥ छन्दः—**विराट्पथ्याबृहती**॥

पवमानः स्वर्गे

तनूस्तन्वा मे सहे दतः सर्वमायुरशीय। स्योनं मे सीद पुरुः पृणस्व पवमानः स्वर्गे॥ १॥

१. हे प्रभो! **मे तनूः**=मेरा शरीर **तन्वा**=शक्तियों के विस्तार से युक्त हो। **दतः** (दन्ताः)=दाँत **सहे**=शत्रुओं का पराभव करनेवाले हों—इन दन्तपंक्तियों में कीड़े न लग जाएँ—दाँत दृढ़ बने रहें और इसप्रकार मैं **सर्वं आयुः**=पूर्ण जीवन को **अशीय**=प्राप्त करूँ। २. हे प्रभो! **स्योनम्**=मेरे सुखसम्पन्न मानस में—प्रसादयुक्त मन में **सीद**=आप आसीन होइए। **पुरुः**=पालन व पूरण करनेवाले **पृणस्व**=हमें पूर्ण कीजिए—हमारी न्यूनताओं को दूर कीजिए। **स्वर्गे**=सुखमयलोक में **पवमानः**=आप हमें पवित्र करनेवाले हों। सुखों में आसक्त होकर हम मार्गभ्रष्ट न हो जाएँ।

भावार्थ—हमारा शरीर शक्तियों के विस्तारवाला हो, दाँत दृढ़ हों ताकि हम पूर्ण जीवन

प्राप्त करें। मेरे प्रसन्न मन में प्रभु का आसन हो, वे मेरी न्यूनताओं को दूर करें और स्वर्ग में स्थित मुझे पवित्र बनाए रखें।

६२. [द्विषष्टितं सूक्तम्]

ऋषिः—**ब्रह्मा**॥ देवता—**ब्रह्मणस्पतिः**॥ छन्दः—**अनुष्टुप्**॥

सर्वप्रियत्व

प्रियं मा कृणु देवेषु प्रियं राजसु मा कृणु। प्रियं सर्वस्य पश्यत उत शूद्र उतार्ये॥ १॥

१. हे प्रभो! आप **मा**=मुझे **देवेषु**=ज्ञानी ब्राह्मणों में **प्रियं कृणु**=प्रिय कीजिए। **मा**=मुझे **राजसु**=राज्य की व्यवस्था करनेवाले क्षत्रियवर्ग में **प्रियं कृणु**=प्रिय कीजिए। ज्ञान की रुचिवाला बनकर मैं ब्राह्मणों का प्रिय बनूँ और राष्ट्र के नियमों का पालन करता हुआ इन राजाओं का प्रिय बनूँ। २. मुझे आप **पश्यतः सर्वस्य**=देखनेवाले सबका **प्रियम्** (कृणु)=प्रिय बनाइए। जो मुझे देखे, वह एकदम मेरे प्रति प्रीतिवाला ही बन जाए। मेरे स्वभाव की सरलता व प्रसन्नता मुझे सबका प्रिय बनादे। **उत शूद्रे**=शूद्रों में भी मुझे प्रिय बनाइए, **उत अर्ये**=और वैश्यों में भी मुझे प्रिय बनाइए। किसी मज़दूर को कभी कम मज़दूरी देनेवाला न होऊँ।

भावार्थ—मैं ज्ञानरुचिवाला बनकर ब्राह्मणों का प्रिय बनूँ। राष्ट्र के नियमों का पालन करता हुआ क्षत्रियों का प्रिय बनूँ। शुद्ध व्यवहार द्वारा शूद्रों व वैश्यों का भी प्रिय होऊँ। सरलता व प्रसादमयता से सब देखनेवालों का प्रिय होऊँ।

६३. [त्रिषष्टितमं सूक्तम्]

ऋषिः—**ब्रह्मा**॥ देवता—**ब्रह्मणस्पतिः**॥ छन्दः—**विराडुपरिष्टाद्बृहती**॥

ब्रह्मणस्पति का कर्त्तव्य='उद्बोधन'

उत्तिष्ठ ब्रह्मणस्पते देवान्यज्ञेन बोधय।
आयुः प्राणं प्रजां पशुं कीर्तिं यजमानं च वर्धय॥ १॥

१. हे **ब्रह्मणस्पते**=ज्ञान के रक्षक ज्ञानी ब्राह्मण! **उत्तिष्ठ**=तू उठ खड़ा हो। आलस्य में न पड़ा रह अथवा केवल अपना वेदपाठ ही न करता रह। **यज्ञेन**=(संगतिकरण, दान) प्रजा के लोगों के सम्पर्क से तथा उन्हें ज्ञान देने के द्वारा—इस यज्ञ से **देवान् बोधय**=प्रजाओं में दिव्यवृत्तियों को जागरित कर। उन्हें देव बनाने का यत्न कर। 'प्रजाजनों को उत्तम आचरण की ओर प्रवृत्तिवाला करना' यह ब्राह्मण का सर्वमहान् कर्तव्य है। २. तू ज्ञान देने के द्वारा **आयुः**=आयु को, **प्राणम्**=प्राणशक्ति को, **प्रजाम्**=प्रजाओं—सन्तानों को, **पशून्**=उत्तम गवादि पशुओं को **कीर्तिम्**=यश को **च**=और **यजमानम्**=यज्ञशील पुरुष को **वर्धय**=बढ़ा। उन बातों का तू ज्ञान दे जिनसे कि आयु आदि की वृद्धि हो।

भावार्थ—ज्ञानी ब्राह्मण राष्ट्र में ज्ञान का प्रचार करता हुआ 'आयु, प्राण' आदि की वृद्धि का कारण बने।

६४. [चतुःषष्टितमं सूक्तम्]

ऋषिः—**ब्रह्मा**॥ देवता—**अग्निः**॥ छन्दः—**अनुष्टुप्**॥

यज्ञ से 'श्रद्धा व मेधा' की प्राप्ति

अग्ने समिधमाहार्षं बृहते जातवेदसे। स मे श्रद्धां च मेधां च जातवेदाः प्र यच्छतु॥ १॥

१. हे **अग्ने**=यज्ञाग्ने! **बृहते**=वृद्धि की कारणभूत, **जातवेदसे**=सब धनों (वेदस्=wealth)

को उत्पन्न करनेवाले तेरे लिए मैं **समिधम् आहार्षम्**=समिन्धनसाधन काष्ठ को लाया हूँ, अर्थात् मैं इस यज्ञाग्नि की वृद्धि का कारणभूत व सब धनों का जन्मदाता समझकर यज्ञ में प्रवृत्त हुआ हूँ। २. **सः**=वह **जातवेदाः**=धनों का जन्मदाता अग्नि **मे**=मेरे लिए **श्रद्धाम्**=(श्रत्, सत्यं दधाति) सत्यज्ञान को धारण करने की शक्ति को **च**=और **मेधां च**=ज्ञान को समझनेवाली बुद्धि को भी **प्रयच्छतु**=दे। अग्निहोत्र से सब वातावरण की पवित्रता के कारण 'श्रद्धा और मेधा' की प्राप्ति होती ही है।

भावार्थ—हम वृद्धि के कारणभूत, सब धनों के दाता यज्ञाग्नि को अपने घरों में समिद्ध करें। यह मेरे लिए 'श्रद्धा और मेधा' को प्राप्त कराए।

ऋषिः—**ब्रह्मा**॥ देवता—**अग्निः**॥ छन्दः—**अनुष्टुप्**॥

यज्ञ से 'प्रजा व धन' की प्राप्ति

इध्मेन॑ त्वा जातवेदः स॒मिधा॑ वर्धयामसि।
तथा॒ त्वम॒स्मान्व॑र्धय प्र॒जया॑ च॒ धने॑न च॥ २॥

१. हे **जातवेदः**=सब धनों के जन्मदाता यज्ञाग्ने! हम **त्वा**=तुझे **इध्मेन**=ईंधन के साधनभूत **समिधा**=काष्ठ से **वर्धयामसि**=बढ़ाते हैं। २. जैसे हम तुझे समिधा से बढ़ाते हैं **तथा**=उसी प्रकार **त्वम्**=तू **अस्मान्**=हमें **प्रजया**=उत्तम सन्तानों से **च**=तथा **धनेन च**=धन से भी **वर्धय**=बढ़ा।

भावार्थ—अग्निहोत्र से उत्तम सन्तान व धन की प्राप्ति होती है।

ऋषिः—**ब्रह्मा**॥ देवता—**अग्निः**॥ छन्दः—**अनुष्टुप्**॥

यज्ञाग्नि की प्रियता का सम्पादन

यद॑ग्ने॒ यानि॑ कानि॑ चि॒दा ते॒ दारू॑णि द॒ध्मसि॑।
सर्वं॒ तद॑स्तु मे शि॒वं तज्जु॑षस्व यविष्ठ्य॥ ३॥

१. हे **अग्ने**=यज्ञाग्ने! **ते**=तेरे लिए **यानि कानि चित् दारूणि**=जिन किन्हीं भी (यज्ञिय व अयज्ञिय) काष्ठों को **यत्**=जब **आदध्मसि**=धारण करते हैं, **सर्वं तत्**=वह सब काष्ठ **मे शिवम्**=मेरे लिए कल्याणकर ही **अस्तु**=हो। जहाँ तक सम्भव होता है वहाँ तक हम यज्ञिय काष्ठों का ही प्रयोग करते हैं, परन्तु विवशता में दूसरे काष्ठों का प्रयोग भी हमारे लिए हानिकर न हो। अग्नि की छेदकशक्ति दोष को दूर करनेवाली हो। २. हे **यविष्ठ्य**=बुराइयों को दूर करनेवालों में सर्वाग्रणी अग्ने! तू **तत्**=उस काष्ठ को **जुषस्व**=प्रीतिपूर्वक ग्रहण कर। विवशता में अयज्ञिय काष्ठ के प्रयोग से हम यज्ञाग्नि के अप्रिय न हो जाएँ।

भावार्थ—हम यज्ञ में यज्ञिय काष्ठों का ही प्रयोग करें। विवशता में अन्य काष्ठों का प्रयोग हमारे लिए हानिकर न हो। (कुछ कम लाभ तो होगा ही)।

ऋषिः—**ब्रह्मा**॥ देवता—**अग्निः**॥ छन्दः—**अनुष्टुप्**॥

'आयुः अमृतत्वम्' आचार्याय

ए॒तास्ते॑ अग्ने स॒मिध॒स्त्वमि॒द्धः स॒मिद्ध॑व। आयु॒र॒स्मासु॑ धेह्यमृत॒त्वमा॑चा॒र्या ँय॥ ४॥

१. हे **अग्ने**=यज्ञाग्ने! **एताः**=ये **ते**=तेरे लिए **समिधः**=समिधाएँ हैं। **त्वम्**=तू **इद्धः**=प्रज्वलित किया हुआ **समित् भव**=सम्यक् दीप्तिवाला हो (बृहत् शोच)। २. हे समिद्ध अग्ने! **अस्मासु**=हममें **आयुः धेहि**=दीर्घजीवन को धारण कर तथा **अ-मृत त्वम्**=नीरोगता को धारण कर। यह दीर्घजीवन व नीरोगता **आचार्याय**=समन्तात् ज्ञान के चरण व सदाचार के ग्रहण के लिए हो। हम इस जीवन को ज्ञान-प्रधान बना पाएँ।

भावार्थ—हम अग्निकुण्ड में यज्ञाग्नि को समिद्ध करें। यह यज्ञाग्नि हमें नीरोगता व दीर्घजीवन दे। यह नीरोग दीर्घजीवन 'ज्ञान व सदाचार' के ग्रहण के लिए हो।

६५. [पञ्चषष्टितमं सूक्तम्]

ऋषिः—**ब्रह्मा**॥ देवता—**सूर्यो जातवेदाः**॥ छन्दः—**जगती**॥

अर्चिषा-हरसा

हरिः सुपर्णो दिवमारुहोऽर्चिषा ये त्वा दिप्सन्ति दिवमुत्पतन्तम्।
अव तां जहि हरसा जातवेदोऽबिभ्यदुग्रोऽर्चिषा दिवमा रोह सूर्य॥ १॥

१. **हरिः**=ब्रह्मचर्याश्रम में अपने अज्ञानान्धकार का स्वाध्याय द्वारा हरण करनेवाले और पुनः गृहस्थ में **सुपर्णः**=उत्तम पालनादि कर्मों में प्रवृत्त जीव! तू **अर्चिषा**=ज्ञानदीप्ति के द्वारा **दिवम् आरुहः**=द्युलोक का आरोहण कर। पृथिवीलोक से अन्तरिक्षलोक में, अन्तरिक्षलोक से द्युलोक में तथा द्युलोक से तूने प्रकाशमय ब्रह्मलोक में पहुँचना है। २. **दिवम् उत्पतन्तम्**=इस प्रकाशमय लोक की ओर ऊपर उठते हुए **त्वा**=तुझको **ये**=जो काम, क्रोध व लोभरूप शत्रु **दिप्सन्ति**=हिंसित करना चाहते हैं, **तान्**=उनको **हरसा**=तेज के द्वारा **अवजहि**=सुदूर विनष्ट करनेवाला हो। ३. हे **जातवेदः**=वानप्रस्थ में स्वाध्याय में नित्ययुक्त होने से उत्पन्न ज्ञानवाले **सूर्य**=संन्यास में सूर्य के समान ज्ञानदीप्त पुरुष! अब तू **अबिभ्यत्**=निर्भय होकर **उग्रः**=तेजस्वी व शत्रुभयंकर होता हुआ **दिवम् आरोह**=इस प्रकाशमय पद पर आरोहण कर।

भावार्थ—हम 'हरि, सुपर्ण, जातवेदाः व सूर्य' बनते हुए ज्ञानदीप्ति व शत्रुसंहारक तेज से काम आदि का विध्वंस करके प्रकाशमय लोक का आरोहण करें।

६६. [षट्षष्टितमं सूक्तम्]

ऋषिः—**ब्रह्मा**॥ देवता—**सूर्यो जातवेदा, वज्रः**॥ छन्दः—**अतिजगती**॥

दुष्टों का दण्डन व प्रजा-रक्षण

अयोजाला असुरा मायिनोऽयस्मयैः पाशैरङ्किनो ये चरन्ति।
तांस्ते रन्धयामि हरसा जातवेदः सहस्रभृष्टिः सपत्नान्प्रमृणन्पाहि वज्रः॥ १॥

१. **अयोजालाः**=लोहे के जालवाले **असुराः**=आसुरवृत्तिवाले **मायिनः**=छली-कपटी **अयस्मयैः पाशैः**=लोहे के बने पाशों के साथ **अङ्किनः**=कुटिल गति करते हुए **ये**=जो **चरन्ति**=राष्ट्र में औरों को पीड़ित करते हुए घूमते हैं, हे **जातवेदः**=सर्वज्ञ प्रभो! **तान्**=उनको **ते**=आपके **हरसा**=तेज से **रन्धयामि**=वशीभूत करता हूँ। राजा, प्रभु का स्मरण करता हुआ—प्रभु से तेज प्राप्त करके, प्रजापीड़क छली, आसुरवृत्ति के लोगों को दण्ड द्वारा वशीभूत करे। २. प्रजा राजा से यही निवेदन करती है कि **सहस्रभृष्टिः**=हज़ारों भालोंवाला **वज्रः**=(व्रजं अस्य अस्ति इति) वज्रहस्त तू **सपत्नान्**=शत्रुओं को **प्रमृणत्**=कुचलता हुआ **पाहि**=प्रजा का रक्षण कर।

भावार्थ—राजा, दुष्टों को दण्डित करता हुआ, प्रजा का रक्षण करे। सुरक्षित प्रजा न्याय्य-मार्ग पर आगे और आगे बढ़े।

६७. [सप्तषष्टितमं सूक्तम्]

ऋषिः—**ब्रह्मा**॥ देवता—**सूर्यः**॥ छन्दः—**प्राजापत्यागायत्री**॥

दीर्घ व प्रशस्त जीवन

पश्येम शरदः शतम्॥ १॥　　जीवेम शरदः शतम्॥ २॥

बुध्येम शरदः शतम्॥ ३॥ **रोहेम शरदः शतम्॥ ४॥**
पूषेम शरदः शतम्॥ ५॥ **भवेम शरदः शतम्॥ ६॥**
भूयेम शरदः शतम्॥ ७॥ **भूयसीः शरदः शतात्॥ ८॥**

१. शतवर्षपर्यन्त हमारी देखने की शक्ति ठीक बनी रहे।

२. शतवर्षपर्यन्त हमारी जीवनशक्ति ठीक बनी रहे।

३. शतवर्षपर्यन्त हमारी बोधशक्ति ठीक (mentally alert) बनी रहे।

४. हम शतवर्षपर्यन्त उत्तरोत्तर प्ररूढ़—प्रबुद्ध होते चलें।

५. हम शतवर्षपर्यन्त उत्तरोत्तर पोषण को प्राप्त करें।

६. हम शतवर्षपर्यन्त बने रहें। हमारी सत्ता विनष्ट न हो जाए। फूलें-फलें (to be prosperous)

७. हम शतवर्षपर्यन्त शुद्ध जीवनवाले हों (to be purified)।

८. सौ वर्ष से अधिक काल तक भी इसीप्रकार हमारी शक्तियाँ स्थिर रहें।

भावार्थ—प्रभु-कृपा से हम शतवर्षपर्यन्त व सौ से अधिक वर्षों तक शक्तियों को स्थिर रखते हुए समृद्ध व पवित्र जीवनवाले हों।

६८. [अष्टषष्टितमं सूक्तम्]

ऋषिः—**ब्रह्मा**॥ देवता—**मन्त्रोक्ताः**॥ छन्दः—**अनुष्टुप्**॥

'हृदय गुहा' के अन्धकार को दूर करना

अव्यसश्च व्यचसश्च बिलं वि ष्यामि मायया।
ताभ्यामुद्धृत्य वेदमथ कर्माणि कृण्महे॥ १॥

१. **अव्यसः च** (अव्यचसः)=अव्याप्त, परिच्छिन्न जीवात्मा के **व्यचसः च**=और व्याप्त परमात्मा के **बिलम्**=उपलब्धिस्थान हृदय को **मायया**=अज्ञान से **विष्यामि**=विमुक्त (विरहित) करता हूँ। हृदय के अज्ञानावृत होने पर कर्त्तव्याकर्त्तव्य विभाग ही नहीं होता, अतः कार्याकार्य विभाग के ज्ञान के शत्रुभूत इस मूढभाव को दूर करता हूँ। २. **ताभ्याम्**=जीवात्मा व परमात्मा के ज्ञान के हेतु से **वेदम्**=ज्ञान को **उद्धृत्य**=सम्पादित करके **अथ**=अब उस ज्ञान के अनुसार **कर्माणि कृण्महे**=हम अपने कर्त्तव्यकर्मों को करते हैं। ज्ञानपूर्वक कर्म करना ही प्रभु-प्राप्ति का मार्ग है।

भावार्थ—हम अपनी हृदय-गुहा को अज्ञान से मुक्त करके आत्मा व परमात्मा का दर्शन करें। इसी उद्देश्य से ज्ञानपूर्वक कर्मों में व्यापृत रहें।

६९. [एकोनसप्ततितमं सूक्तम्]

ऋषिः—**ब्रह्मा**॥ देवता—**आपः**॥ छन्दः—**१ आसुर्यनुष्टुप्, २ साम्न्यनुष्टुप्, ३ आसुरीगायत्री, ४ साम्न्युष्णिक्**॥

आपः=आप्त लोगों का जीवन

जीवा स्थ जीव्यासं सर्वमायुर्जीव्यासम्॥ १॥

१. हे **आपः**=आप्तविद्वान् जनो! आप **जीवाः स्थ**=जीवनशक्तिसम्पन्न हो। मैं भी **जीव्यासम्**=जीवनशक्तिसम्पन्न बनूँ। **सर्वम् आयुः जीव्यासम्**=पूर्ण जीवन को जीनेवाला बनूँ।

उपजीवन

उपजीवा स्थोप जीव्यासं सर्वमायुर्जीव्यासम्॥ २॥

२. हे (आपः) आप्तजनो! आप **उपजीवाः स्थ**=प्रभु के सान्निध्य में जीवन बितानेवाले हो। **उपजीव्यासम्**=मैं भी प्रभु की समीपता में जीवन बिताऊँ। **सर्वम् आयुः जीव्यासम्**=और पूर्ण जीवन प्राप्त करूँ।

संजीवन

संजीवा स्थ सं जीव्यासं सर्वमायुर्जीव्यासम्॥ ३॥

३. हे (आपः) आप्तजनो! आप **संजीवाः स्थ**=औरों के साथ मिलकर जीनेवाले हो अथवा सम्यक् जीवनवाले हो। एक क्षण को भी आप व्यर्थ नहीं करते। परोपकार में प्रवृत्त हुए-हुए आप जीवन को सम्यक् बिताते हो। **संजीव्यासम्**=मैं भी सबके साथ मिलकर जीनेवाला बनूँ। **सर्वम् आयुः जीव्यासम्**=पूर्ण जीवन को जीनेवाला बनूँ।

जीवन

जीवला स्थ जीव्यासं सर्वमायुर्जीव्यासम्॥ ४॥

४. हे (आपः) आप्तजनो! आप **जीवलाः स्थ**=जीवनशक्ति का उपादान करनेवाले हो, मैं भी **जीव्यासम्**=जीवनशक्ति का उपदान करता हुआ जीऊँ। **सर्वम् आयुः जीव्यासम्**=पूर्ण जीवन जीऊँ।

भावार्थ—हम आप्तजनों की भाँति जीवनशक्तिसम्पन्न बनें। प्रभु के सान्निध्य में जीवन को बिताएँ। सम्यक् जीवनवाले हों। जीवनशक्ति का उपादान करनेवाले हों। इसप्रकार पूर्णजीवन को प्राप्त करें।

७०. [सप्ततितमं सूक्तम्]

ऋषिः—**ब्रह्मा**॥ देवता—**इन्द्रादयो मन्त्रोक्ताः**॥ छन्दः—**गायत्री**॥

इन्द्र, सूर्य, देव

इन्द्र जीव सूर्य जीव देवा जीवा जीव्यासमहम्। सर्वमायुर्जीव्यासम्॥ १॥

१. **इन्द्र**=हे इन्द्रियों के अधिष्ठाता! **जीव**=तू जी, अर्थात् जीवन तो उसी का ठीक है जोकि जितेन्द्रिय है। **सूर्य**=सूर्य के समान ज्ञानदीप्त जीवनवाले पुरुष! **जीव**=तू जी। जीवन तो उसी का ठीक है जोकि अन्धकारशून्य है। **देवाः**=हे देववृत्ति के पुरुषो! **जीवाः**=तुम जीवनवाले हो, अर्थात् वस्तुतः जीवन तो तुम्हारा ही ठीक है। २. **अहम्**=मैं भी **जीव्यासम्**='इन्द्र' बनकर, 'सूर्य' बनकर तथा 'देव' बनकर जीऊँ। **सर्वम् आयुः जीव्यासम्**=मैं पूर्ण जीवन जीनेवाला बनूँ। पूर्णजीवन वही है जिसमें इन्द्रियाँ अपने-अपने कार्य में ठीक प्रकार लगी हैं, मस्तिष्क ज्ञानसूर्य से दीप्त है, हृदय दिव्यवृत्तियों से द्योतित है।

भावार्थ—हम 'इन्द्र, सूर्य व देव' बनकर पूर्णजीवन प्राप्त करें। इन्द्रियाँ हमारे वश में हों। हमारा मस्तिष्क ज्ञान-सूर्य से चमके। हमारा मन दिव्यवृत्तिवाला हो।

७१. [एकसप्ततितमं सूक्तम्]

ऋषिः—**ब्रह्मा**॥ देवता—**इन्द्रादयो मन्त्रोक्ताः**॥ छन्दः—**पञ्चपदाऽतिजगती**॥

वरदा वदेमाता

स्तुता मया वरदा वेदमाता प्र चोदयन्तां पावमानी द्विजानाम्। आयुः प्राणं प्रजां पशुं कीर्तिं द्रविणं ब्रह्मवर्चसम्। मह्यं दत्त्वा व्रजत ब्रह्मलोकम्॥ १॥

१. प्रभु कहते हैं कि **मया**=मैंने यह **वरदा**=सब उत्तम पदार्थों को देनेवाली **वेदमाता**=वेदरूप माता तुम्हारे लिए **प्रस्तुता**=प्रस्तुत की है। यह **चोदयन्ताम्**=तुम्हें प्रेरणा देनेवाली हो। यह **द्विजानाम् पावमानी**=द्विजों—अध्ययनशील पुरुषों को पवित्र करनेवाली है। २. यह तुम्हारे लिए **आयुः**=दीर्घजीवन देगी। **प्राणम्**=प्राणशक्ति देगी। **प्रजाम्**=उत्तम सन्तति को प्राप्त कराएगी। **पशुम्**=यह उत्तम गवादि पशुओं को देनेवाली होगी। **कीर्तिम्**=यह तुम्हारे जीवन को यशस्वी करेगी। **द्रविणम्**=यह तुम्हें धन प्राप्त कराएगी और **ब्रह्मवर्चसम्**=ब्रह्मतेज प्राप्त कराएगी। २. साथ ही यदि तुम इन वस्तुओं का गर्व न करके इन्हें मुझसे दिया हुआ जानोगे और इन्हें मेरे प्रति ही अर्पण करनेवाले होओगे तो इन सब वस्तुओं को **मह्यं दत्त्वा**=मेरे अर्पण करके **ब्रह्मलोकं व्रजत**=तुम ब्रह्मलोक को प्राप्त करो।

भावार्थ—हम वेदमाता की प्रेरणा को सुनकर 'आयु, प्राण, प्रजा, पशु, कीर्ति, द्रविण व ब्रह्मवर्चस्' को प्राप्त करें। इन सब वस्तुओं का गर्व न करते हुए इन्हें प्रभु-अर्पण करते हुए प्रभु को प्राप्त करनेवाले हों।

७२. [द्विसप्ततितमं सूक्तम्]

ऋषिः—**ब्रह्मा**॥ देवता—**परमात्मा देवाश्च**॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्**॥

वह ज्ञान का महान् कोश

यस्मात्कोशादुदभराम वेदं तस्मिन्नन्तरव दध्म एनम्।
कृतमिष्टं ब्रह्मणो वीर्येण तेन मा देवास्तपसावतेह॥ १॥

१. **यस्मात् कोशात्**=जिस महान् कोश—ज्ञान के भण्डार से **वेदं उद् अभराम**=हमने वेद का उद्भरण किया था, **तस्मिन् अन्तः**=उसी प्रभु में **एनम् अवदध्म**=इसे स्थापित करते हैं। प्रतिदिन हम प्रभु-स्मरण के साथ वेदाध्ययन करें और समाप्ति पर पुनः प्रभु का स्मरण करनेवाले बनें। २. हमने वस्तुतः **ब्रह्मणः**=उस ब्रह्म के **वीर्येण**=पराक्रम से ही **कृतम्**=सर्व कर्म किया है, **इष्टम्**=उसी के वीर्य से सब यज्ञों का सम्पादन हुआ है। हे **देवाः**=देववृत्ति के पुरुषो! **तेन तपसा**=उस ज्ञानमय तप से **मा**=मुझे **इह**=इस जीवन में **अवत**=रक्षित करो। वेदाध्ययन ही मेरा तप हो। यह तप मेरा रक्षण करे।

भावार्थ—हम प्रतिदिन प्रभु-स्मरण के साथ वेदाध्ययन का आरम्भ करें। समाप्ति पर भी प्रभु-स्मरण करें। वेदज्ञान के अनुसार यज्ञादि कर्मों को करें। यह वेदाध्ययन ही हमारा तप हो। इसके द्वारा हम अपना रक्षण कर पाएँ।

इति पञ्चत्रिंशः प्रपाठकः॥

॥ इत्येकोनविंशं काण्डम्॥